हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी का भाषाई अध्ययन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुतु शोध-प्रबंध)

प्रस्तुतकर्त्री

तबस्सुम बेगम

निर्देशक

प्रो.रवि रंजन

सह-निर्देशक

डॉ.सच्चिदानंद चतुर्वेदी

हिन्दी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-५०००४६

जून २००९

हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी का भाषाई अध्ययन

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुतु शोध-प्रबंध)

२००९

प्रस्तुतकर्त्री
तबस्सुम बेगम

विभागाध्यक्ष
प्रो.शशि मुदीराज
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद-५०००४६

निर्देशक
प्रो.रवि रंजन
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद-५०००४६

CERTIFICATE

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad-500046.

This is certify that I, TABASSUM BEGUM, have carried out the research embodied in the present thesis entitled HINDI AUR DAKHINI HINDI KA BHASHAI ADHYAN for the full period prescribed order Ph.D. ordinances of the University.

I declared to the best of my knowledge that no part of this thesis was earlier submitted for the award of research degree of any University.

Hyderabad
Date:

Signature of the candidate
Name: Tabassum Begum
Enrollment No.- 04HHPH02

Signature of the Supervisor.

Signature of the Co-Supervisor.

Head,Department of Hindi.

Dean,School of Humanities.

भूमिका

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र है, जिसमें भारतीय संविधान की अष्टम् अनुसूचि में शामि कुछ महत्वपूर्ण मानी गयी भाषाओं के अलावा अनेकानेक विभाषाएँ या बोली प्रयुक्त होती हैं। जाहिर है कि हिन्दी मुख्य रूप से उत्तर-भारत एवं मध्य-भारत की जातीय भाषा है। किंतु कुछ ऐतिहासिक कारणों से यह भारत की आम जनता की संपर्क भाषा के तौर पर प्रयुक्त होती है। दूसरे शब्दों में भारत का वर्चस्वशाली वर्ग भले ही मध्यकाल में फ़ारसी तथा आधुनिक युग मं अंग्रज़ी का उपयोग करता रहा है, किन्तु, यहाँ के आम लोगों की अनेकानेक जातीय भाषाएँ हैं और उनकी संपर्क भाषा बोलचाल की आम-फ़ाहम हिन्दी(जिसे गाँधी जी हिन्दूस्तानी कहा करते थे) ही है।

हिन्दी का जब दक्षिण भारत में कमोबेश इस्तेमाल होने लगा तो स्वभावतः कालांतर में इसका एक अलग स्वरूप विकसित हुआ, जिसे विद्वानों ने 'दक्खिनी हिन्दी' के नाम से अभिहित किया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की मान्यता है कि खड़ी बोली के आरम्भिक कवि दक्खिनी के कवि थे। इस संदर्भ में डॉ.श्रीराम शर्मा का शोध-कार्य दक्खिनी हिन्दी के साहित्य की महत्ता को उजागर करने वाला माना गया है। गौरतलब है कि स्वयं दक्खिनी के रचनाकारों ने भी फ़ारसी लिपि में रचित अपनी भाषा को दक्खिनी, हिन्दी, हिन्दवी आदि नामों से पुकारा है।

हैदराबाद में अपनी शिक्षा-दीक्षा के क्रम में बोलचान की दक्खिनी से सर्वप्रथम मेरा साबका पड़ा। और धीरे-धीरे दक्खिनी हिन्दी में रचित विपूल साहित्य के बारे में मुझे आरम्भिक जानकारी मिली। आगे चलकर पता लगा कि दक्खिनी हिन्दी में रचित साहित्य पर हैदराबाद के हिन्दी और उर्दू के कुछ विद्वानों एवं शोधार्थियों ने अपने-अपने ढंग से समय-समय पर कुछ काम किया है। ऐसे में मेरे मन में दक्खिनी हिन्दी को लेकर गम्भीरता के सात कुछ और जानने समझने तथा शोध-कार्य करने की इच्छा जागृत हुई। परिणामतः मैंने हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी का भाषाई अध्ययन विषय पर पी-एच.डी. उपाधि के लिए शोध-कार्य करने का मन बनाया।

भूमिका और उपसंहार के अलावा अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध को मुख्यतः सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम में हिन्दी का उद्भव और

विकास दूसरे में हिन्दी की विभिन्न बोलियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसके अंतर्गत हिन्दी का उसकी बोलियों के साथ आंतरिक संबंध की रूपरेखा दी गयी है तथा मानक हिन्दी एवं बोलियों में अंतर स्पष्ट किया गया है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत खड़ी बोली के विकास की अवस्थाओं तथा हिन्दी भाषा की कालगत विशेषताओं आदि पर चर्चा की गई है।

तीसरे अध्याय में दक्खिनी हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत अध्याय चार भागों में विभाजित किया गया है। इसके अंतर्गत दक्खिनी हिन्दी के उद्भव, विकास, उसके प्रचलित नाम, उसका भौगोलिक क्षेत्र तथा दक्खिनी हिन्दी पर अन्य भाषाओं के प्रभाव एवं स्वरूप का उल्लेख किया गया है।

चौथे अध्याय में दक्खिनी हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो पाँच कालों में विभाजित है। पाचों का कालों की चर्चा की गई है।

पाँचवे अध्याय में हिन्दी की भाषिक विशेषताओं की चर्चा है। इसमें हिन्दी के ध्वनिगत, व्याकरणिक, शब्द-भण्डार और वाक्यगत विशेषताओं का विवेचन और विश्लेषण सउदाहरण किया गया है। ध्वनि विवेचन में ध्वनियों की उच्चारण प्रकृति, ध्वनि व्यवस्था एवं ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न दिशाओं का उल्लेख है। व्याकरणिक विवेचन के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय का सविस्तार विवेचन है। शब्द-भण्डार में देशी, विदेशी शब्दों का आगमन और उनकी सूची दी गई है। भिन्न-भिन्न शब्दों से मिलकर बने अन्य शब्दों की भी सूची दी गई है। वाक्यगत विशेषताओं में वाक्य की बनावट, रूप तथा प्रकृति को दर्शाया गया है। साथ ही हिन्दी की प्रकृति में वाक्य-रचना के पदक्रम का उल्लेख किया गया है।

छठा अध्याय दक्खिनी हिन्दी की भाषिक विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। भाषिक कोटियों- ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भण्डार, वाक्य -का विश्लेषण दक्खिनी हिन्दी की रचनाओं में प्राप्त उदाहरणों के आधार पर प्रस्तुत है। इन आधारभूत कृतियों की देवनागरी लिपि में उपलब्ध प्रतियों से सहायता ली गई है। इनमें केवल मनसमझावन की प्रति फ़ारसी है। दक्खिनी हिन्दी पर पड़े अन्य भाषा के प्रभाव को ध्वनि, व्याकरण, शब्द तथा वाक्य के स्तर पर स्पष्ट रूप देखा जा सकता है।

सातवाँ अध्याय हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी के तुलनात्मक भाषाई अध्ययन पर आधारित है। इसमें पूर्व विवेचित अध्यायों के आधार पर तुलनात्मक निष्कर्ष निकालने की कोशिश की गई है, जिसमें दोनों भाषाओं में अधिकांश समानताएँ और कुछ विषमताएँ देखने को मिलती हैं।

शोध-कार्य के आरम्भिक चरण में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डॉ.भीम सिंह जी ने मेरी सहायता की, इसके लिए मैं उनकी आभारी हूँ। मेरे निर्देशक माननीय प्रो.रवि रंजन ने मेरा उत्साहवर्धन किया है एवं शोध को सफल बनाने के लिए सह-निर्देशक के रूप में डॉ.सच्चिदानंद चतुर्वेदी ने अपनी सम्मति दी, जिसके लिए मैं उनकी ऋणी रहूँगी। मैं हिन्दी विभाग की अध्यक्षा प्रो.शशि मुदीराज के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। मैं हिन्दी विभाग के सभी प्राध्यापकों को धन्यवाद देती हूँ जिनका प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहयोग मुझे इन पाँच वर्षों में मिलता रहा। उर्दू विभाग के रीडर डॉ.हबीब निसार जी के प्रति मैं ख़ासतौर से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने समय-समय पर आवश्यकतानुसार मुझे पुस्तकें दीं और जिनकी डॉक्टोरल समिति के सदस्य की हैसियत से दिए गए सुझाव से मुझे मदद मिली।

शोध-प्रबंध को पूरा करने में हैदराबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में कार्यरत कर्मचारियों का भी बड़ा हाथ है। मैं इन सभी को धन्यवाद देती हूँ। अब्राहम सर को मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने समयानुसार अपने कार्ड पर मुझे पुस्तकें उपलब्ध कराईं। इसके अलावा उस्मानिया विश्वविद्यालय, दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद सैंट्रल लाइब्रेरी, गुलबर्गा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से मिले सहयोग के लिए भी उनका धन्यवाद।

फ़ारसी लिपि का मुझे ज्ञान नहीं है। अत: उर्दू विभाग के मेरे साथी 'शेख़ अब्दुल करीम' ने उदाहरणों को खोजने एवं उसे समझने में मेरी मदद की है। इनका लफ़्ज़ों में बयान न हो सकेगा। बस इतना ही कहना है कि पिछले चार-पाँच सालों से मेरे हर कदम पर सहायता करने तथा प्रेरणा देने वाले ये मेरे हमसफ़र हैं। अन्य सभी सहपाठियों एवं साथियों को भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिनसे इस शोध-कार्य में सहायता मिली है।

ऋणी हूँ अपनी करूणामयी, दृढ़ निश्चयी माता नूरजहाँ एवं मौन-प्रेरणा और प्रोत्साहन देने वाले पिता मीर रियाज़ की, जिन्होंने एक बेटे की तरह हर सुविधा दी और मौक़े प्रदान किए जिससे कभी भी मुझे किसी से कमतर होने का एहसास नहीं जागा। मेरे फ़ैसले में उन्होंने खुशी से अपनी मुहर लगा दी। मेरा जीवन ही उनके लिए कम है।

मेरे लिए गर्व का विषय है कि दक्खिनी हिन्दी पर कार्य करते हुए मुझे इस विषय के लब्ध-प्रतिष्ठित लेखकों से मिलने का मौक़ा मिला। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी(मानू) के हिन्दी विभाग की ओर से आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी के दौरान मुझे सुरेशदत्त अवस्थी, डॉ.परमानन्द पांचाल, मो.कुंज मेत्तर जी से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। उनके द्वारा दिए गए भाषणों एवं उनकी पुस्तकों से जो सहायता मिली उसके लिए धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ। साथ ही मानू के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो.कट्टीमणि जी की आभारी हूँ जिन्होंने संगोष्ठी में मुझे अपना प्रपत्र पढ़ने का मौक़ा दिया।

अंत में उन सभी लेखकों, विद्वानों और सूधीजनों का भी आभार प्रकट करती हूँ जिनके लेखन से सहायता लिए बिना इस शोध-प्रबंध का सम्पन्न होना असंभव था।

हैदराबाद तबस्सुम बेगम

दिनांक:

संकेत-सूची

अं०	अंग्रेज़ी
अ०फ़ा०	अरबी-फ़ारसी
अ०पु०	अन्य पुरुष
अनि०	अनिश्चितवाचक/सूचक
अनिश्चय०	अनिश्चयवाचक
अपत्य०	अपत्यवाचक
अप.	अव्यय पदबंध
आदर०	आदरसूचक/वाचक
इच्छा०	इच्छासूचक
उ०पु०	उत्तम पुरुष
उत्कर्ष०	उत्कर्षवाचक
उदा०	उदाहरण
उप०	उपसर्ग
ऊन०	ऊनवाचक
एक०	एकवचन
कर्तृ०	कर्तृवाचक
क०	कन्नड़
कर्म०	कर्मवाचक
काल०	कालवाचक
कु	कुतुब मुशतरी
कृ०	कृदन्त
क्रि०वि०	क्रियाविशेषण
गुण०	गुणवाचक
त०कृ०	तद्धित और कृदन्त
ते०	तेलुगु
तु०	तुर्की
द्विक०	द्विकर्मक
दूर०	दूरवर्ती
निकट०	निकटवर्ती

निज०	निजवाचक
नि०	निश्चितवाचक
निश्चय०	निश्चयवाचक
परि०	परिमाणवाचक
प्र०	प्रत्यय
प्रश्न०	प्रश्नवाचक
प्रा०	प्राकृत
पु०	पुल्लिंग
फूल	फूलबन
बहु०	बहुवचन
भाव०	भाववाचक
मन	मनसमझावन
मूल०	मूलरूप
रीति०	रीतिवाचक
व्यापार०	व्यापारवाचक
विकृ०	विकृतरूप
वि०	विशेषण
वि०वा०	विशेषणवाचक
संप०	संज्ञा पदबंध
स्त्री०	स्त्रीलिंग
स्थान०	स्थानवाचक
सक०	सकर्मक
सब	सबरस
सै	सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल
संख्या०	संख्यावाचक
संप्र०	संप्रदान
सर्व०	सर्वनाम
सं०	संस्कृत
सहअ०	सह-अव्यय
हि०	हिन्दी
हि.ना.	हिन्दुस्तानी नाटक
/ /	ध्वनिग्राम लेख

{ }	पदरूपांशात्मक लेख
o	शून्य रूपिम
~	विवधता
>	विकसित रूप, से उत्पन्न

विषयानुक्रमणिका

पृ.सं

भूमिका i-iv

संकेत-सूची v-vii

अध्याय १) हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
१.१) हिन्दी : उद्‌भव और विकास
१.२) हिन्दी : भौगोलिक क्षेत्र और बोलियाँ

अध्याय २) हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास
२.१) काल विभाजन
२.१.१) आदिकाल १००० ई. - १५०० ई.
२.१.२) मध्यकाल १५०० ई. - १८०० ई.
२.१.३) आधुनिक काल १८०० ई. से अबतक

अध्याय ३) दक्खिनी हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
३.१) दक्खिनी हिन्दी : उद्‌भव और विकास
३.२) दक्खिनी हिन्दी के प्रचलित नाम
३.३) दक्खिनी हिन्दी का भौगोलिक क्षेत्र एवं बोलियाँ
३.४) दक्खिनी हिन्दी पर विभिन्न बोलियों का प्रभाव एवं स्वरूप

अध्याय ४) दक्खिनी हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास
४.१) काल विभाजन
४.१.१) संक्रांतिकाल १३०० ई. - १३४७ ई.
४.१.२) आरम्भिक काल १३४७ ई. - १४८७ ई.
४.१.३) उन्नतिकाल १४८७ ई. - १६८७ ई.
४.१.४) स्तब्धकाल १६८७ ई. - १८५० ई.
४.१.५) आधुनिक काल १८५० से अबतक

अध्याय ५) हिन्दी की भाषिक विशेषताएँ
५.१) ध्वनिगत विशेषताएँ
५.२) व्याकरणिक विशेषताएँ
५.३) शब्द-भण्डार
५.४) वाक्यगत विशेषताएँ

अध्याय ६) दक्खिनी हिन्दी की भाषिक विशेषताएँ
६.१) ध्वनिगत विशेषताएँ
६.२) व्याकरणिक विशेषताएँ
६.३) शब्द-भण्डार
६.४) वाक्यगत विशेषताएँ

अध्याय ७) हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी का भाषागत तुलनात्मक अध्ययन
७.१) ध्वनिगत विवेचन
७.२) व्याकरणिक विवेचन
७.३) शब्द-भण्डार
७.४) वाक्यगत विवेचन

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

पहला अध्याय

१) हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१.१) हिन्दी : उद्‌भव और विकास

१.२) हिन्दी : भौगोलिक क्षेत्र और बोलियाँ

दूसरा अध्याय

२) हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

२.१) काल विभाजन

२.१.१) आदिकाल १००० ई. - १५०० ई.

२.१.२) मध्यकाल १५०० ई. - १८०० ई.

२.१.३) आधुनिक काल १८०० ई. से अबतक

तीसरा अध्याय

३) दक्खिनी हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

३.१) दक्खिनी हिन्दी : उद्भव और विकास

३.२) दक्खिनी हिन्दी के प्रचलित नाम

३.३) दक्खिनी हिन्दी का भौगोलिक क्षेत्र एवं बोलियाँ

३.४) दक्खिनी हिन्दी पर विभिन्न बोलियों का प्रभाव एवं स्वरूप

चौथा अध्याय

४) दक्खिनी हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

४.१) काल विभाजन

४.१.१) संक्रांतिकाल १३०० ई. - १३४७ ई.

४.१.२) आरम्भिक काल १३४७ ई. - १४८७ ई.

४.१.३) उन्नतिकाल १४८७ ई. - १६८७ ई.

४.१.४) स्तब्धकाल १६८७ ई. - १८५० ई.

४.१.५) आधुनिक काल १८५० से अबतक

पाँचवाँ अध्याय

५) हिन्दी की भाषिक विशेषताएँ

५.१) ध्वनिगत विशेषताएँ
५.२) व्याकरणिक विशेषताएँ
५.३) शब्द-भण्डार
५.४) वाक्यगत विशेषताएँ

छठा अध्याय

६) दक्खिनी हिन्दी की भाषिक विशेषताएँ

६.१) ध्वनिगत विशेषताएँ

६.२) व्याकरणिक विशेषताएँ

६.३) शब्द-भण्डार

६.४) वाक्यगत विशेषताएँ

सातवाँ अध्याय

७) हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी का भाषागत तुलनात्मक अध्ययन

७.१) ध्वनिगत विवेचन
७.२) व्याकरणिक विवेचन
७.३) शब्द-भण्डार
७.४) वाक्यगत विवेचन

उपसंहार

संदर्भ ग्रंथ-सूची

प्रस्तावना

हिन्दी शब्द के साथ भाषा का सम्बन्ध अपने आप में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। किसी बोली का भाषा बनने का सफ़र बड़ा ही उतार-चढ़ाव वाला होता है। यही हिन्दी के साथ भी है। हालाँकि इसके अर्थ में कई उतार-चढ़ाव आए और इन सब को पार करते हुए हिन्दी का एक निश्चित रूप एवं अर्थ स्थिर हुआ। प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी का उद्‌भव और विकास के द्वारा यही दर्शाने की कोशिश की गई है।

इसके दूसरे उप-अध्याय में हिन्दी के भौगोलिक क्षेत्र की सीमा को बाँधते हुए भी उसके राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय रूप को दिखाया गया है। उसकी सीमा में आने वाले उसकी भिन्न बोलियों को गिनाया गया है। साथ ही उसकी बोलियों के प्रभाव तथा अंतर को स्पष्ट किया गया है।

१.१) हिन्दीः उद्भव और विकास

१.१.१) <u>हिन्दी शब्द की व्युत्पत्तिः</u> हिन्दी शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में कई तर्क प्रस्तुत किए गए हैं-

अ) हमारे परम्परावादी संस्कृत पंडित मूल शब्द 'हिन्दु' मानते हैं। ये लोग 'हिन्'(=नष्ट करना)+'दु'(=दुष्ट) से 'हिन्दु' मानते हैं। अर्थात् 'हिन्दु' का अर्थ है दुष्टों का विनाश करने वाला- "हिन्दुर्हिन्दूश्च प्रसिद्धौ दुष्टानां च विधर्षणे।"[१]

आ) 'हिन्दु' की दूसरी व्युत्पत्ति है- "हिंसया दूयते चित्तं तेन हिन्दुरितीरितः"[२] अर्थात् हिंसा को देखकर जो दुखी होते हैं वे हिंदु हैं।

इ) इसकी एक और व्युत्पत्ति संस्कृत की 'इन्द्' धातु से मानी गई है। 'इन्द्' का अर्थ होता है 'ऐश्वर्य होना'। संस्कृत का 'इन्द्र' शब्द भी इसी से संबद्ध है। ग्रासमान, रॉथ आदि विद्वान 'इन्द्' को मूलतः 'इध्' या 'इन्ध्' मानते हैं यद्यपि बेनफ़े तथा कुछ विद्वान 'इन्द्र' को भी मूलतः 'स्यन्द्' से ही निष्पन्न मानते हैं। अपने मूल भारोपीय रूप से चलकर इस 'इन्द्' या 'स्यन्द्' से ही स्लाव शब्द जेद्रु, संस्कृत इन्द्र, अवेस्ता ज़ेन्दाह(ज़िन्दा,जिन्दगी) आदि संबंधित हैं। 'सिन्धु' शब्द को 'इन्द्र'या 'इन्ध्' से संबद्ध मानने वाले लोग उस नदी में ऐश्वर्य या उसकी जीवन-शक्ति पर बल देते हैं।[३]

ई) मोनियस विलियम्स 'सिन्धु' शब्द को 'सिध्'(= जाना) धातु से निकला होने का अनुमान लगाते हैं।

उ) बहुप्रचलित मत के अनुसार 'हिन्दी' शब्द फ़ारसी शब्द 'हिन्दू' से संबंधित है। इस सम्बंध में यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि 'हिन्दू' शब्द भी मूलतः फ़ारसी का न होकर संस्कृत शब्द 'सिन्धु' का फ़ारसी रूपांतरण है। प्रश्न उठता है कि 'सिन्धु' की व्युत्पत्ति क्या है? संस्कृत के अधिकांश वैयाकरण इसका संबंध 'स्यन्द्' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है 'पसीजना', 'द्रवना', 'स्त्रवित' होना। इसी में, 'य' के संप्रसारण, 'दस्य' धः तथा 'उद्' प्रत्यय के योग से 'सिन्धु' शब्द बना है, जिसका अर्थ

नदी विशेष तथा समुद्र आदि है। हाथी के गंडस्थल से मद बहने के कारण उसे भी 'सिन्धु' या 'सिन्धुर' आदि कहा गया है। इस प्रकार मूल अर्थ बहना है। परन्तु भोलानाथ तिवारी उपयुक्त किसी भी मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि-"इस नदी विशेष का 'सिन्धु' नाम मूलत संस्कृत का शब्द नहीं है। आर्य भारत में आए उस समय पश्चिमोत्तर भारत में आर्येतर लोग रहते थे।"[४] उनका अनुमान है कि यह शब्द द्रविड़ भाषा का है। या यह भी हो सकता है कि द्रविड़ लोग जब भारत में आए हों तो उन्हें भी यह नाम आस्ट्रिक आदि किसी अन्य पुरानी जाति से मिला हो। शब्दों के संस्कृतीकरण की परम्परा आर्यों में प्राचीन काल से मिलती है। भोलानाथ तिवारी ने ऐसे शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं; जैसे 'एलेग्ज़ेंडर' के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'अलकन्द' आया है। 'सिड्', 'सिद्', 'सित्' या 'चिन्द्' आदि रूपों में, द्रविड़ परिवार की कई भाषाओं एवं बोलियों में एक अत्यंत प्राचीन धातु मिलती है, जिसका प्रयोग अन्य अर्थों के साथ 'छिड़कने', 'सींचने' या 'बहने' आदि के लिए होता है। इस कारण भोलानाथ तिवारी यह मानते हैं कि इसी धातु के आधार पर प्राचीन द्रविड़ों ने इस बड़ी नदी(सिन्धु) को 'सिद्' या 'सित्' नाम दिया। यह नाम इसमें बहते हुए बहुत अधिक पानी के कारण भी हो सकता है, या इस कारण भी हो सकता है कि इनकी सभ्यता का उस काल में मूल केन्द्र(सिन्धु की घाटी) जो था, इसी से सींची जाने वाली भूमि पर बसा था। उनके विचार में नदी के आधार पर उसके आसपास के प्रदेश का तात्कालिक नाम 'सिद्' या 'सित्' ही था। यह प्राय: बहुस्वीकृत तथ्य है कि हड़प्पा-मोहनजदड़ो से सुमेरिया का व्यापारिक संबंध था। भोलानाथ तिवारी अपने अनुमान को सिद्ध करते हुए यह प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि "सुमेरिया के जो पुराने अभिलेख मिले हैं, उनमें एक 'सिद्' नामक स्थान का उल्लेख आता है जहाँ से सुमेरियों का संबंध था। १९२८ई.-२९ई. में पश्चिमोत्तर भारत में प्राप्त कुछ अभिलेखों से भी यह पता चलता है कि हड़प्पा-मोहनजदड़ो के लोगों के स्थान का नाम उस काल में 'सिद्' या 'सित्' था।"[५] इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत में इस नदी या इस प्रदेश के लिए 'सिन्धु' शब्द वस्तुत: संस्कृत शब्द न होकर प्राचीन द्रविड़ शब्द 'सिद्' या 'सित्' का ही संस्कृतीकृत रूप है। उल्लेख्य है कि 'गंगा' नाम भी आर्यों को प्राचीन निवासियों से ही मिला था। द्रविड़ 'सिद्' या 'सित्' के आधार पर संस्कृतीकरण के द्वारा बने इस 'सिन्धु' शब्द के भारतीय साहित्य में प्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलते हैं। ऋग्वेद में इसका प्रयोग सामान्य रूप से नदी "भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोडग्ने"[६] तथा कदाचित् नदी के आसपास के प्रदेश के लिए हुआ है। ऋग्वेद में 'सप्तसिंधव:' (सात नदियाँ) तथा 'सप्तसिंधुषु' आदि

अन्य रूपों में भी यह शब्द मिलता है।

५०० ई.पू. के आसपास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी के आसपास का प्रदेश ईरानी लोगों के हाथ में था। इन्हीं सम्पर्कों के साथ भारत से ईरान तथा ईरान से भारत में याजक आया-जाया करते थे। कदाचित् याजकों के साथ हमारे 'सिन्धु' और 'सप्तसिंधव:' आदि शब्द भी ईरान पहुँचे। हमारी प्राचीन 'स' ध्वनि ईरान की अवेस्ता आदि में 'ह' उच्चरित होती रही है; जैसे संस्कृत 'सप्त', अवेस्ता 'हफ़्त', संस्कृत 'असुर', अवेस्ता 'अहुर' आदि। इसी कारण ये 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धव:' आदि शब्द अवेस्ता में 'हिन्दू' (अवेस्ता में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं होती अत: 'ध' का 'द' हो गया है) और 'हप्तहिन्दव' आदि रूप मिलते हैं। प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दू' शब्द नदी के अर्थ में तो हुआ ही, साथ ही सिन्धु नदी के पास के प्रदेश के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार किसी अन्य शब्द के अभाव में इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया और 'सिन्धु नदी के पास की भूमि का वाचक' शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। ईरानी सम्राट दारा(प्राचीन दारयवहु, सं. धारयद्-वसु) के अभिलेखों में भारत के लिए हिन्दू आया है। प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्दुश(यूनानी शब्द indos यही है), हिन्दु[७] (भोलानाथ तिवारी के अनुसार प्राचीन चीनी साहित्य में 'शिन्टु'(-परवर्ती साहित्य में 'इन्तु') को देवों का देश कहा गया है, यह भी 'सिन्धु' ही है), हिन्दुवअ(सं. सिन्धुवय=सिंधुवासी) आदि के अनेक ऐसे अन्य प्रयोग भी मिलते हैं। 'हिन्दू' शब्द में धीरे-धीरे यह आर्थिक विकास('सिन्ध प्रदेश' से बढ़कर 'भारत') तो हुआ ही, साथ ही इसमें ध्वनिक विकास भी हुआ और इसमें 'इ' पर बलाघात होने के कारण अंत्य 'उ' लुप्त हो गया, और इस प्रकार यह शब्द 'हिन्दू' से 'हिन्द' हो गया। आगे चलकर 'हिन्द' में ईरानी के विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' जुड़ने से हिन्दीक[८](यही हिन्दीक शब्द अरबी से होता,ग्रीक में 'इन्दिक',लैटिन में 'इन्दिया' तथा अंग्रेजी आदि में 'इण्डिआ' हुआ। चीनी साहित्य में कभी-कभार प्रयुक्त 'इन्तको' भी यही है) शब्द बना, जिसका अर्थ था 'हिन्द का'। इसी 'हिन्दीक' का विकास 'क' के लुप्त हो जाने के कारण 'हिन्दी' के रूप में हुआ। कुछ भाषावैज्ञानिकों ने 'हिन्दी' को 'सिन्धी' का रूपांतरण माना है। डॉ.रामविलास शर्मा ने 'भाषा और समाज' पुस्तक में कहा है कि 'स' का 'ह' फ़ारसी की देन मानना अनुपयुक्त है। इसके लिए उन्होंने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है कि-"'ह' का 'स' में परिवर्तन प्राचीन है अथवा 'स' का 'ह' में परिवर्तन।"[९] असमिया भाषा में श-स का बहिष्कार है। इस पर वे कहते हैं-"असम शब्द अहम का रूपांतरण है

या जिसकी सम्भावना अधिक है-असम का रूपांतर अहम।"[१०] भारतीय हकार-प्रेम के संबंध में वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं-"'ह' ध्वनि का जैसा व्यापक प्रभाव भारत में-वैदिक काल से लेकर अब तक-बना हुआ है, वैसा यूरोप के किसी क्षेत्र में नहीं है। यह महाप्राणता भारतीय भाषाओं की अपनी विशेषता है।"[११] इस तर्क पर विचार करते हुए जगदीश प्रसाद कौशिक लिखते हैं कि-"पाणिनि के 'विसर्जनीयस्य सः' सूत्र से विसर्गों का 'स' में परिवर्तन हो जाता है। मेरी दृष्टि में वेदों की रचना से भी बहुत पहले आर्य इस प्रदेश के लिए 'हिन्दु' शब्द का प्रयोग करते रहे होंगे और कालान्तर में उच्चारण की शिथिलता के कारण विसर्गों की मंजिल को पार करता हुआ यह 'ह' 'स' में परिवर्तित हो गया होगा। हमारे लिए यह शब्द प्राचीन होने के कारण विस्मृत हो गया और ईरान में सुरक्षित रहा हो, जिसे वे अलग होते समय अपने साथ ले गए थे। पुनः आक्रमण के समय ये लोग इस शब्द के साथ अपनी मातृभूमि में प्रविष्ट हुए और यह शब्द भारतीय होते हुए भी विदेशी सिद्ध हुआ।...इस युग में हिन्दी शब्द का जो प्रयोग जिस अर्थ में हम कर रहे हैं, वह मुसलमान आक्रांताओं की देन है और उसे प्रसिद्ध करने में अंग्रेज मिशनरियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है।"[१२] अतः जगदीश प्रसाद कौशिक के अनुसार 'ह' का उच्चारण तब तक हो रहा था जब तक कि आर्यभाषा ईरानी और भारतीय आर्य-शाखाओं में अविभाजित न होकर एक ही भाषा प्रतीत होती रही थी अर्थात् "२००० वर्ष ई.पू. तक ईरानी और भारतीय आर्य-शाखाओं में विभाजन नहीं हुआ था, इसका संकेत मेसोपोतामिया तथा एशिया-माइनर के दस्तावेज़ों से उपलब्ध थोड़े-बहुत प्रमाणों से सिद्ध होता है।"[१३] किन्तु हिन्दी को सिन्धी का रूपांतर मानने के विपक्ष में डॉ.केशवदत्त रूवाली का यह तर्क है कि-"प्राचीन भारतीय साहित्य में 'सिन्धी' शब्द मिलता ही नहीं और दूसरे ईरान में 'हिन्दी' शब्द उस समय प्रचलित हो गया था, जिस समय भारत में भारतीय आर्यभाषा प्राकृत से अपभ्रंश की ओर उन्मुख हो रही होगी। आठवीं-दसवीं शती में देवल(कराची) बंदरगाह से भारत आने वाले अरब यात्रियों ने हिन्द और सिन्ध को दो अलग-अलग प्रांत मानते हुए सिन्ध प्रांत की भाषा को सिन्धी कहा है; जबकि ईरान में 'हिन्दी' शब्द उससे प्राय दो सौ वर्ष पहले(छठी शती में ही) प्रचलित हो गया था।"[१४] इसके अलावा अरबी में भारतीय आर्य भाषा(संस्कृत)की 'स्' ध्वनि 'स्' ही उच्चरित होती है। ईरान से ही 'हिन्द' और 'हिन्दी' शब्द अरब, मिस्र, सीरिया तथा अन्य देशों के साहित्य में प्रविष्ट हुए। अरब यात्री सम्भवतः कश्मीर की तराई से सिन्ध नदी के किनारे तक को सिन्ध और गुजरात से लेकर भीतरी देश को

हिन्द कहते हैं।

"अरब यात्री मसऊद(३०३हिजरी/९००ई.) लिखता है, सिन्ध में वहाँ की अपनी भाषा है जो हिन्द की भाषाओं से भिन्न है।"[१५] इस समय विदेशों में 'हिन्दी' शब्द या तो देशबोधक था या हिन्द से जाने वाली वस्तु का बोधक। उदाहरणार्थ, प्राचीन अरबी साहित्य में पाए जाने वाले "अद-हिन्दी (अगर), साज-ज़-हिन्दी (तेजपत्ता), तमर-हिन्दी (इमली)"[१६] आदि शब्दों में 'हिन्दी' शब्द देशबोधक है। इसी अर्थ में शायर इकबाल ने कहा है-'हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा'। किन्तु अमीर खुसरो(१२५३-१३२५ई.) के समय में इससे 'भारतीय मुसलमानों' से तात्पर्य था। खुसरो ने हिन्दु तथा हिन्दी में अंतरस्पष्ट करते हुए लिखा है- "बादशाह ने हिन्दुओं को तो हाथी से कुचलवा डाल किन्तु मुसलमान, जो हिन्दी थे, सुरक्षित थे।"[१७] विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने के अतिरिक्त हिन्दी शब्द संज्ञा रूप में भी बहुत-सी भाषाओं में प्रयुक्त होता रहा है; जैसे फ़ारसी तथा अरबी में हिन्दी शब्द का प्रयोग विशेष प्रकार की तलवार के लिए(जो भारत से जाती थी) तथा तलवार के वार के लिए भी होता रहा है। मिस्र में मलमल(जो भारत से जाती थी) के लिए हिन्दी शब्द के लिए हिन्दी शब्द चलता रहा है

ग्रीकों ने सिन्धु-नदी को indos, यहाँ के निवासियों को Indoi तथा सिन्धु नदी के पार के प्रदेश को Indike कहा। यही Indika लैटिन में India हो गया। लैटिन से ही यह शब्द अंग्रेज़ी में India रूप में गृहीत होकर पश्चिमोत्तर प्रदेश का ही नहीं अपितु संपूर्ण भारत देश का अर्थ द्योतित करने लगा।

इस तरह 'हिन्दी' कई मंज़िलों को पार करते हुए आज अपनी मौजूदा अवस्था तक पहुँची है। उच्चारण-दोष के कारण ये सिन्ध से हिन्द बना और बाद में क, ई प्रत्यय जुड़ने के कारण विशेषण रूप कभी यह वस्तु का पर्याय बना तो कभी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ। समयानुसार इसके अर्थ में परिवर्तन होता रहा इसलिए आज भाषा के रूप प्रयोग होने वाली हिन्दी से एक समय में मुसलमानों को बोध होता था तथा हिन्दू ग़ैरमुसलमानों के लिए।

१.१.२) **भाषा के अर्थ में हिन्दी और उसका विकास :**

भाषा-प्रसंग में प्राचीन तथा मध्यकालीन फ़ारसी तथा अरबी-साहित्य में ज़बान-ए-हिन्दी शब्द का प्रयोग सम्भवतः भारतीय भाषाओं संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश के लिए मिलता है। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण उल्लेख्य है:

अ) ईरानी बादशाह नौशेरवाँ(५३१ई.-५७९ई.) ने अपने दरबार के हक़ीम बजरोया को 'पंचतंत्र' का अनुवाद कर लाने लिए भारत भेजा था। बजरोया ने उक्त ग्रंथ को अरबी में अनूदित करके 'ककर्टक और दमनक' कहानी के आधार पर 'कलीला और दिमना' नाम की संज्ञा दी। अनूदित ग्रंथ की भूमिका में बादशाह के मंत्री बुज़र्चमिहर ने लिखा है कि-"यह अनुवाद ज़बाने-हिन्दी से किया गया है।"[१८] यहाँ स्पष्ट कि ज़बाने-हिन्दी का प्रयोग भारतीय भाषा या संस्कृत के लिए किया गया है।

आ) १३३३ई. में इब्नबतूता अपने 'रेहला इब्न नतूता' में तारन नगर के संबंध में लिखता है-"किताबत अला बाज़ अलजदरात बिन हिन्दी"[१९] अर्थात् कुछ दिवारों पर हिन्दी में लिखा था। यद्यपि यह नाम आज की हिन्दी के लिए न होकर संस्कृत के लिए है।

इ) "सन् १४२४ई. में शरकुद्दीन यज़दी ने तैमूर लंग और उनके परिवार का इतिवृत्त जफ़रनामा नामक ग्रंथ में देते हुए हिन्दी शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया है जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण पश्चिम में खंडवा तक जा पहुँचती है।"[२०]'हिन्द की भाषा का नाम हिन्दी है' इसी अर्थ में फिरदौसी(९४०ई.-१०२०ई.), अलबरुनी(१०२५ई.), फ़ारसी कवि औकी(१२२८ई.), अमीर खुसरो(१२५३ई.-१३२५ई.) और अबुलफज़ल(१६वीं शती) आदि ने हिन्दी शब्द को ग्रहण किया है।

प्राय: यह कहा जाता है कि अमीर खुसरो की 'खालिकबारी' में सबसे पहले 'हिन्दी' शब्द हिन्दी भाषा के लिए मिलता है। परन्तु भोलानाथ तिवारी इस मत से सहमत नहीं है। उनके अनुसार- "वस्तुतः 'खालिकबारी' खुसरो की रचना नहीं है, वह खुसरो के बहुत बाद के किसी 'खुसरो शाह' की रचना है।"[२१] यों भाषा के अर्थ में 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' शब्द का प्रयोग खुसरो में कई स्थलों पर मिलता है। खुसरो कहते हैं-"तुर्क

हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब अर्थात् मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, हिन्दुवी में जवाब देता हूँ।"[२२] हिन्दुवी या हिन्दवी वह भाषा थी, जो शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित थी और मध्यदेश में सहज रूप से प्रयुक्त हो रही थी। यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि हिन्दुवी वही भाषा थी जो आगे चलकर आधुनिक-काल में खड़ी बोली नाम से प्रसिद्ध हुई। खड़ी बोली के विकास का आधार शौरसेनी अपभ्रंश ही है- ब्रज से कटा अन्य रूप, जिसने राजनैतिक प्रभावों के कारण जनभाषा खड़ी बोली का रूप ग्रहण कर लिया था और जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों का अनायास ही समावेश हो गया था। हिन्दी अर्थात् 'भारत के मुसलमानों' ने भी इसे अपनाया, किन्तु स्वभावतः धार्मिक तथा सांस्कृतिक कारणों से उनकी भाषा में अरबी, फ़ारसी, तुर्की के शब्द अधिक थे। इसी भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द चला। इस प्रकार 'हिन्दवी' शब्द पुराना है और 'हिन्दी' अपेक्षाकृत बाद का। साथ ही मूलतः दोनों में कुछ अन्तर भी है। शुद्ध हिन्दी में लिखनेवाले पुराने कवियों तथा लेखकों ने सम्भवतः इसी कारण अपनी भाषा को प्रायः 'हिन्दवी' ही कहा है-"तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहिं। जामें मारग प्रेम का, सबें सराहैं ताहि-(जायसी)।"[२३] इसके अलावा जटमल की 'गोरा-बादल' की कथा तथा इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में 'हिन्दवी' शब्द ही मिलता है, 'हिन्दी' नहीं। किंतु यह भेद अधिक दिनों तक चला नहीं। अरबी-फ़ारसी-तुर्की के बहुत-से आम-फ़हम शब्द हिन्दवी में आ गए, और दूसरी ओर हिन्दुओं एवं भारतीय वातावरण के प्रभाव से पर्याप्त भारतीय शब्द मुसलमानों की भाषा में भी गृहीत हो गए, और हिन्दी-हिन्दवी दोनों ही शब्द प्रायः समानार्थी हो गए।

'हिन्दी' शब्द के प्रारम्भिक प्रयोग जब भी और जिसके भी द्वारा हुए हों इसके अविच्छिन्न प्रयोग की प्राचीन परम्परा 'दक्खिनी' या 'दक्खिनी हिन्दी' के कवियों एवं गद्यकारों में ही मिलती है। उदाहरणार्थ १) "शाही मीराजी(१४७५ई.)- यों देखत हिन्दी बोल। २) शाह बुर्हानुद्दीन(१५८२ई.)- ऐब न राखें हिन्दी बोल(इर्शादनामा में)"।[२४] ३) मुल्ला वजही(१६३५ई.)- "हिन्दोस्तान में। हिन्दी ज़बान सों।"[२५] हिन्दी कवियों में १७७३ई. में सूफ़ी कवि नूर मुहम्मद ने लिखा है-"हिन्दू मग पर पाँव न राख्यौं। का जौ बहुतै हिन्दी भाख्यौं।"[२६] इससे संकेत यह मिलता है कि 'हिन्दी' शब्द मूलतः मुसलमानों की हिन्दी के लिए प्रयुक्त होकर, फिर हिन्दुओं की भाषा की ओर रहा था। किन्तु १९वीं सदी के मध्य के पूर्व तक उर्दू के लेखकों में प्रायः इसका प्रयोग उर्दू या रेख्ता के समानार्थी रूप

में चल रहा था। हातिम(१८वीं सदी उत्तरार्द्ध), नासिख़, सौदा(१७१३-१७८०ई.), मीर(१७१९-१७५८ई.) आदि ने एकाधिक बार अपने शेरों को हिन्दी शेर कहा। १८०३ई. में लिखित 'तज़किरः मख़ज़न उलारायब' में आता है-"दर ज़बाने हिन्दी की मुराद उर्दू अस्त"[२७] इसका अर्थ है- हिन्दी में जिसका मतलब उर्दू है।

आधुनिक अर्थ में हिन्दी शब्द के व्यापक प्रयोग का श्रेय मूलत अंग्रेजों को है। १८००ई. में कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना हुई। वहाँ गिलक्राइस्ट हिन्दी के अध्यापक नियुक्त हुए। "१८२० में उनकी एक किताब निकली जिसका नाम था-'क़वानीन सर्फ़ व नहो हिन्दी'। पुस्तक पर अंग्रेज़ी में लिखा था- Rules of Hindee Grammar। पुस्तक के भीतर सर्वत्र ही 'हिन्दी' या 'रेख़्ता' शब्द का प्रयोग है, किन्तु व्याकरण उर्दू का है।"[२८] यही भाषा हिन्दी कही जाती रही। किन्तु वहाँ के कर्मचारियों का ध्यान इस बात की ओर गया कि प्रतिनिधि भाषा वह नहीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द तो अरबी-फ़ारसी शब्दों से युक्त गिलक्राइस्ट की हिन्दी(जो वस्तुतः उर्दू थी) के लिए प्रयुक्त होने लगा, और 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओं में प्रयुक्त संस्कृत मिश्रित भाषा के लिए। इस नवीन अर्थ में हिन्दी का स्पष्ट रूप से लिखित प्रयोग कदाचित् सर्वप्रथम कैप्टिन टेलर ने किया- "मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का ज़िक्र कर रहा हूँ, जो फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है...मैं हिन्दी का ज़िक्र नहीं कर रहा, जिसकी अपनी लिपि है,..जिसमें अरबी-फ़रसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रान्त की भाषा थी।"[२९] इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि उस समय तक हिन्दी शब्द इस अर्थ में कम-से-कम कॉलिज के लोगों में कुछ समझा जाने लगा था। १८२५ में कॉलिज के वार्षिक अधिवेशन के भाषण में लार्ड हेमहर्स्ट ने हिन्दी भाषा को हिन्दुओं से संबद्ध कहा, तथा उर्दू को उनके लिए उतनी ही विदेशी कहा जितनी अंग्रेज़ी। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने चाहे जिस नीयत से भी किया हो, १९वीं सदी के प्रथम २५ वर्षों में, एक ओर हिन्दवी या हिन्दी-देवनागरी-संस्कृत-हिन्दू शब्दों को जोड़ दिया, तो दूसरी ओर हिन्दुस्तानी-रेख़्ता या उर्दू-फ़ारसी लिपि-अरबी-फ़ारसी शब्द-मुसलमान को। संभवतः शासन के ही इशारे पर १८६२ में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न शिक्षा के समक्ष आया और इस प्रकार हिन्दी आजकल के अर्थ में निश्चित रूप से स्वीकृत हो गई।

अतः भाषा के अर्थ में इसका प्रयोग हिन्दुई, हिन्दवी, हिन्दी के रूप में अलग-अलग

समय में होता रहा। लेकिन हिन्दी शब्द का प्रयोग भाषा के रूप दक्खिनी हिन्दी के कवियों में अपनी रचनाओं में खुलकर किया। भले ही यह उत्तर की बोली थी किन्तु राजनैतिक कारणों से दक्खन में ही पनपी। पहले यह मुसलमानों की भाषा मानी गई परन्तु बाद में अंग्रेज़ों ने इसे स्पष्ट रूप प्रदान किया।

१.१.३) हिन्दी शब्द के आधुनिककालीन अर्थ :

इस समय हिन्दी शब्द प्रमुखतः निम्नांकित तीन अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है-

अ) भाषाशास्त्रीय अर्थ
आ) सामान्य अर्थ
इ) कानूनी अर्थ

अ) भाषाशास्त्रीय अर्थ :

भाषाशास्त्रीय आधार पर हिन्दी का तात्पर्य खड़ी बोली से होता है। वस्तुतः हिन्दी खड़ी बोली का वह रूप है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और जो अपने वृहत् शब्द-भण्डार का निर्माण मुख्य रूप से संस्कृत के तत्सम, अर्ध-तत्सम और तद्‌भव शब्दों से करती है। इस प्रकार संस्कृत के ऊपर आश्रित खड़ी बोली का रूप ही हिन्दी कहलाता है। इसे विभिन्न भाषाविदों ने शुद्ध हिन्दी, साधु हिन्दी, उच्च हिन्दी, नागरी हिन्दी, हिन्दुस्थानी या आर्य भाषा भी कहा है।

आ) सामान्य अर्थ :

सामान्य अर्थ में हिन्दी का तात्पर्य उस जातीय भाषा से है जो संपूर्ण हिन्दी-भाषी जाति या क्षेत्र की परिनिष्ठित भाषा है। यह हिन्दी-भाषी जाति या हिन्दुस्तानी जाति हरियाणा, राजस्थान, म.प्र., दिल्ली, उ.प्र., बिहार और हिमाचल प्रदेश में फैली हुई है। इस विशाल क्षेत्र में बसे हुए लोगों की सामान्य जातीय भाषा हिन्दी है, जो खड़ी बोली का ही परिनिष्ठित रूप है और जिसके साथ-साथ अनेक लघुजातीय भाषाएँ मातृ बोलियों, घरू बोलियों अथवा ग्रामीण बोलियों के रूप में आज भी प्रचलित हैं।

इ) कानूनी अर्थ :

हिन्दी का एक कानूनी अथवा संवैधानिक अर्थ भी है। संविधान में

हिन्दी को भारतीय संघ की आधिकृत भाषा या राज-काजी भाषा घोषित किया गया है। इस प्रकार हिन्दी को संपूर्ण भारत के संघीय शासन की शासकीय भाषा का पद प्रदान किया गया, जिसे साधारणतः राष्ट्रभाषा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। इस प्रकार विधि एवं संविधान के अनुसार हिन्दी भारतीय संघ की भाषा एवं अनेक राज्यों की राज्यभाषा है। यही उसका कानूनी तात्पर्य है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी (१) खड़ी बोली का संस्कृत-बहुल देवनागरी लिपि में लिखित परिनिष्ठित रूप है, (२) विशाल हिन्दी-क्षेत्र तथा हिन्दी-भाषी जाति की जातीय भाषा है, और (३) भारत की संघीय तथा कई राज्यों की राजभाषा है। यही 'हिन्दी' के तीन अर्थ हैं।

१.२) हिन्दी : भौगोलिक क्षेत्र और बोलियाँ

हिन्दी के भौगोलिक क्षेत्र में उसकी बोलियों का क्षेत्र सम्मिलित है। "मध्यदेश की मुख्य उपभाषाओं के समुदाय को भाषाशास्त्र की दृष्टि से हिन्दी नाम से पुकारा जाता है।"[३०] इस भूमिभाग की सीमाएँ पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती हैं। इस भूमिभाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिष्ट बोलचाल तथा स्कूली शिक्षा आदि की भाषा हिन्दी ही है। साधारणतया हिन्दी शब्द का प्रयोग जनता में इसी भाषा के अर्थ में किया जाता है, किन्तु साथ ही इस भूमिभाग की वर्तमान उपभाषाओं, जैसे- मारवाड़ी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी, मैथिली आदि- को तथा प्राचीन डिंगल, हिंदवी, ब्रज, अवधी तथा मैथिली आदि साहित्यिक भाषाओं को भी हिंदी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है। इस भूभाग को भाषा-सर्वेक्षण के आधार पर दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र और पूर्वी हिन्दी क्षेत्र। यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि ग्रियर्सन आदि कुछ विद्वानों ने 'हिन्दी भाषा' शब्द का प्रयोग केवल पश्चिम और पूर्वी हिन्दी क्षेत्र की उपभाषाओं तथा उनकी आधारभूत साहित्यिक भाषाओं के अर्थ में किया है। जबकि डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी ने केवल पश्चिमी हिन्दी को ही वास्तविक हिन्दी माना है। खड़ीबोली, बाँगरू, ब्रज, कनौजी और बुंदेली पश्चिमी हिन्दी की तथा अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिन्दी की बोलियाँ हैं। प्रथम वर्ग की बोलियाँ शौरसेनी प्राकृत से तथा द्वितीय वर्ग की अर्द्धमागधी प्राकृत से सम्बन्धित हैं। मोटे रूप से पश्चिम क्षेत्र की भौगोलिक विस्तार-सीमाएँ पूर्वी पंजाब, उ.प्र. का पश्चिमी भाग, बुंदेलखण्ड उ.प्र. को स्पर्श करता हुआ सेधिया राज्य, आते हैं। बुँदेली सीमाएँ म.प्र. में जबलपुर को छोड़कर छिंदवाड़ा तक जाती हैं। पूर्वी हिन्दी की बोलियों का क्षेत्र पूर्वी उ.प्र., नागपुर को छोड़कर म.प्र. तथा पश्चिम छोटा नागपुर से बना है।

फ्रांसीसी भाषावैज्ञानिक गार्सा द तासी खड़ी बोली को 'हिन्दुई' या 'हिन्दी' कहते हुए उसका विकास "उत्तर और उत्तर-पश्चिम"[३१] प्रांत में हुआ बताते हैं। पं०किशोरदास वाजपेयी के अनुसार खड़ी बोली के मूलक्षेत्र की सीमाएँ "उ.प्र. के मुरादाबाद से पश्चिम मुजफ़्फ़रनगर, सहारनपुर, मेरठ तथा देहरादून के जिले किसी समय 'कुरु जनपद'

कहलाते थे।"[३२] श्री श्यामसुंदर दास ने लिखा है,"...खड़ी बोली उस बोली को कहते हैं जो रामपुर रियासत, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुज़फ्फरनगर, सहरनपुर, जाती है।"[३३] खड़ी बोली के मूलक्षेत्र की ठीक यही सीमाएँ, इन्हीं शब्दों में, डॉ.धीरेंद्र वर्मा ने भी बताई है।

हिन्दी और हिन्दी-प्रदेश का अभिप्राय व्यापक अर्थ में लिया जाता है। हिन्दी-भाषी पहले तो मात्र हिन्दी-प्रदेश में अर्थात् बिहार, म.प्र., उ.प्र., दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश थे, किन्तु धीरे-धीरे अनेकानेक कारणों से एक तरफ़ हिन्दी प्रदेश के बाहर भारत में, अन्य हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में बसते, काम करते रहे। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज हिन्दी न केवल हिन्दी प्रदेश में बोली-समझी जाती है, बल्कि हिन्दी प्रदेश के बाहर भी भारत में अनेक स्थानों पर तथा भारत के बाहर भी अनेक देशों में बोली-समझी जाती है। इस तरह एक तो हिन्दी-भाषी मुख्य क्षेत्र हैं और दो, हिन्दी-भाषी गौण क्षेत्र हैं-

अ) <u>हिन्दी-भाषी मुख्य क्षेत्र-</u>

यह क्षेत्र बिहार, उ.प्र., म.प्र., दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेश हैं। इसमें कुछ भाग पंजाब और महाराष्ट्र के भी आते हैं।

आ) <u>अन्य भाषा उपक्षेत्र-</u>

इसमें कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश आदि के दक्खिनी भाषी क्षेत्र एवं कलकत्ता, शिलांग, बम्बई तथा अहमदाबाद आदि भारत के ये छोटे-छोटे हिन्दी भाषी क्षेत्र आदि आते हैं।

इ) <u>भारतेतर उपक्षेत्र-</u>

भारत के बाहर मॉरिशस, फ़ीज़ी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका, उज़बेकिस्तान-ताज़िकिस्तान की सीमा तथा अमेरिका आदि में भी कुछ हिन्दी बोलियों के बोलने वाले रहते हैं।

अपने जनपदीय संदर्भ में हिन्दी भाषा छः प्रादेशिक राज्यों- उ.प्र., बिहार, म.प्र., राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा तथा दो संघ राज्यों- दिल्ली और चंडीगढ़ की

राजभाषा के रूप में स्वीकृत है। डॉ.बाबूराम सक्सेना का कथन है "हिन्दी उसी क्षेत्र की भाषा है जहाँ स्टैन्डर्ड शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश थी। हिन्दी के प्रथम विकास के युग में डिंगल, मध्ययुग में ब्रजभाषा और आधुनिक काल में खड़ीबोली सर्वमान्य भाषा है।"[३४]

हिन्दी के अंतर्गत पाँच भाषा वर्ग हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इनमें ग्रियर्सन केवल पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी को ही हिन्दी स्वीकार करते हैं जबकि डॉ.चटर्जी ने केवल पश्चिमी हिन्दी को ही वास्तविक हिन्दी माना है। इस संदर्भ में विन्दुमाधव मिश्र का कहना है कि-"यदि विशुद्ध भाषाशास्त्रीय आग्रह लेकर चला जाए तो चटर्जी का मत ही ठीक प्रतीत होता है। पूर्वी हिन्दी की प्रकृति ध्वनि संघटना और पदरचना को लेकर पश्चिमी हिन्दी-ब्रज-खड़ीबोली आदि से नितान्त भिन्न है। शेष तीन वर्ग-राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी की भाषाओं में मगही, मैथिली, मारवाड़ी और नेपाली पूरी तरह अलग भाषिक इकाईयाँ हैं। इन्हें मुख्य हिन्दी-- पश्चिमी तथा पूर्वी रूपांतर के साथ मिलाकर किसी भी तरह नहीं रखा जा सकता।"[३५] ग्रियर्सन ने बाद में अपना नया वर्गीकरण*[३६] प्रस्तुत किया जो इस प्रकार है-

(क)	(ख)	(ग)
मध्यदेशी	अन्तर्वर्ती	बहिरंग भाषाएँ
पश्चिमी हिन्दी	(पश्चिमी हिन्दी से विशेष घनिष्ठता वाली) पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी, पहाड़ी(पूर्वी,मध्य,पश्चिमी)	पश्चिमोत्तरी (लहँदा,सिंधी)
		दक्षिणी (मराठी)
	बहिरंग से संबद्ध (पूर्वी हिन्दी)	पूर्वी (बिहारी,उड़िया, बंगाली,असमी)

ग्रियर्सन का वर्गीकरण ध्वनि, व्याकरण या रूप तथा शब्द-समूह इन तीनों बातों पर आधारित है।

डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन तीनों की आलोचना की है। उनका वर्गीकरण*[३७] इस प्रकार है-

i)	उदीच्य(उत्तरी)	: सिंधी,लहंदा, पंजाबी
ii)	प्रतीच्य(पश्चिम)	: गुजराती, राजस्थानी
iii)	मध्यदेशीय(बीच का)	: पश्चिम हिन्दी,
iv)	प्राच्य(पूर्वी)	: उड़िया, बंगाली, असमी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी
v)	दाक्षिणात्य(दक्षिणी)	: मराठी

डॉ.चटर्जी पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार पैशाची, दरद या खस को मानते हैं। बाद में मध्यकाल में ये राजस्थान की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गई थीं। इसलिए पहाड़ी को यहाँ अलग स्थान नहीं दिया है।

डॉ.धीरेन्द्र वर्मा*[३८] ने चटर्जी के वर्गीकरण के आधार पर ही अपना वर्गीकरण दिया है:

i)	उदीच्य(उत्तरी)	: सिंधी, लहंदा, पंजाबी
ii)	प्रतीच्य(पश्चिम)	: गुजराती
iii)	मध्यदेशीय(बीच का)	: पश्चिम हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी, राजस्थानी
iv)	प्राच्य(पूर्वी)	: उड़िया, बंगाली, असमी
v)	दाक्षिणात्य(दक्षिणी)	: मराठी

भोलानाथ तिवारी आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के सम्बन्ध में कहते हैं कि-"प्रवृतियों के आधार पर इन भाषाओं में इतना वैभिन्नय या साम्य है कि सभी बातों का ठीक तरह से विचार करते हुए वर्गीकरण हो नहीं सकता। अतएव उत्पत्ति या सम्बद्ध अपभ्रंशों के आधार पर इनके वर्ग बनाए जा सकते हैं।"[३९]उनका वर्गीकरण*[४०] इस प्रकार है:

i)	शौरसेनी	: पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती
ii)	मागधी	: बिहारी, बंगाली, असमी, उड़िया
iii)	अर्द्धमागधी	: पूर्वी हिन्दी
iv)	महाराष्ट्री	: मराठी
v)	ब्राचड-पैशाची	: सिंधी, लहँदा, पंजाबी

इन्हें क्रम से मध्य, पूर्वीय, मध्यपूर्वीय, दक्षिणी और पश्चिमोत्तरी कहा जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि इतने बड़े हिन्दी प्रदेश में एक-सी हिन्दी भाषा नहीं बोली जाती यद्यपि संविधान में समस्त हिन्दी प्रदेश में केवल एक प्रतिनिधि भाषा को मान्यता दी है किन्तु इस विशाल भूमिभाग में कई उपभाषाएँ बोली जाती हैं। इन उपभाषाओं की संख्या एक दर्जन से भी अधिक है और इनमें से कुछ का तो प्राचीन साहित्य बहुत समृद्ध है। ग्रियर्सन तथा चटर्जी आदि विद्वानों ने इनमें से कुछ उपभाषाओं को हिन्दी की बोलियाँ कहा है किन्तु डॉ.धीरेन्द्र वर्मा का कथन है "हिन्दी प्रदेश की उपभाषाओं को हिन्दी की बोलियाँ कहना वास्तव में अवैज्ञानिक है। यदि हिन्दी का अर्थ केवल साहित्यिक खड़ीबोली लिया जाए तो ब्रजभाषा, बुन्देली, अवधी, छत्तीसगढ़ी अथवा मारवाड़ी, भोजपुरी आदि को इस साहित्यिक खड़ीबोली हिन्दी की बोलियाँ मानना भाषा विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार अशुद्ध होगा।"[४१] हिन्दी प्रदेश की उपभाषाओं को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है:(अगले पृष्ठ पर तालिका देखिए)

भाषा	उपभाषाएँ		बोलियाँ
		-	१. कौरवी(खड़ीबोली)
		-	२. ब्रजभाषा
हिन्दी	१. पश्चिमी हिन्दी	-	३. हरियाणा
		-	४. बुन्देली
		-	५. कनौजी
			१. अवधी
	२. पूर्वी हिन्दी		२. बघेली
			३. छत्तीसगढ़ी
			१. मारवाड़ी
	३. राजस्थानी	-	२. जयपुरी
			३. मेवाती
			४. मालवी
	४. पहाड़ी		१. पश्चिमी पहाड़ी
			२. मध्यवर्ती पहाड़ी (कुमायूँनी-गढ़वाली)
			१. भोजपुरी
	५. बिहारी		२. मगही
			३. मैथिली

डॉ.भोलानाथ तिवारी ने पश्चिमी हिन्दी में ताजुज़्बेकी तथा निमाड़ी को भी सम्मिलित किया है और हिन्दी की बोलियों की कुल संख्या सत्रह मानी है। जबकि डॉ.हरदेव बाहरी[४२] ने इनकी संख्या अट्ठारह गिनाई हैं। हिन्दी की बोलियों का प्रवृत्तिगत विभाजन उनके अनुसार इस प्रकार है-

पूर्वी खंड -

- पूर्वी हिन्दी --
  - १. अवधी
  - २. बघेली
  - ३. छत्तीसगढ़ी
- बिहारी हिन्दी --
  - १. भोजपुरी
  - २. मगही
  - ३. मैथिली

पश्चिमी खंड -

- पश्चिमी हिन्दी -
  - आकार बहुला --
    - १. कौरवी
    - २. हरियाणवी
    - ३. दक्खिनी
  - औकार बहुला --
    - १. ब्रज
    - २. बुंदेली
    - ३. कन्नौजी
- राजस्थानी --
  - १. मारवाड़ी
  - २. जयपुरी
  - ३. मेवाती
  - ४. मालवी
- पहाड़ी --
  - १. कुमायूँनी
  - २. गढ़वाली

"इनके अतिरिक्त निमाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी(मंडियाली,कुल्लाई), पू.पहाड़ी(नेपाली), मेवड़ी, ढूढाँढ़ी, हाड़ौती, अहीरवाटी आदि और भी बोलियाँ हैं।"[४३]

उपर्युक्त विवरण से यह तथ्य निकलता है कि अलग-अलग समय में विद्वानों ने अपने ज्ञान अनुसार हिन्दी प्रदेश की उपभाषाओं एवं बोलियों की खोज की तथा उन्हें विभाजित भी किया। परन्तु अधिकांश में एक बात समान है कि उन्होंने पाँच उपभाषाओं

के ही अन्तर्गत बोलियों को वर्गीकृत किया और उपभाषाएँ अधिकांश वर्गीकरण में प्राय: एक ही हैं जबकि बोलियों की संख्या किसी में कम किसी में ज़्यादा है। बोलियों को लेकर यह होना स्वाभाविक भी है क्योंकि कोस-कोस में पाए जाने वाले बोलियों के रूपों को देखकर यह अंदाज़ा लगाना मुश्किल हो जाता है कि किस बोली को किस भाषा-वर्ग में रखा जाए। इस पूरी बात को दो पंक्तियों में यूं कहा जा सकता है-

'कोस कोस में बदले पानी, चार कोस में बानी'।

इन पाँचों वर्गों की भाषाएँ स्वयं में पूर्ण भाषा होने की विशेषताएँ प्रकट करने के बावजूद भाषा के स्तर पर नहीं पहुँच सकी हैं इसलिए इन्हें आज विभाषा-उपभाषा-बोली आदि कहकर जाना जाता है। जहाँ तक इनके विकास का प्रश्न है ये अपभ्रंश के विभिन्न रूपांतरों से विकसित हुई हैं। मागधी से बिहार, अर्द्धमागधी से पूर्वी हिन्दी और शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी तथा राजस्थानी और शौरसेनी के आत्यन्तिक प्रभाव से बोझिल खस अपभ्रंश से पहाड़ी। यहाँ इस बात का संकेत किया जाना ज़रूरी है कि एक-सी परिस्थितियों तथा कुछ आगे-पीछे एक ही समय में उदय होने वाली नवभारतीय आर्यभाषाओं में बँगला, गुजराती, मराठी, सिंधी, उड़िया, असमिया आदि तो भाषा के स्तर पर पहुँच गईं किन्तु ठेठ मध्यदेश की देश्य बोलियाँ- अवधी-ब्रज-खड़ीबोली-मैथिली आदि स्वतंत्र भाषा होने की अपनी निजी विशेषताएँ प्रकट करते हुए भी केवल बोलियों के स्तर तक रह गईं।

हिन्दी और उसकी बोलियों का पारस्परिक संबंध

हिमाचली गढ़वाली कुमाऊँनी

नेपाली

हरियाणवी कौरवी(खड़ी)

मारवाड़ी मेवाती (कन्नौजी)

ब्रज

अवधी--भोजपुरी--मैथिली

जयपुरी

मेवाड़ी --- हाड़ौती मगही

मालवी बुंदेली -- बघेली -- छत्तीसगढ़ी

निमाड़ी

दक्खिनी

१.२.१) खड़ीबोली(मानक हिन्दी) :

आजकल सामान्य अर्थ में जिसे 'हिन्दी' कहते हैं वह 'खड़ीबोली' है अर्थात् वह खड़ीबोली जो कौरवी बोली से भिन्न स्थान विशेष की बोली न होकर सभी बोली क्षेत्रों में 'मानक हिन्दी' के रूप में बोली जाती है इसलिए इस अर्थ में 'हिन्दी', 'खड़ीबोली', 'मानक हिन्दी' प्राय: पर्याय हैं। साधारणत: हम 'खड़ीबोली' किसी भी एक बोली या भाषा को कह सकते हैं जो खड़ी हो अर्थात् जीवित हो, समृद्ध हो, गौरव और श्री-सौन्दर्य हो। इस अर्थ में संसार की सभी वर्तमान भाषाएँ 'खड़ी बोली' या खड़ी भाषा कही जा सकती हैं। किन्तु हिन्दी में 'खड़ी बोली' शब्द रूढ़ एवं विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। खड़ी बोली दिल्ली-मेरठ जनपद की वह मूल विभाषा है जो परिनिष्ठित रूप धारण कर आज संपूर्ण हिन्दी-प्रदेश की जातीय भाषा के रूप में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी तीन शैलियों में बोलचाल तथा साहित्य में प्रचलित है। यह भाषा 'भारत की राजभाषा' है, कभी-कभी 'राष्ट्रभाषा' भी कही जाती है, और भारत की सम्पर्क भाषा भी है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार-"खड़ीबोली या सिरहिन्दी पश्चिमी रुहेलखण्ड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अंबाला जिले की उपभाषा है।"[४४] हिन्दी जिसका मूलाधार खड़ीबोली है, के जन्म के सम्बन्ध में एक अर्से तक विद्वानों में विवाद रहा है। किसी ने इसका सम्बन्ध उर्दू से जोड़ा है तो किसी ने ब्रजभाषा से। "कोलब्रुक इसका आधार कन्नौजी; इस्टविक तथा मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ब्रजभाषा और मसऊद हसन खाँ हरियानी को मानते हैं।"[४५] विन्धुमाधव मिश्र के अनुसार "खड़ीबोली एक स्वतंत्र भाषा है जिसका जन्म शौरसेनी से हुआ है।"[४६] देश भेद से शौरसेनी की कई जनपदीय बोलियाँ विकसित हुई होंगी। अनुमान किया जाता है कि कुरु जनपद- जिसके अन्तर्गत आज के अम्बाला, दिल्ली, मेरठ, बिजनौर, सहारनपुर, मुजफ़्फ़रनगर आदि ज़िले आते हैं--के निवासी एक विशेष बोली का प्रयोग करते रहे होंगे और उसी का आधार लेकर खड़ीबोली विकसित हुई होगी। इसे कुछ लोग 'कौरवी' की संज्ञा भी देते हैं। खड़ीबोली इसी का विकसित रूप है। भोलानाथ तिवारी खड़ीबोली(मानक हिन्दी) को कौरवी से अलग करते हुए कहते हैं कि "जहाँ तक 'कौरवी' का प्रश्न है, व्यंजन-द्वित्व(बेट्टा, जात्ता, खात्ता), स्वर-माध्यम ड्, ढ्(गाडी, पढाई), अनेक शब्दों में 'ल्' के स्थान पर 'ळ्'(बाळक) आदि ऐसी बातें हैं जो खड़ीबोली(मानक हिन्दी) से मेल नहीं खातीं।"[४७] उनका अनुमान है कि "मुसलमान शासन पंजाब से होता हुआ आगरे में केन्द्रित हुआ और फिर दिल्ली आया। इस प्रकार

पंजाबी, हरियानी, ब्रज और दिल्ली की खड़ीबोली -इन तीनों की विशेषताओं का मिश्रित रूप, जो दिल्ली में राजभाषा फ़ारसी की कोमल छाया में विकसित हुआ, आज की मानक हिन्दी खड़ीबोली है, जिसकी तीन शैलियाँ (हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी) हैं।"[४८] डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी यही मत व्यक्त किया है कि हिन्दी पर कई एक बातों में पंजाबी का प्रभाव स्पष्ट है। इसके लिए उन्होंने उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं,जैसे-"हिन्दी के 'कल', 'सच' आदि रूप पंजाबी से ही आए हुए रूप हैं, केवल पहले अक्षरों का 'अ' ह्रस्व कर दिया गया और अन्तिम दीर्घ या द्वित्व-व्यञ्जन ह्रस्व हो गया या अकेला रह गया।"[४९] भाषाशास्त्रीय आधार पर जिस भाषा के लिए खड़ी बोली शब्द रूढ़ हो गया है, उसका यह नाम कब और कैसे पड़ा? इस संबंद्ध में विद्वानों ने अभी तक स्पष्ट मत प्रकट नहीं किया है। 'खड़ी बोली' नाम का सबसे प्राचीन एवं सर्वप्रथम प्रयोग हमें सन् १८०३ ई. में प्राप्त होता है, जब फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता के दो अध्यापकों, लल्लूजी लाल और सदल मिश्र ने अपने ग्रंथों में इसका प्रयोग किया था। इनसे पहले भी और बाद भी विभिन्न विद्वानों ने अन्य अनेक नामों का प्रयोग किया है, जैसे हैंदवी, हिन्दुई, हिन्दी, हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्थानी, ठेठ बोली, नागरी भाषा, आर्य भाषा, नई भाषा, गूजरी, दिल्ली की बोली, इंद्रप्रस्थ की बोली, शुद्ध हिन्दी, साधु हिन्दी, खरी बोली, शास्त्री, म्लेच्छ भाषा, लश्करी, मध्य देशीय भाषा, इंडोस्तान, मूर्ज, राजभाषा, मर्दों की बोली, ठाढ़ बोली, ठाठ बोली, सूखी हिन्दी, भारती, बनिया, कौरवी, मेरठी, दक्खिनी, रेख्ता या रेख़्ती और उर्दू, बाशा इत्यादि। यद्यपि खड़ी बोली के लिए इतने नाम विद्वानों ने प्रयोग किए हैं किन्तु खड़ी बोली के अतिरिक्त अन्य नाम इस भाषा के लिए रूढ़, सर्वग्राह्य या स्थायी नहीं हो सका। 'खड़ी बोली' नाम के अतिरिक्त इस भाषा के तीन भेदों या शैलियों के लिए 'हिन्दी', 'उर्दू' एवं 'हिन्दुस्तानी' नाम भी स्थायी और सर्वप्रचलित हुए हैं। इस भाषा (दिल्ली-मेरठ जनपद की बोली) का नाम 'खड़ी बोली' क्यों पड़ा? इसके कारणों की विवेचना करते हुए पं०किशोरीदास वाजपेयी ने जो मंतव्य प्रकट किया है, वह उल्लेखनीय है। वे लिखते हैं "कुरु जनपद(उ.प्र. में मेरठ डिविज़न) की बोली को 'खड़ी बोली' नाम भाषाशास्त्रियों ने नहीं, साधारण साहित्यिकों ने दिया।... प्रारंभ में 'खड़ी बोली' नाम इसलिए पड़ा कि इसमें कवियों को मधुरता न जान पड़ी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भी इसमें खड़खड़ाहट पाई। 'जब दाल पकती नहीं, कच्ची रह जाती है', तो लोग कहते हैं- 'दाल खड़ी रह गई'। इस सादृश्य से लोग इसे 'खड़ी' कहने लगे होंगे। परंतु इस चीज़ को न समझ कर कई विद्वानों ने लिख दिया कि खरी बोली का रूपांतर खड़ी बोली है। परंतु 'खड़ी बोली' नाम भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी

खरा उतरता है। मीठा, जाता, खाता आदि में जो खड़ी पाई आप(अंत में) देखते हैं, वह हिन्दी के अतिरिक्त इसकी किसी भी दूसरी बोली में न मिलेगी।"[५०] मौलाना हक़, डॉ.धीरेन्द्र वर्मा एवं पं०कामता प्रसाद गुप्त भी इस मत के समर्थक हैं। इसके अलावा खड़ी बोली नाम के पीछे सामाजिक कारण भी थे। खड़ी बोली जिस जनपद की मूल भाषा है, वहाँ वह कई शताब्दियों तक आम बोलचाल की जन-भाषा के रूप में प्रचलित रही। इस्लामी शासन-काल के दौरान ये व्यापारियों, सैनिकों और शासकीय कर्मचारियों द्वारा आम बोलचाल में पाली-पोसी जा रही थी। मुगल-शासन के अंतिम चरण में इसे राज्याश्रय प्राप्त हुआ। अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह ज़फर खड़ी बोली(उर्दू) के श्रेष्ठ कवि थे। अंग्रेज़ों के शासन काल में शासन, शिक्षा और व्यापार की वजह से उत्तर भारत में अनेक नगरों का विकास ज़ोर पकड़ गया और खड़ी बोली नगर की भाषा कहलाने लगी। यह स्पष्ट है कि दिल्ली-मेरठ जनपद के बाहर सभी प्रदेशों में वहाँ की अपनी बोलियाँ ही घरों या देहातों में बोली जाती थीं। खड़ी बोली केवल नगरों तक ही पहुँची थी। यह भेद उनकी भाषाओं में भी आ गया। नगरवासी अपनी भाषा(खड़ीबोली) को ग्रामवासियों की भाषाओं की तुलना में ऊँची या श्रेष्ठ मानने लगे। इस प्रकार यह दिल्ली-मेरठ जनपद की मूल घरू या ग्रामीण बोली सौदागरी पूंजी तथा पूंजीवादी संबंधों के प्रसार के कारण व्यापार, शिक्षा एवं शासन-केंद्रों के रूप में पनपने वाले नगरों में पहुँच कर अभिजात वर्ग की 'खड़ी बोली' कहलाने लगी। इसके नामकरण के पीछे आभिजात्य-संस्कृतिक दंभ या गौरव स्पष्ट रूप में निहित है, तभी उसे 'खड़ी बोली' कहा गया है।

साहित्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली का आरम्भिक प्रयत्न भी मुसलमान कवियों के द्वारा किया गया। श्री राहुल सांकृत्यायन के शब्दों "खड़ीबोली हिन्दी के सर्वप्रथम कवि यही दक्खिनी कवि थे। एक ओर उन्होंने बोलचाल की कौरवी को साहित्यिक भाषा का रूप दिया, तो दूसरी तरफ उन की कृतियों ने उर्दू कविता का प्रारम्भ किया।"[५१] यह देवनागरी और फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। साहित्यिक हिन्दी और उर्दू की मूलाधार भाषा खड़ी बोली को मानते हुए डॉ.धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं कि-"पश्चिमी हिन्दी मनुस्मृति के मध्यप्रदेश की वर्तमान भाषा कही जा सकती है। मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जानेवाली पश्चिमी हिन्दी का ही एक रूप खड़ीबोली से वर्तमान साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है।"[५२]

१.२.२)   मानक हिन्दी(खड़ीबोली) और बोलियों में अंतर :

हिन्दी (खड़ीबोली-पश्चिमी हिन्दी) तथा बोलियों में अंतर स्पष्ट करने वाले कुछ तथ्य-संकेत इस प्रकार हैं--

i) हिन्दी आकारांत प्रधान है (आया, गया, रहा, कहा, घोड़ा, माथा आदि) जबकि उसकी अधिकांश बोलियाँ ओकारांत-प्रधान हैं (आयो, गयो, रह्यो, कह्यो, घोड़ो, माथो आदि)।

ii) हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले संधिस्वर(ए,ओ) कुछ बोलियों में पृथक होकर मूल स्वर-युगल के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- दो-दुई, बैल-बइल, ऐसा-अइसा, कौन-कउन।

iii) अन्य कुछ बोलियों में यही स्वर स्वरसंधि के अनुसार परिवर्तित व्यंजनों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे- कौन-कवन(कवण)।

iv) इसके विपरित, कुछ बोलियों में हिन्दी के अर्धस्वर(य,व) के स्थान पर इनमें आभासित मूल स्वर इ-उ का प्रयोग देखा जाता है। यथा- यहाँ-इहां, वहाँ-उहां।

v) हिन्दी की अधिकांश बोलियों में हिन्दी के न् के स्थान ण् का उच्चारण प्रचलित है- पानी-पाणी, थाना-थाणा इत्यादि।

vi) द्वित्व व्यंजनों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी अधिकांश बोलियों में पाई जाती है। जैसे- तन्नै, मन्नै, गाड्डी, बाब्बू, भीत्तर।

vii) कई बोलियों में क्रियापदों के मध्यवर्ती व्यंजन को हलंत रूप में बोलने की प्रवृत्ति दिखाई देती है- मार्या, खेल्या, रह्या, कर्या, भेज्या, बोल्या इत्यादि।

viii) कहीं-कहीं परसर्ग में उच्चरित 'ओ' ध्वनि 'ओं' या 'ऊं' के रूप में प्रयुक्त होती है। जैसे- को-कूं(मेरे कूं, तेरे कूं), से-सों-सूं(मोसूं, तोसूं) इत्यादि।

ix) कई बोलियों की ध्वनियों में महाप्राणत्व की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल है- म्हारो, थारो आदि।

x) हिन्दी की 'ल्' ध्वनि का उच्चारण उसकी अनेक बोलियों में 'ल्' (ल् और ड़् की मध्यवर्ती ध्वनि) के रूप में सुना जाता है। यथा- काल, माला, नालाव इत्यादि।

xi) 'श्' के स्थान पर 'स्' का उच्चारण हिन्दी की अनेक बोलियों की प्रमुख प्रवृत्ति है- शमशेर-समसेर, शोक-सोक आदि।

xii) कुछ बोलियों में 'स्' का उच्चारण 'छ्' के रूप में भी होता है- सीता-छीता, सारा-छारा आदि।

सारांश यह है कि 'हिन्द' शब्द में 'ह्' ध्वनि ईरानियों के उच्चारण-दोष का परिणाम है जिससे आगे चलकर हिन्दू, हिन्दवी, हिन्दुई, हिन्दीक, हिन्दी शब्द बने। समयानुसार इनके अर्थ में परिवर्तन होता गया। कभी वस्तु के अर्थ में तो कभी व्यक्ति के लिए यह प्रयोग होती थी। इसमें मुख्य बात यह है कि हिन्दी शब्द पहले मुसलमानों के लिए इस्तेमाल किया गया और हिन्दू शब्द ग़ैरमुसलमानों के लिए जो भारतीय थे। अंग्रेज़ों के आने बाद हिन्दी-उर्दू में स्पष्ट भेद हो गया। हिन्दी संस्कृतनिष्ट हो गयी और उर्दू अरबी-फ़ारसी युक्त। जहाँ तक इसके मूलक्षेत्र का संबंध है प्राचीन कुरु जनपद ही खड़ी बोली का मूलक्षेत्र है, मेरठ जिसका केंद्र है दिल्ली जिसकी सीमा पर अवस्थित है और जिसमें उ.प्र. के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ पूर्णतः तथा बुलंदशहर, मुरादाबाद और बिजनौर जिलों के कुछ भाग सम्मिलित हैं। साथ ही हिन्दी का क्षेत्र उसकी बोलियों का प्रादेशिक क्षेत्र भी है। जहाँ उसके कई रूप बोले जाते हैं। हिन्दी का आरम्भिक रूप दक्खिनी हिन्दी के रूप में विकसित हुआ। हिन्दी और उसकी बोलियों के अंतर-सूचक अनेक अन्य उदाहरण भी खोजे जा सकते हैं; फिर भी ये सभी बोली-रूप ऐतिहासिक परम्परा तथा भाषिक संरचना की दृष्टि से, हिन्दी के साथ गुंथे हुए हैं। इनमें पारस्परिक बोधगम्यता, व्याकरणिक नियमों की समानता तथा सबसे अधिक सामाजिक-सांस्कृतिक रिक्त की सहभागिता इन्हें हिन्दी से अधिक दूर नहीं होने देती। विभिन्न बोलियों में रचित लोक-साहित्य हिन्दी की अमूल्य थाती है जिसकी नींव पर मानक हिन्दी का सर्जनात्मक साहित्य विशाल भवन के रूप में प्रतिष्ठित है।

[१] संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर; पृ.७९.

[२] वही,पृ.८०

[३] हिन्दी भाषा का इतिहास- भोलानाथ तिवारी; पृ.५०.

[४] वही, पृ.५०

[५] वही, पृ.५१

[६] वही, पृ.५२

[७] वही, पृ.५३

[८] वही, पृ.५३

[९] भाषा और समाज- डॉ.रामविलास शर्मा; पृ.७९

[१०] वही,पृ.७९

[११] वही,पृ.८३

[१२] भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास - जगदीश प्रसाद कौशिक; पृ.२१८-२१९

[१३] भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा - डॉ.देवेन्द्रकुमार शास्त्री; पृ.२९२

[१४] हिन्दी भाषा और नागरी लिपि - डॉ.केशवदत्त रूवाली, पृ.१७३

[१५] हिन्दी साहित्य कोश(भाग-१), पृ.८८८

[१६] वही,पृ.८८८,('तमर-हिन्दी',भोलानाथ तिवारी के अनुसार यही शब्द अंग्रेजी में टैमरिंड(*Tamarind=इमली*) है;हिन्दी भाषा का इतिहास, पृ.५३)

[१७] हिन्दी भाषा : उद्गम और विकास - उदयनारायण तिवारी; पृ.१८५;'Whatever live Hindu fell into the king's hands was founded into bits under the feet of Elephants.The Musalmans, who were Hindis(country born) had their lives spared'-Amir Khosru;Hobson-Jobson; p.415.

[१८] हिन्दी भाषा का इतिहास - भोलानाथ तिवारी, पृ.५४

१९ वही,पृ.५४

२० हिन्दी भाषा संरचना एवं प्रयोग - डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय, पृ.१२

२१ हिन्दी भाषा का इतिहास - भोलानाथ तिवारी, पृ.५५

२२ वही,पृ.५७

२३ वही,पृ.५७

२४ वही,पृ.५८

२५ सबरस - मुल्ला वजही; संपादक - श्रीराम शर्मा, पृ.१०

२६ हिन्दी भाषा का इतिहास - भोलानाथ तिवारी, पृ.५८

२७ वही,पृ.५९

२८ वही,पृ.५९-६०

२९ वही,पृ.६०-६१

३० हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.६३

३१ खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास - ललित मोहन अवस्थी, पृ.५०

३२ वही,पृ.५७

३३ भाषा विज्ञान - श्यामसुंदर दास, पृ.१०६

३४ हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास - रामेश्वरनाथ भार्गव, पृ.४

३५ हिन्दी भाषा का परिचय - विन्दुमाधव मिश्र, पृ.७०(भूमिका)

३६ भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी, पृ.१५१

३७ वही, पृ.१५३

३८ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.५३

३९ भाषा विज्ञान- भोलानाथ तिवारी, पृ.१५४

४० वही,पृ.१५४

४१ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,(प्रस्तावना,पृ.२५)

४२ हिन्दी भाषा: विकास और स्वरूप - कैलाशचंद्र भाटिया-मोतिलाल चतुर्वेदी, पृ.२१८

४३ वही,पृ.२१९

४४ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.६४

४५ हिन्दी भाषा का इतिहास- डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.१२१

४६ हिन्दी भाषा का परिचय - विन्दुमाधव मिश्र, भूमिका, पृ.९३

४७ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.१२१

४८ वही,पृ.१२१-१२२

४९ भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डॉ.सुनीतिकुमार चटर्जी, पृ.१३४

५० खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास- ललित मोहन अवस्थी, पृ.५३-५४

५१ भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा- डॉ.देवेन्द्रकुमार शास्त्री; पृ.१६९

५२ वही,पृ.५६

प्रस्तावना

साहित्य के समानान्तर भाषा का इतिहास भी चलता रहता है। साहित्य की निर्मिति में भाषा बराबर साथ चलती है। साहित्य के ज़रिए भाषा के रूप को समझने में सहायता मिलती है। इसके अलावा भाषा एवं साहित्य को प्रभावित करने वाले भी कई कारण होते हैं। हिन्दी साहित्य की तरह ही हिन्दी भाषा के इतिहास को विद्वानों ने तीन खण्डों में विभाजित किया है। इसके साथ ही कालक्रम या समय सीमा भी वही है जो साहित्येतिहास में दिखाई देती है। इसका सम्यक विवेचन इस अध्याय में किया गया है। काल विभाजन के अंतर्गत भाषा में हुए परिवर्तनों को भी विश्लेषित किया गया है, ताकि हिन्दी भाषा के कालावधि में हुए रूप परिवर्तनों को समझने में आसानी हो सके।

२)   हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

हिन्दी के साथ एक विचित्र संयोग यह रहा कि आज दक्षिण भारतीय जिस भाषा को उत्तर की मानते हैं वह अपने प्रारम्भिक रूप में दक्षिण में ही विकसित हुई एवं वहीं उसका सर्वाधिक प्रचार-प्रसार हुआ। दक्षिणाचार्य चिंहोद्योतन ने सातवीं शताब्दी में सर्वप्रथम इसी भाषा में अपना ग्रंथ लिखा। हिन्दी, जहाँ दक्षिण प्रदेश में बहमनी काल में, शासन की भाषा के रूप में प्रयुक्त होने लगी थी, वहीं उत्तर भारत में १८वीं शताब्दी तक भी इसे राज्याश्रय प्राप्त नहीं हो सका। इसके अतिरिक्त ब्रज और अवधी के प्रभुत्व ने भी उत्तर भारत में खड़ी बोली को महत्व प्राप्त नहीं होने दिया। हिन्दी जिसका मूलाधार खड़ी-बोली है एक स्वतंत्र भाषा है जिसका जन्म शौरसेनी से हुआ है। भोलानाथ तिवारी के अनुसार-"यह(खड़ी बोली) एक मिश्रित बोली है जिसमें प्रमुख बातें तो कौरवी की हैं, किंतु साथ ही पंजाबी, बाँगरू, ब्रज के तत्व भी अपने मूल या परिवर्तित रूप में इसमें समाहित हैं। इस प्रकार यह मध्यदेश के भाषा-रूपों पर आधारित है और इसे उत्पत्ति की दृष्टि से शौरसेनी अपभ्रंश या उसके सन्धिकालीन रूप शौरसेनी अवहट्ठ से सम्बद्ध कर सकते हैं।"[१]

१०वीं-११वीं शती में मुसलमानों ने जब उत्तरी भारत पर आक्रमण करना और अधिकार जमाना शुरू किया तब उनके सम्पर्क से प्रायः सभी भारतीय आर्य भाषाओं के शब्द समूह में अरबी-फ़ारसी-तुर्की के शब्दों का आयात शुरू हुआ। यह स्वाभाविक भी था कि दिल्ली के आसपास की बोलियों में इन विदेशी भाषाओं के आगत शब्दों का अनुपात कुछ अधिक होता है। अनुमान है कि आरम्भ में जब मुसलमानों ने खड़ी बोली का प्रयोग किया तो अनजाने ही उसमें कुछ अपने शब्द मिला लिए और बाद में उसी मिली-जुली भाषा को 'रेख्ता' कहने लगे। फिर इसी मिली-जुली बोलचाल की भाषा को दक्खिन में 'दक्खिनी' या 'दक़नी' कहा गया। आगे चलकर बहुत बाद में विवाद उठने पर रेख्ता, दक्खिनी या दक़नी, हिन्दवी या हिन्दुई, उर्दू, खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी आदि नामों को लेकर भ्रम और प्रयोग भेद से कई नाम-रूप बन गए जिनका अपना इतिहास है।

खड़ी बोली में प्रयुक्त रूपों के बीज तो हमें प्राकृत-काल में ही मिलने लगते हैं। अपभ्रंश-काल में आकर वे और स्पष्ट हो गए। उदाहरणार्थ, हम, हमारी, तू, जो, है, हो,

कही, गए, के ,का, आज, कैसे, -जैसे रूप अपभ्रंश के अंतिम काल में मिलने लगते हैं, यद्यपि उनका प्रयोग बहुत अधिक नहीं हुआ है। संधिकालीन तथाकथित अवहट्ठ की प्राकृत-पैंगलम् वर्णरत्नाकर, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, संदेशरासक एवं कीर्तिलता आदि में भी खड़ी बोली के अनेक रूप हैं। यों उनमें कुछ विकसित हैं और कुछ अविकसित। उदाहरणार्थः परसर्ग- का, के। सर्वनाम- हम, हमारी, तू, तुम्हें, तुम्ह, जो, कोई, अपना। संख्यावाचक विशेषण- एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, बारह, तेरह, सोलह, बाइस, सत्ताइस, अट्ठाइस, बत्तीस आदि। क्रियाः भूत- आए, भरे, गए, चले; वर्तमान- है, हो, हों। अव्यय- आज, जहाँ, तहाँ, जब, तब आदि।

२.१) काल-विभाजन :

हिन्दी भाषा के इतिहास को विद्वानों ने तीन काल-खण्डों में विभाजित किया है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा[२] ने हिन्दी के क्रमिक विकास की अवधि को ऐतिहासिक आधार पर तीन खण्डों में विभक्त किया है

अ) प्राचीन काल (१०००ई.-१५००ई.)
आ) मध्यकाल (१५००ई.-१८००ई.)
इ) आधुनिक काल (१८००ई. से प्रारम्भ)

अधिकांश विद्वानों ने हिन्दी भाषा के इतिहास का आरम्भ १०००ई. से ही माना। डॉ.भोलानाथ तिवारी ने इस मान्यता के पीछे यह तर्क दिया है और कहा है कि-"यों तो हिन्दी के कुछ रूप पालि में मिलने लगते हैं, प्राकृत में उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है तथा अपभ्रंश में उनमें और भी वृद्धि हो गई है, किन्तु सब मिलाकर इनका प्रतिशत इतना कम है कि १०००ई. के पूर्व हिन्दी का उद्भव नहीं माना जा सकता। साहित्य के इतिहासों में कुछ लोगों ने हिन्दी का प्रारम्भ और भी बाद में माना है, किन्तु वास्तविकता यह है कि साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग जन्म के साथ ही नहीं हो जाता।... इस तरह, यदि लगभग ११५०ई. के आसपास से भी हिन्दी साहित्य मिले तो भी उस भाषा का आरंभ १०००ई. के आसपास ही मानना पड़ेगा। उसके पूर्व या बाद में नहीं।"[३] अतः डॉ.भोलानाथ तिवारी[४] ने हिन्दी भाषा के इतिहास को तीन काल खण्डों में बाँटा है-

अ) आदिकाल (१०००ई.-१५००ई. तक)
आ) मध्यकाल (१५००ई.-१८००ई. तक)
इ) आधुनिक काल (१८००ई. से अब तक)

यहाँ यह संकेत कर देना आवश्यक है कि डॉ.भोलानाथ तिवारी ने हिन्दी भाषा और खड़ी बोली के इतिहास का काल विभाजन लगभग एक ही माना है। इस संदर्भ में उनकी पुस्तक 'हिन्दी भाषा का इतिहास' देखी जा सकती है।

डॉ.केशवदत्त रूवाली[५] ने भी हिन्दी भाषा के इतिहास का आरंभ १०००ई. से माना है। उन्होंने हिन्दी भाषा के एक हजार वर्षों के इतिहास को उपर्युक्त तीन कालों में ही विभाजित किया है--

अ) आदिकाल (१०००ई.-१५००ई. तक)
आ) मध्यकाल (१५००ई.-१८००ई. तक)
इ) आधुनिक काल (१८००ई. से अब तक)

डॉ.हरिश्चन्द्र पाठक का कहना है-"ज्यों-ज्यों आर्यभाषाओं के बोलने वालों की संख्या तथा क्षेत्र में अभिवृद्धि होती रही, त्यों-त्यों उनकी भाषा की रूप-रचना में विविधता बढ़ती गई। यही कारण है कि वैदिक संस्कृत के काल से लेकर अपभ्रंश भाषाओं के काल तक आर्यभाषाएँ कई उपभाषाओं में विभक्त हो गईं, जिनमें से हिन्दी की बोलियाँ विकसित हुईं। १०००ई. से लेकर अब तक के हिन्दी भाषा के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया जाता है"।[६]

अ) आदिकाल (१०००ई.-१५००ई. तक)
आ) मध्यकाल (१५००ई.-१८००ई. तक)
इ) आधुनिक काल (१८००ई. से प्रारम्भ)

परंतु इन सबसे अलग डॉ०ललित मोहन अवस्थी ने खड़ी बोली के विकास-क्रम के इतिहास को निम्न तरीके से प्रस्तुत किया है। इसके पीछे उनका तर्क है कि- "चूंकि भाषा एक सामाजिक वस्तु है और सामाजिक विकास से उसका अटूट संबंध रहता है इसलिए सामाजिक इतिहास व परिवर्तनों के विभिन्न चरणों में भाषा के इतिहास व परिवर्तनों को देखना न्यायसंगत है। इसी आधार पर हम खड़ी बोली के विकास की

विभिन्न अवस्थाओं को निम्नलिखित कालों या चरणों में विभाजित कर सकते हैं"[७]--

अ) सामंती युग- i) आदिकाल (१०००ई. से १२००ई. तक)
ii) पूर्व मध्यकाल (१२००ई. से १५००ई. तक)
iii) उत्तर मध्यकाल (१५००ई. से १८००ई. तक)

आ) पूँजीवादी युग- iv) आधुनिक काल (१८००ई. से १९४७ई. तक)
- पूर्व भारतेंदु युग- १८००ई. से १८५०ई.।
- भारतेंदु युग- १८५०ई. से १९००ई.।
- द्विवेदी युग- १९००ई. से १९२५ई.।
- प्रेमचंद युग- १९२५ई. से १९४७ई.।
v) वर्तमान काल (१९४७ई. से वर्तमान समय तक)

२.१.१) आदिकाल (१०००ई.-१५००ई. तक) : अपभ्रंशों से उद्भूत होने के कारण आदिकाल के पूर्वार्ध में हिन्दी अपभ्रंशों के व्याकरणिक रूप लुप्त और हिन्दी के नए रूप विकसित होते रहे। कालांत तक हिन्दी की स्वतंत्र रूप रचना स्पष्ट हो गई। इस काल के साहित्यकारों में गोरखनाथ, अमीर खुसरो, चन्दबरदाई, नरपति नाल्ह, विद्यापति, कबीर, गेसूदराज बन्दनवाज़ के नाम उल्लेखनीय हैं। आदिकालीन हिन्दी की मुख्य विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं-

ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

i) आदिकालीन हिन्दी में अपभ्रंश में प्रयुक्त ध्वनियों का ही प्रयोग मिलता है जिसमें मुख्य आठ स्वर- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ- के अतिरिक्त आदिकालीन हिन्दी में दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए। ऐ, औ संयुक्त स्वर थे। इनका उच्चारण क्रमश: अए, अओ जैसा था।

ii) च्, छ्, ज्, झ् व्यंजन जो आदिकाल के पूर्व स्पर्श व्यंजन थे, आदिकाल में स्पर्श संघर्षी हो गए।

iii) उच्चारण की दृष्टि से न्, र्, ल्, स् इस काल में वर्त्स्य व्यंजन हो गए, जो कि पहले दन्त्य थे।

iv) इस काल में ड़्, ढ़् व्यंजन का विकास हुआ।

v) न्ह्, म्ह्, ल्ह् पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न्, म्, ल् संयुक्त व्यंजन न रहकर मूल व्यंजन हो गए।

vi) द्वित्व व्यंजन वाले शब्दों में एक ही व्यंजन शेष रहा, जिसका पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ हो गया; जैसे- अज्ज>आज, कम्म>काम।

व्याकरण संबंधी विशेषताएँ : आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण १०००ई. या ११००ई. के आसपास तक अपभ्रंश के बहुत निकट था किन्तु धीरे-धीरे १५००ई. तक आते-आते हिन्दी अपने पैरों पर खड़ी हो गई और अपभ्रंश प्रायः प्रयोग से निकल गए।

i) आदिकालीन हिन्दी में वियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला।

ii) सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों(कारक चिन्हों) का प्रयोग काफ़ी होने लगा; जैसे भूतकालिक क्रिया- चलिया>चल्या>चला।

iii) इस काल में वचन तथा लिंग दो-दो रह गए।

iv) कृदंतों से बनी क्रियाओं में लिंग-परिवर्तन पूरी तरह होने लगे।

v) वाक्य-रचना में शब्द-क्रम आदि कुछ विकसित से होने लगे।

शब्द-भण्डार :

i) भक्ति-आंदोलन के प्रारम्भ स्वरूप तत्सम शब्दावली आदिकालीन हिन्दी में अपभ्रंश की तुलना में कुछ बढ़ने लगी थी।

ii) मुसलमानों के आगमन के साथ अरबी, फ़ारसी और तुर्की के कुछ शब्दों का प्रयोग हिन्दी में होने लगा था।

२.१.२) मध्यकाल(१५००ई. से १८००ई. तक) : मध्यकाल में हिन्दी अपभ्रंश के रूपों से

मुक्त हो गई थी। उसकी कई बोलियाँ अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण सशक्त हो चुकी थीं, जिन्हें साहित्यकारों ने सहर्ष अपनाया। ब्रज, अवधी, मैथिली, उर्दू और खड़ी बोली में सम्यक रूप से साहित्य रचना हुई।

ध्वनि संबंधी विशेषताएँ :

i) शब्द व्यंजनांत उच्चरित होने लगे। अंतिम आकार लुप्त हो गया; उदाहरण राम>राम्।

ii) 'ह' के पहले का 'अ' कुछ स्थितियों में 'ए' जैसा उच्चरित होने लगा; जैसे रहते>रेते।

iii) तुर्की-अरबी-फ़ारसी के काफ़ी शब्द प्रचलित होने लगे और उन शब्दों के माध्यम से क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़् -ये पाँच नये व्यंजन हिन्दी में आ गए।

व्याकरण :

i) परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग और भी बढ़ गया। भाषा और अधिक वियोगात्मक हो गई।

ii) सर्वनामों में नए और पुराने दोनों प्रकार के रूप थे; जैसे- हम, तुम, हम्ह, तुम्ह।

iii) उच्चवर्ग में फ़ारसी का प्रचार होने का कारण हिन्दी वाक्य-रचना फ़ारसी वाक्य-रचना से प्रभावित होने लगी थी। 'कि' की सहायता से वाक्य बनने लगे थे।

शब्द-भण्डार :

i) शब्द-भण्डार की दृष्टि से इस काल तक काफ़ी शब्द फ़ारसी, अरबी, पश्तो, तुर्की से हिन्दी में आ गए। डॉ.भोलानाथ तिवारी ने इन विदेशी शब्दों की संख्या भी गिनाई है- "फ़ारसी- लगभग ३५००, अरबी- लगभग २५००, पश्तो- लगभग ५०, तुर्की- लगभग १२५। इस तरह इन आगत विदेशी शब्दों की संख्या लगभग ६,००० हो गई।"[८]

ii) यूरोप से संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी शब्द हिन्दी में आ गए।

iii) भक्त-आंदोलन के चरम बिंदु पर पहुंचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया।

२.१.३) <u>आधुनिक-काल(१८००ई. से अब तक)</u> : आधुनिक काल में हिन्दी की बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व सुस्पष्ट हो गया। खड़ीबोली ने ब्रज और अवधी से आगे बढ़कर विशेष उन्नति की। उसके लेखन में विराम-चिन्हों के प्रयोग से अनुशासन बढ़ा और वाक्य-रचना पर अंग्रेजी तथा फ़ारसी शैलियों के प्रभाव से निखार आया। इस काल में आकर खड़ीबोली की हिन्दी-उर्दू दो शैलियाँ स्पष्ट ही गईं।

<u>ध्वनि संबंधी विशेषताएँ</u> :

i) क़्, ख़्, ग़् के ठीक प्रयोग में प्राय: कमी आई है।

ii) अंग्रेज़ी में प्रयुक्त होने के कारण ज़, फ़ का प्रयोग हो रहा है।

iii) अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में 'ऑ'(कॉलिज, डॉक्टर, ऑफ़िस, कॉफ़ी आदि में) ध्वनि भी हिन्दी में प्रयुक्त हो रही है। अन्यत्र उसके स्थान पर ' 'आ' का प्रयोग होता है।

iv) अंग्रेजी शब्दों के प्रचार कारण कुछ नये संयुक्त व्यंजन जैसे; ट्र(ट्रेन), ड्र(ड्रामा) हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे हैं।

v) स्वरों में ऐ, औ का उच्चारण पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में सामान्यत: मूल स्वर के रूप में होता है जबकि पूर्वी हिन्दी क्षेत्र में ये अऍ, अऑ रूप में संयुक्त स्वर के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। नैया, वैयाकरण, कौआ जैसे शब्दों में पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों ही हिन्दी क्षेत्रों में ऐ, औ का उच्चारण क्रमश: संयुक्त स्वर अइ, अउ रूप में होता है।

vi) आधुनिक काल में हिन्दी में उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं है जबकि मध्यकाल में 'अ' का लोप शब्दांत में तथा कुछ स्थितियों में अक्षरांत में होना प्रारंभ हुआ

था।

vii) 'व' ध्वनि आदिकाल तथा मध्यकाल में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः द्वयोष्ठ्य रूप में उच्चरित होती थी, अब वह कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी के काफ़ी शब्दों में दंतोष्ठ्य रूप में उच्चरित हो रही है।

viii) संयुक्त रूप में प्रयुक्त 'ऋ' भी 'र्' की भाँति उच्चरित होने लगा है; जैसे कृपा>क्रिपा।

व्याकरण :

i) समाचार पत्रों, रेडियो तथा सरकारी कामों में अंग्रेज़ी का प्रयोग बड़ा। हिन्दी भाषा अपनी वाक्य-रचना, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के क्षेत्र में अंग्रेजी से बहुत अधिक प्रभावित हुई। अंग्रेज़ी ने विराम-चिन्हों के माध्यम से हिन्दी वाक्य-रचना को प्रभावित किया है। 'ऑ' का प्रयोग हिन्दी भाषा में हो रहा है।

ii) सर्वनामों में कई कारकों के रूप सम्बन्ध के आधार पर बनने लगे हैं; मेरे को, मेरे से, मेरे में।

iii) 'हम जा रही हैं' के स्थान पर भी पुल्लिंग रूप 'हम जा रहे हैं' जैसे प्रयोग अधिक प्रचलित हो गए हैं।

iv) सहायक क्रिया के प्रयोग की प्रवृत्ति कम हो रही है, विशेषतः अपूर्ण वर्तमान में 'मैं जा रहा हूँ' के स्थान पर 'मैं जा रहा'।

v) मैं, तू के स्थान पर बहुवचन हम, तुम का प्रयोग बढ़ गया है।

vi) ऐ, औ संयुक्त स्वर आदिकाल में आए थे, किन्तु अब वे पुनः लुप्त हो रहे हैं और इनके स्थान पर अर्ध-विवृत स्वरों का प्रयोग होता जा रहा है।

शब्द-भण्डार : आधुनिक काल में शब्द-समूह में विशेष परिवर्तन होते जा रहे हैं। अब अंग्रेज़ी शब्द बहुत अधिक आ गए हैं, और वे हमारी भाषा के अंग बन गए हैं। शब्द

भण्डार की दृष्टि से १८०० से अब तक के आधुनिक काल को मोटे रूप में छः-सात उपकालों में विभाजित किया जा सकता है।

i) १८०० से १८५० तक का हिन्दी शब्द-भण्डार मोटे रूप में वही था जो मध्यकाल के अंतिम चरण में था। अंतर केवल यही था कि धीरे-धीरे अंग्रेज़ी के अधिकाधिक शब्द हिन्दी भाषा में आते जा रहे थे।

ii) १८५० से १९००ई. तक अंग्रेज़ी शब्दों की प्रचुरता के साथ आर्य समाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा और कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिन्दी से निकल गए।

iii) १९००ई. के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादी काल में तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ना आरंभ हो गया।

iv) प्रगतिवादी आंदोलन ने १९३६ के बाद हमारी धारा गाँवों की ओर मुड़ी और उसके परिणामस्वरूप आंचलिक शब्द और मुहावरे साहित्यिक खड़ीबोली के अंग बनने लगे।

v) १९४७ई. के बाद शब्द-भण्डार में कई बातें उल्लेख्य हैं-

- अनेक पुराने शब्द नये अर्थों में प्रचलित हो गए हैं; जैसे 'सदन' शब्द राज्यसभा तथा लोक सभा के लिए प्रयुक्त हो रहा है।

- नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक(फ़िल्माना, घुसपैठिया) नये शब्द हिन्दी में आ गए हैं।

- साहित्य की भाषा बोलचाल के बहुत निकट है। उसमें अरबी-फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी के जन प्रचलित शब्दों का प्रयोग हो रहा है। आलोचना की भाषा अब भी एक सीमा तक तत्सम शब्दों से लदी हुई है।

- पारिभाषिक शब्दों की पूर्ति के लिए अनेक अंतर्राष्ट्रीय शब्द अपनाए जा रहे हैं, नये शब्द बनाए जा रहे हैं तथा भारत की अन्य भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए जा रहे हैं। और इस तरह विज्ञान, वाणिज्य विधि के लिए भी

काफ़ी शब्द गढ़े जा चुके हैं। हिन्दी भाषा में विज्ञान, वाणिज्य विधि की पुस्तकें छात्रों तक पहुँच चुकी है। अत: स्वभावत: अपनी अभिव्यंजना शक्ति से सर्वोन्मुखी विकास कर रही है और वह दिनोंदिन सभी दृष्टियों समर्थ एवं सम्पन्न होती जा रही है।

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी भाषा के इतिहास के काल-विभाजन में अधिकांश विद्वानों का मत एक समान है। हिन्दी भाषा के भाषिक विकास को देखने पर यह लगता है कि आदिकाल के पूर्व वह अपभ्रंश के कुछ समीप थी जबकि उत्तरार्ध में उसका अपना रूप निखरने लगा था। मध्यकाल में मुसलमानों के प्रभाव से अरब-फ़ारसी शब्द हिन्दी में आ गए थे। आधुनिक काल में अंग्रेज़ी शब्दों के साथ तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग होने लगा। कुछ अंग्रज़ी शब्दों का हिन्दीकरण किया गया जिससे अंग्रेज़ी की 'ऑ' ध्वनि हिन्दी में आई। साथ ही बोलचाल की भाषा का रूप निखरा एवं हिन्दी आज के रूप में पहचानी जाने लगी।

[१] हिन्दी भाषा का इतिहास - भोलानाथ तिवारी, पृ.१२२

[२] हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास - डॉ.भगवतशरण चतुर्वेदी, पृ.३१

[३] हिन्दी भाषा का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ - डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.१०

[४] वही,पृ.१०

५ हिन्दी भाषा और नागरी लिपि - डॉ.केशवदत्त रूवाली, पृ.१६७

६ हिन्दी भाषाः इतिहास और संरचना - डॉ.हरिश्चन्द्र पाठक, पृ.७६

७ खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास- ललित मोहन अवस्थी, पृ.

८ हिन्दी भाषा का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ - डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.१३

प्रस्तावना

दक्खन शब्द सुनते ही सामान्य व्यक्ति को अगर दिशा का संकेत मिले तो कोई अचरज की बात न होगी। इसी बात से 'दक्खिनी' शब्द भी जुड़ा है जिससे दक्खन या दक्षिण में रहने वाले व्यक्ति या उसकी भाषा का बोध होता है। इतिहास गवाह है कि यह नाम आज भी दक्खिनी की उन रचनाओं में दस्तावेज़ के रूप में मिलता है जिनसे उनके रचनाकारों की ख्याति आज भी बनी हुई है। जब दक्खिनी शब्द को हिन्दी के साथ जोड़ दिया जाता है तब हिन्दी के भौगोलिक क्षेत्र में और विस्तार देखने को मिलता है। इसके साथ दक्षिण की अधिकांश बोलियों का प्रभाव दक्खिनी हिन्दी पर परिलक्षित होता है। हालाँकि दक्खिनी हिन्दी दिशावाची भाषा का द्योतक है लेकिन इसके अनेक प्रचलित नाम जैसे हिन्दवी, हिन्दुस्तानी आदि हैं। इन पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग इनके रचनाकारों द्वारा किया गया है जो इस बात को इंगित करता है कि दक्खिनी हिन्दी पूरे राष्ट्र की भाषा है।

३.१ दक्खिनी हिन्दी - उद्‌भव और विकास

३.१.१) दक्खन~दखन~दकन (दक्षिण):

शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से दक्खन~दखन~दकन दक्षिण शब्दभव हैं। 'दक्षिण' शब्द दिशावाची है। दिशावाची शब्द भाषासूचक शब्दों के विशेषण के रूप में तो मिलते हैं; जैसे पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, लेकिन एक भाषा विशेष के लिए दिशावाची शब्द का प्रयोग भारत में सिर्फ दक्खिनी के लिए ही प्रयुक्त है। वैसे तो इस दिशावाची शब्द का प्रदेश-सूचक अर्थ में प्रयोग का एक लम्बा इतिहास है। रामायण और महाभारत में दक्षिणापथ का उल्लेख मिलता है-

द्रविडाः सिन्धुसौवीराः सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः
वङ्गाङ्गमगधा मत्स्याः समृद्धाः कोशिकोसलाः। [१]

एते गच्छन्ति बहवः पन्थानो दक्षिणापथम्।
अवन्ती मृक्षवन्तं च समतिक्रम्य पर्वतम् ।।
एष विन्ध्यो महाशैलः पयोष्णी च समुद्रगा।
आश्रमाश्च महर्षीणाममी पुष्प फलान्विताः।।
एष पन्था विदर्भाणामयं गच्छति कोसलाम्।
अतः परंच देशोऽयं दक्षिणे दक्षिणापथः।। [२]

-महाभारत ३/५८/२०-२२

यही दृष्टि आगे चलकर आधुनिक युग में भी चलती रही है। भूगोलवेत्ताओं ने भी 'दक्खन' शब्द का प्रयोग नर्मदा और कृष्णा नदियों के बीच का प्रदेश के लिए किया है।

भौगोलिक दृष्टि से दक्खन के अन्तर्गत वर्तमान महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल प्रदेश का भूभाग आता है। यही दक्खन प्रान्त दक्खिनी हिन्दी का भी प्रदेश है। दक्खिनी हिन्दी के प्रमुख रचनाकारों ने अपनी कृतियों में 'दक्खन' शब्द का प्रयोग उपरोक्त स्थानों के लिए किया है। मुल्ला वजही ने दक्खन प्रान्त की चर्चा करते हुए अपनी कृति 'कुतुब मुशतरी' में लिखा है-

दक्खन सा नहीं ठार संसार में,
पंच फ़ाज़िलाँ का है इस ठार में।
दक्खन मुल्क कूँ धन अजब साज है,
के सब मुल्क सर होर दक्खन ताज है।
दखन मुल्क भोतींच खासा अहै,
तिलंगाना इस का ख़ुलासा अहै।[३]

गवासी ने अपनी कृति 'सैफुल मुलुक व बदीउल जमाल' में उस समय के अनेक स्थानों का उल्लेख किया है-

'खुरासान, रूम हौर शाम हौर खुतन
इब्श हौर गुजरात दिल्ली दखन'[४]

कवि शाह तुराब ने अपनी कृति 'मनसमझावन' में दक्खन प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों के एकता के बारे में कहते हुए लिखा है--

चमन क्या है दरकार मेरे- चमन सूँ
न मतलब रखे हिन्द व मुल्के- दकन सूँ।[५]

उक्त उदाहरणों से यह कहा जा सकता है कि १५वीं शती तक भारत का दक्षिण भूभाग दक्खन के नाम से अभिहित किया गया है।

३.१.२) दक्खिनी~दखनी~दकनी :

स्थानवाची 'दक्खन' शब्द का प्रयोग धीरे-धीरे उस भाषा के लिए प्रयुक्त किया गया, जिसका दक्षिण में बहमनी और बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर आदि से सम्बन्धित मुसलमान कवियों ने साहित्य के लिए उपयोग किया है। इन राजवंशों का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि पन्द्रहवी शती से लेकर अठारहवीं शती तक इनके दरबारों में दक्खिनी हिन्दी भाषा साहित्य की गद्दी पर प्रतिष्ठित थी। उत्पत्ति की दृष्टि से 'दक्खन' शब्द से ही दक्खनी का सम्बन्ध है। 'दक्खिनी' दक्षिण के लोगों द्वारा व्यवहृत भाषा को सूचित करती है- ."The form of old

Hindi speech taken to the Deccan came to be known as Dakhini, the speech of the south."[६] लेकिन यह संज्ञा हिन्दी के उस भाषा रूप को सूचित करती है, जो हिन्दी में अनेक भाषाओं के अभिसरण से विकसित हुई है। यहाँ हिन्दी संज्ञा उन सब हिन्दी की बोलीगत रूपों की समिष्टि बोधक है, जिनमें ब्रज, राजस्थानी, अवधी आदि भाषाएँ भी सम्मिलित होती हैं। इसीलिए दक्खिनी को 'दक्खिनी हिन्दी' संज्ञा भी उपयुक्त मानी जा सकती है। डॉ.ग्रियर्सन महोदय की मान्यता है कि "हिन्दोस्तानी का दक्षिण के मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त रूप दक्खिनी है।"[७] लेकिन यह तर्क उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि दक्खिनी हिन्दी सिर्फ मुसलमान लोगों द्वारा प्रयुक्त और साहित्यिक भाषा के रूप में ग्रहीत नहीं है, बल्कि दक्षिण के हिन्दुवों की भी भाषा है। इसकी पुष्टि श्री पुरुषोत्तम जी कृत हिन्दुस्तानी नाटक के क्षेत्र में दक्खिनी भाषा का प्रयोग भाषा की लोकप्रियता की ओर संकेत करती है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि दक्षिण की जनता, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, भी इस भाषा को समझती थी और नाटकों के सार्वजनिक प्रदर्शन से इसकी ओर उनकी रुचि प्रकट होती है।

राजनीतिक और सामरिक महत्व की दृष्टि ने मुहम्मद तुगलक ने दक्षिण में अपनी राजधानी बनाने का निश्चय किया। १३२७ ई. में मुहम्मद तुगलक के आदेश पर सेना, जनता तथा व्यापारी वर्ग के हज़ारों परिवारों को वहाँ जाना पड़ा। १३२९ ई. में जब पुनः दिल्ली लौटने का आदेश हुआ तो कुछ परिवार वहीं रह गए। सैनिकों में हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्मिलित थे और अधिकांशतः दिल्ली के थे। वे ऐसी मिश्रित भाषा बोलते थे जिस पर पंजाबी, हरियाणवी, अवधी और ब्रज का प्रभाव था। अब इन लोगों का दक्खिन में ऐसे विदेशी अधिकारियों से सामना हुआ जिनकी मातृभाषा अरबी, फ़ारसी अथवा तुर्की थी और आसपास के लोगों की भाषा तेलुगु अथवा कन्नड़, मराठी थी। इस प्रकार जो मुसलमान और हिन्दू खिलजी तथा तुगलक शासकों के समय में दक्खिन में आये, वे उन्हीं बोलियों में अपना भाव व्यक्त करते थे, जो उन दिनों उत्तर भारत में मुख्य रूप से प्रयुक्त हो रही थीं। चुंकि उक्त आगन्तुकों में बहुत बड़ी संख्या दिल्ली की थी, इसलिए दक्खिन में इन लोगों की जो परिनिष्ठित और साहित्यिक बोली तैयार हुई, उसमें सबसे अधिक योगदान दिल्ली के आस-पास की बोली का है, जिसे खड़ी बोली के नाम से सम्बोधित किया गया। इतना होते हुए भी हिन्दी से संबंधित अन्य बोलियों के प्रभाव से यह परिनिष्ठित रूप कभी मुक्त नहीं रहा। अतः इनकी जन साधारण से विचार विनिमय की नौबत आई तो विभिन्न बोलियों के सम्मिश्रण से एक नई भाषा का जन्म हुआ जो 'दक्खिनी' अथवा 'दकनी' कहलाई और इसका यह नाम प्रादेशिक रूप में विख्यात

हो गया और कालांतर में 'दक्खिनी' नाम विशेषण से विशेष्य बन गया।

३.२ दक्खिनी हिन्दी के प्रचलित नाम

वैसे दक्खिनी हिन्दी अनेक नामों से अभिहित है। दक्खिनी हिन्दी के कृतिकारों ने जानबूझ कर ही अपनी रचनाओं में अपनी भाषा विषयक चर्चा के संदर्भ में उर्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने अपनी भाषा का परिचय जहाँ दिया है वहाँ उसे हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी~दकनी~दखनी और हिन्दुस्तानी नामों से संबोधित किया है। दक्खिनी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मुल्ला वजही ने अपनी कृति 'कुतुब मुशतरी' में कहा है--

<u>दक्खिनी</u> :

'दखन में जो दखिनी मीठी बात का,
अदा नईं किया कोई इस धात का।'[८]

और एक जगह कहते हैं--

'यो क़िस्सा वो मसला हुआ दक्खनी'[९]

सनअती ने अपनी मसनवी 'किस्से बेनजीर' में अपनी भाषा को दखनी कहा है--

'जिसे फ़ारसी का न कुछ ग्यान है
सो दखिनी ज़बां उसको आसान है।'[१०]

'गुलशने इश्क' में नुसरती ने भी अपनी भाषा को दखनी माना है--

'सफाई की सूरत की है आरसी,
दखनी का किया हूं शेर फ़ारसी।'[११]

'फूलबन' में इब्ने निशाती ने अपनी भाषा के लिए भी दखनी शब्द का प्रयोग किया है--

इसे हर किसके तयीं समजा को तूं बोल,
दक्खन की बात सूं सिरयां को के खोल।[१२]

आरम्भिक काल के कवि कुरैशी बीदरी ने अपनी रचना 'भोगबल' में लिखा है--

'सो इस शाह के दौर में बीदर मुकाम
यो शायर किया नज़्म दक्खिनी तमाम।'[१३]

हाशमी ने अपनी कृति 'यूसुफ ज़ुलेखा' में अपनी भाषा को दक्खनी माना है--

तेरे शेर का जग में दखनी है नाऊं
नको भौत कर दुसरी बोली मिलाऊं।[१४]

हिन्दी :

दक्खिनी हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपनी भाषा को हिन्दी माना है। दक्खिनी हिन्दी साहित्य का प्रसिद्ध गद्य काव्य सबरस में मुल्ला वजही ने अपनी भाषा को हिन्दी ठहराया है--

"हिन्दुस्तान में, हिन्दी ज़बान सूँ इस लताफ़त, इस छन्दाँ सूँ नज़्म होर नसर मिला कर, गुला कर यूँ नईं बोल्या"[१५]

गोलकुण्डा के प्रसिद्ध लेखक मीरां याकूब ने(सन् १६६७) अपनी रचना 'शुमाइतुल अत्किया' में अपनी भाषा के लिए हिन्दी शब्द का प्रयोग किया है--

"'शुमाइतुल अत्किया' किताब कूँ हिन्दी ज़बान में ल्यावे तो हर किसी कूँ समजा जावे।"[१६]

मीराँजी शम्सुल उश्शाक़ ने अपनी भाषा को हिन्दी माना है--

'हैं अरबी बोल केरे। और फारसी भौ तेरे

ये हिन्दी बोलूँ सब। उस अर्तों के सबब'[१७]

बुरहानुद्दीन जानम ने अपनी कृति 'इर्शादनामा' में अपनी भाषा को हिन्दी माना है--

'ये सब बोलूं हिन्दी बोल

पन तू अनभौ सेती खोल

x x x x

ऐब न राखै हिन्दी बोल

मानी तो चख देखें खोल'[१८]

वजही ने अपनी कृति मनलगन में अपनी ज़बान को हिन्दी माना है--

'हिन्दी तो ज़बाँच है हमारी

कहने न लगी हमन कूं भारी' [१९]

कवि शाह तुराब ने अपनी कृति 'मनसमझावन' में अपनी भाषा को हिन्दी माना है--

"मरट्टी बात में पोती च बोल्या, में इसका रम्ज़ सब दखनी में खोल्या,भी 'मन समझावन' उसका नाम रखा ज लेकिन सरबसर हिन्दी ये भाका"।[२०]

हिन्दवी :

कुछ कृतिकारों ने अपनी भाषा को सिन्धवी, हिन्दुई माना है। शेख अशरफ ने अपनी रचना 'नौसरहार' में अपनी भाषा को हिन्दवी कहा है-

'नज़्म लिखी सब मौजूं आन

यों मैं हिन्दवी कर आसान'[२१]

अब्दुल ने अपनी कृति 'इब्राहीम नामा' में अपनी भाषा को हिन्दुई कहा है-

'ज़बाँ हिन्दुवी मुझसों होर देहलवी

न जानूँ अरब होर अजम मस्नवी'[२२]

हिन्दुस्तानी :

तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार श्री पुरुषोत्तम ने अपने नाटकों की भाषा को हिन्दुस्तानी कहा है। 'रामदास चरित्रम्' नाटक की भूमिका में पुरुषोत्तम कवि ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है। उन्होंने लिखा है-

"केवल देशी भाषाओं के समान है तुर्की।(आन्ध्र में उर्दू को 'तुरकम' कहते हैं। अत: यहाँ तुर्की से मतलब उर्दू से है।) संस्कृत-पद-बहुला देशी भाषाओं सी है हिन्दुस्थानी। हिन्दी, हिन्दुस्थानी वैसे पर्याय शब्द माने जा सकते हैं, पर व्यवहार में थोड़ा अन्तर है। संस्कृत के व्यस्त पदों का और सिंघासन, जत्तन, जम्ना आदि तद्‌भव शब्दों का ही प्रयोग करते हुए बोली जानेवाली भाषा 'हिन्दी' है। मन चाहे समासों को भरकर बोली जानेवाली भाषा 'हिन्दुस्थानी' है।"[२३]

दक्खिनी हिन्दी को किस नाम से पुकारा जाये यह विद्वानों के लिए एक प्रश्न है। लेकिन दक्खिनी के लिए अनेक दक्खिनी हिन्दी साहित्यकारों ने दक्खिनी हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई और हिन्दुस्तानी अभिधानों का प्रयोग किया है। किन्तु इसे 'दक्खिनी हिन्दी' ही मानना उचित होगा। दक्खिनी को ही अब प्राय: हिन्दी माना जाता है। डॉ.नगेन्द्र का कहना है- "अब प्राय: लोग केवल 'दक्खिनी' या दक्खिनी तथा उसके पहले के उत्तर भारत के मसऊद, खुसरो तथा शकरगंजी आदि के साहित्य की भाषा के लिए ही हिन्दुई या हिन्दवी नाम का प्रयोग करते हैं।"[२४]

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ.भोलानाथ तिवारी की दृष्टि में "दक्खिनी मूलतः हिन्दी का ही एक रूप है।"[२५]

३.३) दक्खिनी हिन्दी का भौगोलिक क्षेत्र

वैसे तो किसी भाग की निश्चित क्षेत्रीय रेखा खींची नहीं जा सकती, फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से भाषाई सीमाएँ माननी पड़ती हैं। दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र दक्षिण भारत के महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, केरल और मद्रास प्रान्त को मान सकते हैं। बोलचाल के रूप में प्रान्तीय भाषाओं का प्रभाव भी है जैसे- हैदराबाद की दक्खिनी हिन्दी में तेलुगु के शब्द, महाराष्ट्र की दक्खिनी हिन्दी में मराठी के शब्द, कर्नाटक की दक्खिनी हिन्दी में कन्नड के शब्द। उत्तरी सीमा में प्रयुक्त बोलचाल की दक्खिनी के सम्बन्ध में जार्ज ग्रियर्सन का मत है- "यद्यपि कोई पूर्ण निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती फिर भी नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा की श्रृंखलाओं में और उससे सम्बन्धित पहाड़ियों की परिनिष्ठित हिन्दुस्तानी और दक्खिनी की सीमा मान सकते हैं।"[२६] इन्होंने दक्खिनी को दक्षिणी और पश्चिमी सीमा समुद्र-तट तक माना है, शायद इसी मान्यता से बंबई और मद्रास की दक्खिनी के उदाहरण दिए हैं। बोलचाल की दक्खिनी का प्रयोग विन्ध्य से समुद्र-तट कर दो प्रकार के लोग करते हैं--

अ) ऐसे परिवारों के लोग जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और पीढ़ियों से दक्खिन में रहते हैं।

आ) ऐसे लोग जिनकी मातृभाषा तेलुगु, तमिल आदि दक्षिणी भाषाएँ हैं।

दक्खिनी हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रॉ.दीपचन्द जैन का विचार है- "इसकी कोई निश्चित भौगोलिक सीमा नहीं है। उत्तर-पूर्वी पंजाब और दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों से निकल कर जो लोग गुजरात, महाराष्ट्र और हैदराबाद की ओर चले गये उनकी सन्तानें आज भी दक्खिनी हिन्दी बोलती हैं।"[२७]

डॉ.भगवतीचरण चतुर्वेदी ने दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत माना है। उनका मन्तव्य है- "दक्खिनी हिन्दी भाषी बडोदा, बरार, श्रावणकोर, कोचिन, मद्रास, मैसूर, कुर्ग और हैदराबाद दक्षिण तक फैले हुए हैं।"[२८]

दक्खिनी हिन्दी का विकास जिस क्षेत्र में हुआ, वह तेलुगु, मराठी और कन्नड़ भाषाओं

का मिलन क्षेत्र था। निम्नांकित शासकों के अन्तर्गत दक्खिनी हिन्दी का विकास हुआ तथा उसे पर्याप्त श्रय प्राप्त हुआ। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का विस्तृत सृजन कार्य भी इसी क्षेत्र में हुआ था। शासन के प्रमुख क्षेत्र हैं-

शासन क्षेत्र	**शासन**	**शासन काल**
गुलबर्गा तथा बीदर	बहमनी शासन	१३५०ई. से १५२५ई.
बीदर	बीदरशाहीशासन	१४८७ई. से १६१९ई
अहमदनगर	निज़ामशाही शासन	१४६०ई. से १६३३ई.
बीजापुर	आदिलशाही शासन	१४६०ई. से १६८६ई.
गुलबर्गा तथा हैदराबाद	कुतुबशाही शासन	१५१२ई. से १६८७ई.

परिनिष्ठित और साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में डॉ.श्रीराम शर्मा का मत है- "परिनिष्ठित और साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र बीजापुर, गुलबर्गा और हैदराबाद तक सीमित है। विशेष कारणों से निश्चित अवधि के लिए इस सीमा का विस्तार औरंगाबाद तक हुआ।"[२९]

दक्खिनी हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में डॉ.श्रीराम शर्मा का मन्तव्य अधिक मान्य ठहरता है।

३.४) दक्खिनी हिन्दी पर विभिन्न बोलियों का प्रभाव और स्वरूप

दक्खिनी पर स्थानीय बोलियों का प्रचुर प्रभाव पड़ा। मुसलमानों का आगमन सर्वप्रथम देवगिरि में हुआ था। उन दिनों देवगिरि महाराष्ट्र की प्रशासनिक राजधानी थी। मुहम्मद तुगलक के देवगिरि राजधानी बनाने पर उत्तर भारत के कई परिवार दक्षिण में देवगिरि में आकर बसे। इनकी बोली पर मराठी का प्रभाव पड़ा। तुगलक शासन के शिथिल हो जाने पर गुलबर्गा में बहमनी राजवंश की स्थापना हुई। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस काल में जो रूप दिल्ली के आस-पास की भाषा का था वही रूप अपरिवर्तित रूप में देवगिरि और गुलबर्गा पहुँचा। यहाँ भी दक्खिनी कन्नड़ के उल्लेखनीय प्रभाव से

अप्रभावित रह कर मराठी के प्रभाव को सुरक्षित रखते हुए विकसित होती रही। इसके पश्चात् गोलकुण्डा, बीजापुर, गुलबर्गा में मुस्लिम शासन की स्थापना होने के साथ ये दक्खिनी के केन्द्र बने। शब्दावली के सम्बन्ध में दक्खिनी उच्चारण के विषय में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव से मुक्त न रह सकी। औरंगाबाद में जहाँ दक्खिनी पर मराठी प्रभाव दृष्टिगत होता है वहीं कर्नाटक एवं आन्ध्र में वह क्रमश: कन्नड़ एवं तेलुगु के प्रभाव का दिग्दर्शन कराती है। तेलुगु, मराठी और कन्नड़ का उच्चारण जिस ढंग से विशेष क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित होता है, उसी ढंग से दक्खिनी का उच्चारण भी परिवर्तित होता है। हैदराबाद में दक्खिनी बोलने का जो ढंग है वह सौ मील दूर कर्नूल में नहीं है। इसी प्रकार बीजापुर और गुलबर्गा के उच्चारण में बहुत अन्तर है। मराठी के बाद दक्खिनी पर गुजराती का प्रभाव उल्लेखनीय है। १६०१ ई. में मुगलों के गुजरात पर अधिकार के पश्चात् वहाँ के अनेक विद्वान और कुलीन व्यक्ति बीजापुर चले आए। गुजरात के इन प्रवासियों के कारण बीजापुर ही नहीं गोलकुण्डा की दक्खिनी में भी गुजराती के अनेक शब्द प्रयुक्त होने लगे।

दक्खिनी का मूल स्रोत खड़ी बोली है। खड़ी बोली जहाँ बोली जाती है उस क्षेत्र के आस-पास मेवाती, हरियाणवी, पंजाबी और ब्रज-भाषाएँ बोली जाती हैं। खड़ी बोली से निसृत होने के कारण इन भाषाओं के प्रभाव दक्खिनी में आज भी यथावत् विद्यमान हैं। खड़ी बोली पर पूरबी बोलियों का प्रभाव बहुत कम है, किन्तु दक्खिनी इस विषय में खड़ी बोली का अनुसरण नहीं करती। शब्दों के बहुवचन, पूर्वकालिक क्रिया, क्रिया के स्त्रीलिंगी रूपों और क्रिया विशेषणों पर राजस्थानी भाषा का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है। यह उल्लेखनीय बात है कि राजस्थानी नेपाल तथा हिमालय के अन्य अंचलों में अपनी मुख्य धारा से हट कर जो रूप धारण करती है, उसकी स्वल्प-सी झलक दक्खिनी में भी मिलती है। प्रभाव की दृष्टि से राजस्थानी के पश्चात् पंजाबी का क्रम आता है। दक्खिनी में राजस्थानी और ब्रज की भाँति आकारान्त विशेषणों और क्रियापदों को ओकारान्त बनाने की प्रवृत्ति नहीं है। इस विषय में खड़ी बोली और पंजाबी में समानता है।

ख़्वाजाबन्दा नवाज़ की रचनाओं के अध्ययन से विदित होता है कि उनकी भाषा पर न पूर्वी बोलियों का प्रभाव है और न गुजराती का। सम्भवत: इसका कारण उनका लगभग ९० वर्ष दिल्ली में बिताना है। इस निवासकालीन वातावरण के प्रभाव के कारण उन्होंने जो कुछ लिखा है वह उसी भाषा में लिखा है, जो उन दिनों दिल्ली में बोली जाती थी। गोलकुण्डा के वजही राजस्थानी से विशेषत: प्रभावित हैं। यही स्थिति दूसरे कवि और लेखकों की है। किन्तु इन बाह्य प्रभावों के रहते हुए भी एक बात स्पष्ट है कि

शीघ्र ही दक्खिनी का साहित्यिक परिष्कृत रूप निर्धारित हो गया।

जब दो विभिन्न क्षेत्रों से आए हुए भिन्न भाषा-भाषी आपस में मिलते हैं तो मिश्रित भाषा का उद्‌भव और विकास संभव है। जिस भाषा में अधिक भाषाओं का मिश्रण होता है उसको मिश्रित भाषा कहते हैं। इस प्रकार की भाषा का जन्म कुछ विशेष परिस्थितियों में होता है--

i) दो से अधिक भाषाओं की भौगोलिक सीमाएँ एक ही भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत आती हों।

ii) कोई भाषा क्षेत्र विभिन्न व्यापारी लोगों के लिए व्यापार केन्द्र बना हुआ हो।

iii) किसी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत ऐतिहासिक दृष्टि से एक से अधिक शासकों के द्वारा किया गया हो।

iv) किसी मानक भाषा क्षेत्र में ग़ैर भाषी क्षेत्र वाले आकर बस गए हों।

उपर्युक्त परिस्थितियों में भाषा के स्वरूप निर्माण में कोई मूलाधार या मानक भाषा बनी रहती है और अन्य भाषाओं के शब्द एक-एक करके भाषा में सम्मिलित होते हैं। दक्खिनी हिन्दी के उद्‌भव में इस प्रकार की स्थिति को देखा जा सकता है। इस की मिश्रित भाषा व्यापारिक उद्देश्य से प्रचलित होती है। इसमें विज्ञान, दर्शन, साहित्य को लेकर रचना नहीं हो पाती लेकिन इससे सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और यह भी माना जा सकता है कि यह मिश्रित भाषा सिर्फ दैनिक व्यवहार में जीवित रहती है। उसका साहित्यिक प्रयोग प्राय: नहीं मिलता। लेकिन दक्खिनी हिन्दी इसका एक अपवाद है।

वैसे दक्खिनी हिन्दी के प्रान्तीय कई रूप उभरते हैं। लेकिन मोटे तौर पर दो रूप विवेच्य हैं-- एक बोलचाल का रूप और दूसरा साहित्यिक रूप। डॉ. ग्रियर्सन ने दक्खिनी हिन्दी को भारतीय आर्य भाषा परिवार के अन्तर्गत माना है और दक्खिनी के कई रूप प्रस्तुत किये है, जैसे "बम्बई की दक्खिनी, मद्रास की दक्खिनी।"[३०] बोलचाल की दक्खिनी

हिन्दी स्थानीय भाषाओं के प्रभाव से अलग-अलग दिखाई देती है। जैसे- औरंगाबाद की भाषा में मराठीपन अधिक है तो गुलबर्गा की भाषा में कन्नड़ की झलक। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी जो दक्खन के विभिन्न प्रान्तों में लिखित कृतियों के माध्यम से उभरी है, का भाषापरक अध्ययन दक्खिनी हिन्दी की कई शैलियों को प्रस्तुत करता है। हैदराबाद के आसपास रचित साहित्य में अरबी-फ़ारसी शब्दों की मात्रा अधिक दिखाई देती है तो संस्कृत के तत्सम तथा उद्भव शब्द, मराठी तथा तेलुगु शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। इसके प्रमुख उदाहरण हैं वजही कृत 'सबरस', 'कुतुब मुशतरी', ग़वासी कृत 'सैफुल मुलुक व बदीउल ज़माल' आदि कृतियाँ। आधुनिक काल में तेलुगु भाषी श्री पुरुषोत्तम जी कृत 'हिन्दुस्तानी नाटक' भी भाषा अध्ययन की दृष्टि से रोचक है। इन नाटकों में संस्कृत युक्त दक्खिनी हिन्दी का साहित्यिक रूप है। इसी प्रकार मद्रास राज्य के तिरुनामल निवासी कवि शाह तुराब कृत 'मनसमझावन' में भी संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का रूप देखा जा सकता है।

अतः सार रूप में यह कहा जा सकता है कि दक्षिण के जिस प्रदेश में दक्खिनी का विकास हुआ वह प्रदेश मराठी, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं का समीपवर्ती प्रदेश था। अतः दक्षिण की इन भाषाओं का इस भाषा के ऊपर प्रभाव पड़ा। फिर, जो लोग अरब और ईरान आदि देशों से आए थे उन्होंने इसे अपने शब्द दिए और इसके व्याकरण को भी प्रभावित किया। सूफ़ी-संतों ने तसव्वुफ़ और इस्लाम की अभिव्यक्ति के लिए इसमें अरबी और फ़ारसी की शब्दावली को सम्मिलित किया। कवियों ने द्वारा फ़ारसी लिपि का प्रयोग किए जाने पर भी अरबी और फ़ारसी के तद्भव रूप ही अधिक मिलते हैं जो इस बात के द्योतक हैं कि ये कवि अरबी-फ़ारसी से प्रेरणा लेकर भी उससे बन्धे रहना नहीं चाहते थे। इस प्रकार दक्खिनी ऐसी भाषा बनी जिसने आस-पास रहने वालों और सुनने-बोलने वालों की विशेषताएँ अपना लीं और अपने मूल स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए भी फ़ारसी, अरबी, मराठी, तेलुगु, कन्नड़ से कुछ संज्ञा, विशेषण, अव्यय लेकर साहित्य-रचना के उपयुक्त बनती चली गई। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि दिल्ली के आस-पास की खड़ी बोली बोलने वाले लोग दक्खिन के प्रदेश में एक प्रकार से औपनिवेशिक स्थिति में थे, जहाँ रहकर उन्होंने हरियाणा की उस बोली को जिसे हम आज भी बाँगरू और ग्रामीण बोली मानते हैं, साहित्यिक रूप दिया था। यही कारण है कि दक्खिनी हिन्दी का संबंध-तत्व बाद तक उत्तरी हिन्दी की खड़ी बोली का बना रहा भले ही इसके अर्थतत्व में अनेक दक्षिणी भाषाओं और अरबी-फ़ारसी के शब्द आ गए हों।

१ वाल्मीकि- रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग-१०, श्लोक ३७

२ The Mahabharata, Part 1,Vol.3

३ कुतुबमुशतरी - मुल्ला वजही, पृ.१७९

४ सैफुल मुलुक व बदीउल जमाल- गवासी, पृ.५८

५ मनसमझावन- कवि शाह तुराब, पृ.९

६ Gazetteer of India; vol.1;Pg.393

७ भारत का भाषा सर्वेक्षण- भाग ९ -सर जार्ज ग्रियर्सन; पृ.२५

८ कुतुब मुशतरी, पृ.२९

९ वही, पृ.७५

१० दक्खिनी हिन्दी का विकास और इतिहास - डॉ.परमानन्द पांचाल, पृ.३०

११ वही ,पृ.३०

१२ इब्न निशाती कृत फूलबन,संपादक- डॉ.नूरजहाँ बेगम, पृ.३०

१३ दक्खिनी हिन्दी का विकास और इतिहास - डॉ.परमानंद पांचाल, पृ.२९

१४ दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.३३

१५ सबरस- मुल्ला वजही, पृ.१०

१६ दक्खिनी का गद्य साहित्य- डॉ.वेदप्रकाश शास्त्री, पृ.३२३

१७ दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.३३

१८ दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास - डॉ.परमानंद पांचाल, पृ.२७

१९ दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.३३

२० मनसमझावन, पृ.१

२१ दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा - पं० राहुल सांकृत्यायन, पृ.६

२२ वही, पृ. १२८

२३ श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक,संपादिका-श्रीमती के.शारदा,पुरोवाक

२४ हिन्दी साहित्य का इतिहास,संपादक- डॉ.नगेन्द्र, पृ.१०

२५ हिन्दी भाषा- डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.९०

२६ भारत भाषा सर्वेक्षण(भाग-९) - सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, पृ.१३६

२७ हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ- प्रो.दीपचन्द्र जैन व डॉ.कैलाश तिवारी, पृ.९४

२८ हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास- डॉ.भगवतीचरण चतुर्वेदी, पृ.२०

२९ दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास- डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.२१

३० भारत भाषा सर्वेक्षण- भाग ९,सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, पृ.१२८-१३३

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा की तरह दक्खिनी हिन्दी भाषा का भी इतिहास मौजूद है। इतिहास की मौजूदगी इस बात का प्रमाण है कि यह भाषा भी अन्य भाषाओं की तरह समृद्ध है और इसका अपना साहित्य विद्यमान है। सबरस, फूलबन, सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल, कुतुब मुश्तरी, मैना सतवंती आदि कई दक्खिनी हिन्दी की रचनाएँ गिनाई जा सकती हैं जो दक्खिनी हिन्दी साहित्य की अमूल्य थाती हैं, जो हिन्दी रचनाओं के समक्ष खड़े रहने की क्षमता रखती हैं। ये आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी हिन्दी की आदि रचनाएँ। एक माइने में इन रचनाओं का इतिहास ही दक्खिनी हिन्दी भाषा का इतिहास है। दक्खिनी हिन्दी भाषा के इतिहास को पाँच खण्डों में वर्गीकृत किया गया है। इसका सम्पूर्ण इतिहास राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ही हमेशा प्रभावित रहा। प्रस्तुत अध्याय में इसकी चर्चा की गई है।

४)   दक्खिनी हिन्दी भाषा का संक्षिप्त इतिहास

इसमें सन्देह नहीं है कि दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव हिन्दी की बोलियों से हुआ है और दक्षिण भारत में दक्षिण की भाषाओं (मराठी, तेलुगु, कन्नड़) से प्रभावित होकर, अरबी, फ़ारसी के संपर्क में उसका रूप और भी निखरा है। यों तो दक्खिनी हिन्दी के कुछ रूप खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, पंजाबी से भी मिलते हैं। दक्खिनी हिन्दी के विकास का इतिहास आज तक कुल लगभग सात सौ वर्ष का(१३००-१९८० ईसवी) मिलता है। ऐतिहासिक घटनाएँ, प्राप्त रचनाएँ तथा साहित्यिकारों के समय के आधार पर दक्खिनी हिन्दी भाषा इतिहास का काल- विभाजन किया जा सकता है। दक्खिनी हिन्दी साहित्यिक कृतियों में प्रयुक्त भाषा के आधार पर भाषा विकास की स्थितियों का भी विशेष विवरण दिया जा सकता है। यहाँ काल-विभाजन तथा विकास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। विकास की दृष्टि से इस भाषा के इतिहास को पाँच काल-खण्डों में बाँटा जा सकता है–

४.१.१) संक्रान्तिकाल - १३०० ई. से १३४७ ई.
४.१.२) आरंभिक काल - १३४७ ई. से १४८७ ई.
४.१.३) उन्नतिकाल - १४८७ ई. से १६८७ ई.
४.१.४) स्तब्धकाल - १६८७ ई. से १८५० ई.
४.१.५) आधुनिक काल - १८५० ई. से आज तक

४.१.१) संक्रान्तिकाल (सन् १३०० से १३४७)

मुहम्मदबीन तुगलक के राजधानी परिवर्तन की ऐतिहासिक घटना से उत्तर भारत के लोगों का दक्षिण में अपनी भाषाओं के साथ आना हुआ। उन्होंने अपनी भाषाओं के साथ दक्षिण में स्थित भाषाओं के शब्द जोड़कर एक नई भाषा को जन्म दिया। वह सचमुच मिश्रित भाषा थी, क्योंकि उस भाषा में अनेक मानक भाषाओं का मिश्रण था। इस प्रकार का मिला-जुला रूप प्राप्त होने के कारण तथा उस समय तक कोई दक्खिनी हिन्दी की साहित्यिक कृति न प्राप्त होने के कारण इस काल को संक्रान्तिकाल कहा जा सकता है। इस काल तक भाषा स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि भाषा

का कोई लिखित आधार नहीं है। केवल बोलचाल की भाषा होने के कारण भाषा स्वरूप का निर्धारण करना कठिन है।

४.१.२) आरम्भिक काल (सन् १३४७ से १४८७)

दक्षिण भारत में बहमनी राज्य की स्थापना सन् १३४७ में हुई। इसी समय में सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों से, जो संक्रान्तिकाल में मिश्रित भाषा के रूप में प्रचलित थी उसके साथ अरबी, फ़ारसी शब्द भी जुड़ने लगे। इस समय में दक्खिनी हिन्दी के प्रथम लेखक ख़्वाजा बन्दानवाज़ गेसु दराज़(सन् १३३२-१४३७)[१] ने अनेक दक्खिनी हिन्दी रचनाएँ की थीं। गेसु दराज़ दक्षिण भारत अपने बचपन में आये थे। किन्तु पिता के देहान्त के कारण तुरन्त वे दिल्ली चले गये, उत्तर भारत में रहकर अनेक रचनाएँ की। सत्तर साल बाद फिर दक्षिण भारत में पहुँचकर बहमनी राज्य शासन काल में दक्खिनी में रचनाएँ की थी। इसी समय मीराँजी शम्सुल उश्शाक(मृत्यु १४९६)[२] ने दक्खिनी हिन्दी की पद्य और गद्य की रचनाएँ रचि। डॉ. श्रीराम शर्मा मीराँजी की भाषा सम्बन्ध में लिखते हैं- "मीराँजी शम्सुल की भाषा विशुद्ध रूप से वह हिन्दी है, जो उनके समय में प्रचलित थी और जिसका प्रयोग नामदेव और अन्य सन्तों ने किया था।"[३] निजमी बीदरी, कुरेशी, लुतफी प्रमुख रचनाकार हैं।

इस काल में सृजित साहित्यिक भाषा स्वरूप में और हिन्दी खड़ी बोली साहित्य के आदि भाषा स्वरूप में कुछ समानताएँ दिखाई देती हैं। कतिपय उदाहरणों के आधार पर ये समानताएँ देखी जा सकती हैं। हिन्दी के कवि अमीर खुसरो की भाषा का एक नमूना है-

उज्जल बरन, अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, निपट पाप की खान।
खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए एकरंग।[४]

एक थाल मोती से भरा। सबके सिर पर औंधा धरा।।
चारों ओर वह थाली फिरे। मोती उससे एक न गिरे।।[५]

दक्खिनी हिन्दी आरम्भिक काल के कवि लुतफ़ी की भाषा है-

खिलवत में सजन के मैं मोम की बती हूं
यक पाँव पर खड़ी हूं जलने पिरत पती हूं
सव निस घड़ी जलूंगी जागा सूँ न हिलूंगी
ना जल को क्या करूंगी अवल सूं मद मती हूं।[६]

अकास ऊँच पाताल धरती तहीं
जहां कुछ न कोई था है तुहीं
... .
भलाई कूं भलाई करे कुछ न होय
बुरे कूं भलाई करे होय तोय।[७]

उक्त उदाहरणों में भाषा को व्यक्त संरचना और पद प्रयोग शैली में अवश्य नज़दीकीपन मिलता है।

४.१.३) उन्नतिकाल (सन् १४८७ से १६८७)

इतिहास में कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं; जिनके कारण भाषा एवं साहित्य में भी परिवर्तन होता है। यही बात दक्खिनी हिन्दी इतिहास में भी घटी है। सन् १४८७ में बहमनी वंश के द्वारा दक्षिण भारत में राज्य स्थापना के पश्चात् अनेक मुस्लिम राज्यों की स्थापना होने लगी। इतिहास के अनुसार ये शासन हैं-

बहमनी शासन १३५० ई.- १५२५ ई.(गुलबर्गा तथा बीदर)
बदीरशाह शासन १४८७ ई. (बीदर प्रान्त)
निजामशाही शासन १४९० ई. (अहमदनगर)
आदिलशाही शासन १४९० ई. (बीजापुर)
कुतुबशाही शासन १५१२ ई. (गोलकुण्डा, हैदराबाद)

उपरोक्त शासन काल में दक्खिनी हिन्दी को राजाश्र्य प्राप्त हुआ तथा भाषा का रूप भी निरंतर निखरने लगा। कुतुबशाही शासन काल में दक्खिनी हिन्दी साहित्य विशेष रूप से सृजित हुआ। इस उन्नतिकाल की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा परिशीलन से यह कहा जा

सकता है कि इस समय की रचनाओं में फ़ारसीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी की बोलियों से आगत शब्द अरबी, फ़ारसी, मराठी, तेलुगु, कन्नड़ राज्यों का प्रयोग हुआ है। मुल्ला वजही और मुल्ला ग़वासी कुतुबशाही के राज्याश्रित थे। इस काल में रचित अनेक रचनाएँ उपलब्ध होने के कारण इस काल को उन्नतिकाल कहा गया है। इस उन्नति-काल के प्रमुख रचनाकार हैं- बुरहानुद्दीन जानम (१५४४-१५८३ ई.), शाह अशरफ (१५२९ ई. मृत्यु), अमीनुद्दीन आला (१५७४ ई. मृत्यु), इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय(१५८०-१६२३ ई.), नुस्रती(१६७४ ई.), मुहम्मदकुली कुतुबशाह (१५६६ ई.) मुल्ला वजही, ग़वासी, फिरोज आदि।

इस काल की रचनाओं में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, और स्वरों के अलावा इ. और ऍ का प्रयोग मिलता है। शायद ये स्वर फ़ारसी से आगत हैं। अर्द्ध स्वर हमज़ा का भी भाषाई प्रवेश हो चुका था। व्यंजनों में क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़् संघर्षी व्यंजन, न्ह्, म्ह्, ध्वनियों का प्रयोग भी साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में हुआ है। इनके अलावा ई, ट् जो अपभ्रंश में नहीं थे, हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे, उसी तरह दक्खिनी हिन्दी में भी प्रयुक्त हुए हैं।

४.१.४) स्तब्ध काल (१६८७ - १८५० ई.)

ऐतिहासिक दृष्टि से इस युग में दक्खिनी हिन्दी को राजाश्र्य नहीं प्राप्त हुआ। सन् १६८७ तक औरगंज़ेब ने गोलकुण्डा और बीजापुर को अपने अधीन कर लिया था। इस कारण से दक्षिण में मुस्लिम शासकों का राज्य पतन हुआ और दक्खिनी का आश्रय भी समाप्त हो गया। साहित्य सृजन की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण नहीं है। इस काल में विशेष रचनाएँ नहीं होने के कारण इस काल को स्तब्ध काल के नाम से अभिहित किया गया है। स्तब्ध काल का मतलब यह नहीं कि भाषा का रूप ही नहीं था, या रचनाएँ ही नहीं हुई, बल्कि विशेष रूप से यह काल महत्व का नहीं माना जा सकता है।

वैसे तो इस काल में भी कुछ साहित्यकार मिलते हैं। प्रमुख कवियों में बहरी, तुराब शाह के अतिरिक्त नूरी, जईफी, क़ादरी, वली, वली वेलूरी, मिराज, वजदी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह भी अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस समय की रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुई हों। जब तक प्रमाणिक रचनाएँ प्राप्त नहीं होती जब तक इस काल को 'स्तब्ध काल' के नाम से अभिहित करना ही समीचीन होगा।

४.१.५) आधुनिक काल (सन् १८५० - आजतक)

आधुनिक काल में आकर दक्खिनी हिन्दी का संपर्क उर्दू भाषा से होने लगा और वह उर्दू के सांचे में ढलने लगी। स्तब्ध काल के अनन्तर सन् १८८४-१८८६ में तेलुगु भाषी श्री पुरुषोत्तम ने दक्खिनी हिन्दी में ३२ नाटकों की रचना की है। लेकिन दुर्भाग्यवश सभी नाटक प्राप्त नहीं हैं। फिर भी प्राप्त छः नाटकों को श्री पुरुषोत्तम की पोती श्रीमती के. शारदा जी ने देवनागरी लिपि में श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक नामक संग्रह को संपादित किया है, जो नाटक पहले तेलुगु लिपि में थे। तेलुगु लिपि में लिखे गये अन्य नाटकों का उल्लेख, तेलुगु नाटकों के विकास में श्री पी.एस.आर. अप्पाराव ने किया है। लेकिन उनकी प्राप्ति की सूचनाएँ नहीं मिलती, इस दिशा में अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

आधुनिक काल में जो साहित्य लिखा गया है, उसकी भाषा के अनुशीलन से यह कहा जा सकता है कि इसमें ऋ स्वर का विकास हुआ है, व्यंजनों में ङ्, ण्, ञ् और ज्ञ् का विकास हुआ है। आधुनिक दक्खिनी हिन्दी साहित्य में अरबी, फ़ारसी भाषा के शब्द कम हैं और संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्दों की प्रचुरता। आधुनिक काल में भी दक्खिनी हिन्दी की रचनाएँ की जा रही हैं। कवियों में सुलेमान खतीब, कहानीकारों में पद्मनाभन हैं। इनके अलावा सखर दंडा, उल्लडी और हाली के नाम अत्याधुनिक काल में उल्लेखनीय हैं।

अतः कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी भाषा में आरंभ काल से लेकर आधुनिक काल तक तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहे। आधुनिक काल में आकर ऐतिहासिक तथा राजनैतिक कारणों से दक्खिनी हिन्दी का स्थान उर्दू भाषा ने ग्रहण कर लिया।

भाषा विकास की दृष्टि से यहाँ एक महत्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है कि दक्खन में दक्खिनी हिन्दी का विकास होने से पहले ही यहाँ (दक्खन में) पृष्ठभूमि बनी थी; क्योंकि दक्खिनी हिन्दी केन्द्र के समीपवर्ती क्षेत्र महाराष्ट्र में कुछ सन्त कवि हिन्दवी भाषा में रचना करते रहे। जिनमें ज्ञानेश्वर, नामदेव, गोंदाबाई तथा एकनाथ आदि उल्लेखनीय हैं। इस संदर्भ में डॉ.श्रीराम शर्मा जी का कथन है- "नामदेव से लेकर एकनाथ तक मराठी भाषा क्षेत्र में हिन्दी (दक्खिनी) में जो साहित्य लिखा गया, उसमें सगुण को कम स्थान मिला· · ·सब मिलाकर महाराष्ट्र में लिखी गई दक्खिनी की रचनाओं पर निर्गुण

छाया हुआ है।"[८] दक्षिण मे दक्खिनी हिन्दी के नाम से खड़ी बोली का विकास हुआ है। एक स्वाभाविक प्रश्न उभरता है कि उत्तर भारत से आयी हुई यह भाषा सूदुर दक्खन में क्यों विकसित हुई। इसके अनेक कारण है। दक्षिण में हिन्दु-मुस्लिम की एकता उत्तर की अपेक्षा कुछ अधिक पनपी है। अकबर से पूर्व ही बहमनी शासकों ने हिन्दु महिलाओं से विवाह किया। बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों ने भी इसका अनुकरण किया। इतिहास इसका साक्षी है। इस प्रकार भिन्न संस्कारों का और भाषाओं का मेल होना इसका एक कारण मान सकते हैं। और एक कारण है कि इस समय के शासकों ने दिल्ली की आस-पास की खड़ी बोली को राजभाषा बनायी थी। दक्षिण प्रान्त भी उन शासकों के अधीन में होने के कारण उस भाषा को दक्षिण के लोग भी सीखने लगे थे। रामधारी सिंह दिनकर जो के विचार इस संबंध में यहाँ उल्लेखनीय है- "दिल्ली और आगरा की खड़ी बोली इन्हीं मुसलमानों के साथ दक्षिण को गयी और यही बोली वहाँ की राजभाषा हो गयी। फिर, राजभाषा होने के कारण, खड़ी बोली को दक्षिण के और लोग भी सीखने लगे।"[९]

अत: दक्खिनी हिन्दी भाषा के इतिहास के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसका आरम्भिक रूप चौदहवीं शती से ही बनने लगा था। १५वीं शती तक इसका विकास भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में अनवरत होता रहा। १७वीं शती के बाद लगभग १५० वर्ष का समय निष्क्रिय रहा है। यह समझा जा सकता है कि उस समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा अन्य कारणों से भाषा का साहित्यिक रूप न उभरा हो। आधुनिक युग में १९वीं शती के अन्त में दक्षिण में नाटक कंपनियों के आगमन से दक्खिनी साहित्य का विकास होने लगा। हो सकता है उर्दू की प्रधानता के कारण दक्खिनी हिन्दी का विकास रुक गया हो। दक्खिनी हिन्दी का सम्बन्ध सूफ़ी साहित्य से भी है। अगर दक्षिण में मिलने वाले सूफ़ी साहित्य ग्रन्थों का चयन हो जाये तो साहित्य का नया इतिहास उभर सकता है।

१ दक्खिनी हिन्दी का साहित्य- डॉ.श्रीराम शर्मा,पृ.९५

२ दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास- डॉ.परमानंद पांचाल,पृ.८३

३ दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ.श्रीराम शर्मा,पृ.११८

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.४०

५ वही, पृ.३९

६ दक्खिनी हिन्दी :विकास और इतिहास - डॉ.परमानंद पांचाल,पृ.८४

७ वही, पृ.८२

८ दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.८०

९ संस्कृति के चार अध्याय- डॉ.रामधारी सिंह दिनकर, पृ,३८३

प्रस्तावना

मानव जिसके द्वारा बोलता है या जो वायु मुख-विवर से निकलकर वागेन्द्रिय द्वारा कुछ वाणी प्रकट करती है उसे 'ध्वनि' कहते हैं। ध्वनि भाषा का मूलाधार है, क्योंकि ध्वनि-चिह्नों की समष्टि को ही तो 'भाषा' कहते हैं और ध्वनि ही वाणी, वाक्, बोली आदि के रूप में व्यक्त होती है। प्रथम उप-अध्याय ध्वनिगत विशेषताओं के अन्तर्गत मानक हिन्दी की ध्वनियों के विवेचन के साथ हिन्दी ध्वनि-व्यवस्था एवं ध्वनि-परिवर्तन की दिशाओं का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है। कुछ जपित ध्वनियाँ बोलचाल में मिलती हैं लेकिन साहित्य में इनका प्रयोग केवल हिन्दी की प्रादेशिक बोलियों में पाया जाता है। अतः इनका विवेचन यहाँ नहीं किया गया है।

दूसरे उप-अध्याय में हिन्दी की व्याकरणिक कोटियों संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय

आदि का विवेचन किया गया है। इसमें इनकी संरचनात्मक-व्यवस्था के नियम को दर्शाया गया है। वचन, लिंग और कारक के आधार पर उक्त व्याकरणिक कोटियों में होने वाले रूप-परिवर्तनों का विश्लेषण प्रस्तुत है। सार्वनामिक व्यवस्था में उसके विभिन्न भेदों का भी उल्लेख किया गया है। अन्य भाषा जैसे अरबी-फ़ारसी, अंग्रेज़ी के प्रत्यय एवं उपसर्गों की चर्चा के साथ उदाहरण दिए गए हैं। अव्यय के अंतर्गत क्रियाविशेषण, संबंधसूचक, समुच्च्यबोधक, विस्मयादिबोधक आदि अव्ययों का भी विचारपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत है।

तीसरा उप-अध्याय हिन्दी के शब्द-भण्डार पर आधारित है। हिन्दी भाषा का शब्द-भण्डार जितना विस्तृत है उसकी व्याख्या की परम्परा भी उतनी ही पुरानी है। इसका शब्द-भण्डार चार वर्गों में विभाजित है- तत्सम, तद्भव, देशज या देशी, विदेशी। हिन्दी के शब्द-भण्डार को उसकी बोलियों के अतिरिक्त संस्कृत, अरबी-फ़ारसी, अंग्रेज़ी, पुर्तगाली, फ़्रेंच आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों ने भी प्रभावित किया है।

अंतिम उप-अध्याय हिन्दी के वाक्यगत विशेषताओं को सूचित करता है। इसमें वाक्य की विभिन्न परिभाषाओं के साथ वाक्य-विन्यास को भी परिभाषित किया गया है। वाक्य के अलग-अलग तत्वों के साथ वाक्य के सारे लक्षणों का भी उल्लेख है। वाक्य साँचे, उनका पदक्रम, पदबंध, उनके नियम भी विवेचित हैं। संरचनात्मक आधार पर वाक्य-साँचों का वर्गीकरण भी दर्शाया गया है। भाव और अर्थ के आधार पर वाक्य के अनेक प्रकारों का उल्लेख इस अध्याय में नहीं हुआ है। इसकी चर्चा दक्खिनी हिन्दी के वाक्यगत विशेषताओं वाले उप-अध्याय में की गयी है।

सम्पूर्ण अध्याय में हिन्दी भाषा की प्रकृति की कुछ मुख्य बातों का 'सूचना' एवं 'विशेष' शीर्षक के अन्तर्गत जगह-जगह उल्लेख किया गया है। साथ ही नियम से अलग कुछ अपवादों का संकेत कर दिया गया है। हिन्दी की बोलियों के साथ उसका संबंध दर्शाते हुए कुछ जगहों पर हिन्दी और उसकी बोलियों की समान विशेषताओं को भी उद्धृत किया गया है।

५.१ ध्वनिगत विशेषताएँ

५.१.१) हिन्दी स्वनिम-परिचय

५.१.१.१ मूलस्वर :

क) सामान्य - अ आ इ ई उ ऊ ऋ ए ओ
ख) मिश्रित - ऐ (अइ), औ (अउ)

५.१.१.२ व्यंजन :

स्पर्श -	क्(क़्)	ख्	ग्	घ्
	ट्	ठ्	ड्	ढ्
	त्	थ्	द्	ध्
	प्	फ्	ब्	भ्

स्पर्श-संघर्षी - च्, छ्, ज्, झ्
संघर्षी - स्, श्, ष्, :(विसर्ग), ह्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्
अनुनासिक - ङ्, ञ्, ण्, न्, न्ह्, म्, म्ह्
पार्श्विक - ल्, ल्ह्
लुंठित - र्
उत्क्षिप्त - ड़्, ढ़्
अन्तस्थ - य्, व्

अ) हिन्दी में ११ स्वर-स्वनिम हैं। इनमें ८ सामान्य स्वर-स्वनिम हैं-- अ आ इ ई उ ऊ ए ओ। २ मिश्रित स्वर-स्वनिम हैं-- ऐ, औ। ऐ और औ क्रमशः अ + इ और अ + उ के मिश्रित रूप हैं। ऐ और औ को स्वतन्त्र स्वनिम मानना आवश्यक है। इनको ए और ओ का संस्वन नहीं माना जा सकता है, क्योंकि इनमें स्थानभेद और अर्थभेद है। जैसे-- चेला-चैला, मेल-मैल, रेल-रैल, कोन-कौन, ओर-और, मोर-मौर।

आ) हिन्दी में अ, इ, उ, को मूलस्वर एवं आ, ई, ऊ, को उनका दीर्घीकरण रूप

मानकर उनको स्वतन्त्र स्वनिम न मानना उचित नहीं है। स्थानभेद और अर्थभेद के कारण इन तीन दीर्घ स्वरों को भी स्वतन्त्र स्वनिम मानना आवश्यक है। अ-आ, इ-ई और उ-ऊ में उच्चारण स्थान में भेद है। अर्थभेद भी है। जैसे-- मन-मान, हर-हार, चिर-चीर, उठि(उठकर)-उठी, धुल-धूल, पुर-पूर, सुना-सूना।

इ) स्वर-स्वनिमों में अं, अः को नहीं लिया गया है। हिन्दी में ये उच्चारण की दृष्टि से स्वतन्त्र स्वनिम न होकर संयुक्त ध्वनियाँ हैं। हालाँकि ऋ भी स्वर-स्वनिम नहीं है तथापि यह मानक हिन्दी में वर्तनी के रूप में विद्यमान है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि इनके अभाव में वर्तनी अशुद्ध होगी। 'अं' का प्रयोग अंगूर, अंक आदि शब्दों में दिखाई देता है किन्तु इसके कई उच्चारण हैं जिस कारण ध्वनि विवरण में इसे सम्मिलित नहीं किया गया है। ऋ= र् + इ; अं= अ + ङ्, अ + ञ्, अ + ण्, अ + न्, अ + म्; अः= अ + ह्। ऋ को र् का संस्वन और अं, अः को अ का संस्वन माना जाएगा। डॉ.भोलानाथ तिवारी के अनुसार "ऋ, अं, अः स्वर न होकर स्वर-व्यंजन के मिले हुए रूप हैं।"[१]

ई) व्यंजन-ध्वनियों में क्ष, त्र, ज्ञ को नहीं लिया गया है। ये भी स्वतन्त्र स्वनिम न होकर संयुक्त व्यंजन ध्वनियाँ हैं। क्ष्= क् + ष्; त्र्= त् + र्; ज्ञ्= ज् + ञ् (उच्चाण की दृष्टि से ग् + यं)।

उ) हिन्दी में ञ् स्वनिम न होकर न् का संस्वन है।

अ) चवर्ग के पूर्व-- न् > ञ्।

आ) अन्यत्र-- न् > न्।

ऊ) हिन्दी में ष् भी स्वतन्त्र स्वनिम नहीं है। यह श् का संस्वन है। टवर्ग से पूर्व संयुक्त व्यंजन ष् के रूप में-- दुष्ट, इष्ट, पुष्ट, क्लिष्ट आदि। अन्यत्र-- श् रहता है। शब्द के आदि में षट्कोण आदि शब्दों में इसका उच्चारण श् के सदृश है।

ऋ) हिन्दी में क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़् को स्वतन्त्र स्वनिम नहीं माना जा सकता है। ये क्रमशः क्, ख् आदि के संस्वन हैं। ये मूलतः हिन्दी ध्वनियाँ नहीं हैं। विदेशी (उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रजी, जर्मन आदि) शब्दों के उच्चारण के लिए इन ध्वनियों का आविर्भाव हुआ है। उच्चारण-स्थान-भेद के लिए इन्हें क़् आदि के रूप में लिखा जाता

है।

ए) ड़् और ढ़् के स्वतंत्र स्वनिम हैं। ये ड् और ढ् के संस्वन हैं। ड़् और ढ़् शब्दों के मध्य और अन्त में पाए जाते हैं। जैसे- पहाड़, झाड़, चढ़ना, गढ़ आदि।

ऐ) अंग्रजी शब्दों के उच्चारण में ऑ ध्वनि मिलती है। जैसे- डॉक्टर, कॉलेज आदि। डॉ.कपिलदेव द्विवेदी के अनुसार "इसको 'आ' का ही संस्वन मानना चाहिए। यह हिन्दी में डाक्टर, कालिज आदि रूप में भी लिखा जाता है। इसको मुक्त परिवर्तन(free alternation) मानना उचित है।"[२]

५.१.१.३ ध्वनि--विवरण :

/अ/ अर्धविवृत, अवृत्तमुखी, मध्य कंठ्य स्वर है। हिन्दी संयुक्त स्वर 'ऐ' (अ + ए) और 'औ'(अ + ओ) को छोड़कर यह सर्वत्र घोष है। इसके उच्चारण में अंग शिथिल रहते हैं। अनुनासिक और निरनुनासिक दोनों रूपों में उच्चरित होता है। हिन्दी में यह शब्दों के आदि और मध्य में आता है, किन्तु अक्षरान्त और शब्दान्त में सर्वत्र नहीं आता है। उन्हीं शब्दों के अंत में सुनायी पड़ता है जिनका अन्त संयुक्त व्यंजनों, विशेषतया अर्धस्वरान्त य्, व् में होता है। हिन्दी शब्दों के आदि में वर्णग्राम 'अ' के रूप में तथा मध्य और अन्त में मध्य और अन्त्य व्यंजन के बाद मिलकर उच्चरित होता है।

आदि	मध्य	अन्त्य
अपना	कमल	मनुष्य

डॉ.धीरेन्द्र वर्मा का यह तर्क है कि "हिन्दी में शब्द या शब्दांश के अंत में आने वाले 'अ' का उच्चारण नहीं होता है किंतु इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं।"[३] उदाहरण के लिए 'अब', 'कमल', 'सरल' शब्दों में 'ब', 'ल', 'ल में उच्चारण की दृष्टि से 'अ' नहीं है। वास्तव में इन शब्दों में ये तीनों व्यंजन अकार रहित हैं, अतः उच्चारण की दृष्टि से इन शब्दों का शुद्ध लिखित रूप अब्, कमल्, सरल् होगा।

/आ/ विवृत, अवृत्तमुखी (विस्तृत ओष्ठ), दीर्घ, पश्च स्वर है। मान स्वर 'आ' से

इसका उच्चारण-स्थान कुछ आगे है। नित्य घोष ध्वनि है। उच्चारण करते समय मांसपेशियाँ तन जाती है। निरनुनासिक और अनुनासिक दोनों रूपों में मिलती है। आदि में यह ध्वनि वर्णग्राम 'आ' द्वारा तथा मध्य और अंत में यह वर्णग्राम (T) द्वारा व्यक्त की जाती है। यह ध्वनि आदि, मध्य और अन्त तीनों में प्रयुक्त होती है। यथा-- आदमी, बादाम, काला।

/इ/ संवृत, अवृत्तमुखी, ह्रस्व, अग्रस्वर है। मानक हिन्दी में घोष रहती है। उच्चारण में अवयव विशेष दृढ़ नहीं रहते हैं। इसके उच्चारण में फैले हुए होठ ढीले रहते हैं। इसका उच्चारण-स्थान 'ई' की अपेक्षा कुछ अधिक नीचा तथा अंदर की ओर है। शब्द के आदि में तो यह ध्वनि वर्णग्राम 'इ' से व्यक्त की जाती है, किन्तु मध्य और अन्त में व्यंजन के पूर्व (ि) सहवर्णग्राम द्वारा व्यक्त की जाती है। यथा- इस, कपिल, कवि।

/ई/ संवृत, अवृत्तमुखी, दीर्घ, अग्र स्वर है। हिन्दी में सदैव घोष है। उच्चारण में माँसपेशियाँ दृढ़ हो जाती है। उच्चता की दृष्टि से मानस्वर 'ई' से इसका स्थान कुछ नीचे है। शब्द के आदि में वर्णग्राम 'ई' और मध्य तथा अंत में व्यंजन के बाद सहवर्णग्राम (ी) द्वारा व्यक्त की जाती है, यथा- ईश्वर, अमीर, गाती।

/उ/ संवृत, वृत्तमुखी, पश्च, ह्रस्व, घोष स्वर है। उच्चारण में माँसपेशियाँ शिथिल रहती हैं। इसके उच्चारण में जीभ का पिछला भाग काफ़ी ऊपर उठता है किंतु 'ऊ' के स्थान की अपेक्षा नीचे तथा मध्य की ओर झुका रहता है। साथ ही होठ बंद गोल किए जाते हैं। शब्द के आदि में 'उ' तथा शब्द के मध्य और अन्त में व्यंजन के नीचे ु के रूप में व्यक्त होता है। उदा. उष्ण, मधुर, गुरु, ऋतु।

/ऊ/ संवृत, वृत्तमुखी, पश्च, दीर्घ, घोष स्वर है। उच्चारण में माँसपेशियों में कुछ दृढ़ता आ जाती है। इसके उच्चारण जीभ का पिछला भाग इतना ऊपर उठ जाता है कि कोमल कालु के बहुत निकट पहुँच जाता है। 'ऊ' का उच्चारण-स्थान प्रधान स्वर 'ऊ' से कुछ ही नीचा है। 'उ' की अपेक्षा 'ऊ' के उच्चारण में उठ अधिक जोर के साथ बंद गोल हो जाते हैं। शब्द के आदि में वर्णग्राम 'ऊ' तथा शब्द के मध्य और अन्त में व्यंजन के नीचे सहवर्णग्राम (ू) के द्वारा किया जाता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की समस्त भाषाओं तथा हिन्दी की समस्त उपभाषाओं और बोलियों में मिलता है। यथा-

ऊपर, मधूक, बालू।

/ऋ/ मानक हिन्दी में इसका उच्चारण स्वर की भाँति नहीं होता है। संस्कृत के कुछ विशिष्ट शब्दों में यह वर्तनी में तो विद्यमान है। शब्दों के आदि में यह वर्णग्राम ऋ तथा मध्य और अन्त में व्यंजनों के नीचे सहवर्णग्राम ऋ की मात्रा ृ यथा- तृण, पितृ- के द्वारा व्यक्त किया जाता है। अत यह तीनों स्थितियों में मिलता है- ऋषि, पृथ्वी, पितृ आदि।

/ए/ अर्धसंवृत, अवृत्तमुखी, अग्र, दीर्घ, घोष ध्वनि है। इसके उच्चारण में अवयव कुछ दृढ़ हो जाते हैं, यद्यपि दृढ़ता *ई* की अपेक्षा कम होती है। इसका उच्चारण-स्थान स्वर 'ए' से कुछ नीचा है। 'ए' के उच्चारण में होठ 'ई' की अपेक्षा कुछ अधिक खुलते हैं। डॉ.भोलानाथ तिवारी के अनुसार "यह मूल स्वर है।"[४] शब्द के आदि में यह वर्णग्राम 'ए' तथा शब्द के मध्य और अन्त में किसी व्यंजन के ऊपर मात्रा (े) के द्वारा व्यक्त किया जाता है, जैसे- एक, अनेक, चले।

/ऐ/ अर्धविवृत, अवृत्तमुखी, दीर्घ, अग्र, घोष स्वर है। मानक हिन्दी में यह मूल स्वर न होकर संयुक्त स्वर है जो दो स्वर (अ+ए) से निर्मित होता है। इसमें 'अ' व्यक्त अघोष तथा 'ए' दीर्घ घोष ध्वनि है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की प्रत्येक भाषा तथा मानक हिन्दी की प्रत्येक उपभाषा और बोली में इसका उच्चारण मिलता है। देवनागरी लिपि में शब्द के आदि में यह 'ऐ' तथा व्यंजन के ऊपर मात्रा (ै) के द्वारा व्यक्त किया जाता है। पश्चिमी बोलियों (खड़ी, ब्रज, हरियानी) में यह मूलस्वर 'ऍ' की भाँति उच्चरित होता है और पूर्वी बोलियों में इसका उच्चारण *अइ* की भाँति होने लगता है, किन्तु साहित्यिक मानक हिन्दी में विशुद्ध रूप से यह संयुक्त स्वर है। शब्द के आदि, मध्य तथा अंत्य में प्रयोग होता है, उदा. ऐनक, कैसा, कन्हैया, है।

/ओ/ अर्धसंवृत, वृत्तमुखी, दीर्घ, घोष, पश्च ध्वनि है। इसके उच्चारण में होठ स्पष्ट रूप से गोल हो जाते हैं। प्रधान स्वर से इसका उच्चारण-स्थान कुछ ही नीचा है। हिन्दी में यह मूलस्वर है, संयुक्त स्वर नहीं। शब्द के आदि में यह 'ओ' द्वारा तथा शब्द के मध्य तथा अन्त में व्यंजन के ऊपर ो द्वारा व्यक्त होता है। यथा- ओस, बोतल, पढ़ो।

/औ/ अर्धविवृत, वृत्तमुखी, दीर्घ, घोष, पश्च स्वर है। मानक हिन्दी में यह संयुक्त स्वर है, जो 'अओ' से मिलकर निर्मित होता है। 'अ' अघोष और 'ओ' घोष ध्वनि है। अतएव उच्चारण नीचे से ऊपर को जाता है, इसलिए इसे आरोही संयुक्त स्वर (rising dipthong) कहा जाएगा। 'अ' के उच्चारण के पश्चात् जिह्वा 'ओ' की ओर जाती है और इसी चल स्थिति में स्वर का उच्चारण हो जाता है। यह शब्द के आदि, मध्य दो स्थितियों में मिलता है। यथा- औषध, दौड़, कसौटी, सौ।

अनुनासिक स्वर मानक हिन्दी में सभी स्वर (ऋ को छोड़कर) निरनुनासिक और अनुनासिक दोनों रूपों में उच्चारित होते हैं। धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "मूलस्वरों के समान समस्त अनुनासिक स्वरों का व्यवहार शब्दों में प्रत्येक स्थान पर नहीं मिलता है।"[५] अनुनासिक स्वरों के उच्चारण में स्थान वही रहता है किंतु साथ ही कोमल तालु और कौवा नीचे झुक आता है जिससे मुख द्वारा निकलने के अतिरिक्त हवा का कुछ भाग नासिका-विवर में गूँज कर निकलता है। इसी से स्वर में अनुनासिकता आ जाती है। मानक हिन्दी में अनुनासिकता शब्दों में स्वर के ऊपर आदि, मध्य और अन्त, तीनों स्थितियों में मिलती है। इसमें वर्णग्राम (ं) तो विशुद्ध अनुस्वार है और सहवर्णग्राम (ँ) अनुनासिकता है।

अ	:	अंग, बसंत, हंस
आ	:	आंसू, बाँस, धूआँ
इ	:	बिंधना, इंद्र
ई	:	ईंट, सींचना
उ	:	बुंदेली, उँगली
ऊ	:	ऊंट, गेहूँ
ए	:	में, बातें
ऐ	:	कैंची, हैं
ओ	:	कोसों, सोंठ

हिन्दी में स्वरात्मक अनुनासिकता एक ऐसा तत्व है जो किसी भी स्वर-स्वनिम के साथ आ सकता है। वस्तुतः हिन्दी के सभी नासिक्य स्वरों के पर्याय के रूप में एक सामान्य स्वरानुनासिकता को स्वीकार किया जाता है, जो सभी मौखिक स्वरों के साथ उच्चरित होती है।

स्पर्श व्यंजन

/क्/ क् का उच्चारण जिह्वा-पश्च को कोमल तालु से मिला कर किया जाता है। अन्दर से आनेवाली वायु को स्पर्श के द्वारा अवरुद्ध किया जाता है और फिर वायु-वेग के कारण स्फोट होता है। इसको अघोष अल्पप्राण कण्ठ्य स्पर्श कहा जाता है। जैसे- कल, एक, चकिया।

/ख्/ इसकी उच्चारण विधि क् के तुल्य है। इसमें अन्तर यह है कि यह महाप्राण ध्वनि है, अतः इसमें आन्तरिक वायु-प्रवाह अधिक होता है। इसको अघोष महाप्राण स्पर्श कहते हैं। जैसे- खल, दुखड़ा, मुख। संस्कृत और हिन्दी में ख् ध्वनि स्वतंत्र स्वनिम है।

/ग्/ इसकी उच्चारण विधि क् के तुल्य है। इसमें अन्तर यह है कि इसके उच्चारण में स्वरतंत्रियाँ बन्द रहती हैं, अतः ध्वनि कम्पन के साथ निकलती है। अतएव इसको घोष या नाद वर्ण कहा जाता है। यह सघोष-अल्पप्राण-कण्ठ-स्पर्श है। जैसे- गमन, जगह, आग आदि। यह ध्वनि प्रायः सभी भाषाओं में पायी जाती है।

/घ्/ इसके उच्चारण में भी जिह्वापश्च कोमल-तालु को स्पर्श करता है। इसमें क् से अन्तर यह है कि इसके उच्चारण में ग् के तुल्य स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है और महाप्राण ध्वनि होने के कारण वायु-प्रवाह अधिक बल से निकलता है। इसको घोष महाप्राण कण्ठ्य-स्पर्श कहते हैं। जैसे- घर, बघारना, बाघ। संस्कृत और हिन्दी में यह स्वतंत्र स्वनिम है। अंग्रेजी में यह ध्वनि नहीं है।

/ट्/ इसका उच्चारण जीभ की नोक को पीछे की ओर मोड़कर उसके नीचे के भाग से कठोर तालु के मध्यभाग के स्पर्श से किया जाता है। यह अघोष और अल्पप्राण ध्वनि है। इसको अघोष-अल्पप्राण-मूर्धन्य-स्पर्श कहा जाता है। यथा- टीला, काटना, संकट। अंग्रेजी की ट्, ड् ध्वनियाँ वर्त्स्य हैं।

/ठ्/ इसकी उच्चारण विधि ट् के तुल्य है। इसमें अन्तर केवल इतना है कि ट् अल्पप्राण है और यह महाप्राण है। इसके उच्चारण में आन्तरिक वायु-प्रवाह अधिक होता है। इसको अघोष-महाप्राण-मूर्धन्य-स्पर्श कहते हैं। जैसे- ठोकर, कठिन, काठ।

/ड्/ इसका उच्चारण जिह्वा की नोक को उलट कर कठोर-तालु के मध्यभाग को स्पर्श करके होता है। इसका ट् से अन्तर यह है कि ट् अघोष ध्वनि है और सघोष है। इसके उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है। इसको घोष-अल्पप्राण-मूर्धन्य-स्पर्श व्यंजन कहते हैं। जैसे- डमरू, खड्ग, खंड।

/ढ्/ इसकी विधि ड् के तुल्य है। अन्तर यह है कि यह अल्पप्राण न होकर महाप्राण है। इसको घोष-महाप्राण-मूर्धन्य-स्पर्श व्यंजन कहते हैं। इसका प्रयोग हिन्दी में शब्दों के आरंभ में पाया जाता है। जैसे- ढोल, ढक्कन, ढंग। "मध्य ढ् कुछ मिश्र शब्दों में- बेढब"[६], बेढंग।

/त्/ इसके उच्चारण में जिह्वा-नोक ऊपर के दाँतों के अग्रभाग को स्पर्श करता है। कोमल-तालु ऊपर उठा रहता है, अतः आन्तरिक वायु नासाविवर की ओर से नहीं जा पाती। स्वरतंत्रियों का मुख खुला रहता है और आन्तरिक वायु अबाध रूप से दाँतों तक बाहर आती है। जिह्वानोक के हटते ही स्फोट के साथ त् ध्वनि का उच्चारण होता है। इसको अघोष-अल्पप्राण-दन्त्य स्पर्श व्यंजन कहते हैं। उदा० तथा, पाताल, बात।

/थ्/ त् और थ् के उच्चारण-स्थान में कोई भेद नहीं है किंतु थ् महाप्राण, अघोष, दन्त्य, स्पर्श व्यंजन है। जैसे- थोड़ा, सुथरा, साथ।

/द्/ द् का उच्चारण भी जीभ की नोक से दाँतों की ऊपर की पंक्ति को छूकर किया जाता है किंतु द् अल्पप्राण, सघोष, दन्त्य, स्पर्श व्यंजन है। जैसे- दानव, बदन, चाँद।

/ध्/ ध् का उच्चारण भी अन्य तवर्गीय ध्वनियों के समान ही होता है किंतु यह महाप्राण, घोष, स्पर्श व्यंजन है। जैसे- धान, बधाई, दूध।

/प्/ प् का उच्चारण दोनों होठों के स्पर्श के द्वारा होता है। ओष्ठ्य ध्वनियों के उच्चारण में जीभ से सहायता बिल्कुल नहीं ली जाती। इसे द्वयोष्ठ्य अघोष-अल्पप्राण-स्पर्श कहते हैं। यह ध्वनि प्रायः सभी भाषाओं में मिलती है। अंग्रजी के प् के उच्चारण में दोनों ओष्ठों को जितना बलपूर्वक मिलाया जाता है, उतना संस्कृत

और हिन्दी के प् के उच्चारण में नहीं। जैसे- पिता, काँपना, आप, आदि।

/फ्/ प् और फ् का उच्चारण-स्थान एक है किंतु यह महाप्राण, अघोष, ओष्ठ्य, स्पर्श व्यंजन है। जैसे- फूल, सफल, साफ आदि।

/ब्/ ब् का उच्चारण भी दोनों होठों को छुआ कर होता है, किंतु यह अल्पप्राण, सघोष, द्वयोष्ठ्य, स्पर्श व्यंजन है। प् की अपेक्षा ब् निर्बल ध्वनि है। यह ध्वनि प्रायः सभी भाषाओं में पायी जाती है। जैसे- बहुधा, साबुन, सब आदि।

/भ्/ इसकी उच्चारण विधि ब् के तुल्य है। लेकिन यह अल्पप्राण न होकर महाप्राण ध्वनि है। इसे सघोष-महाप्राण-ओष्ठ्य-स्पर्श व्यंजन कहते हैं। जैसे- भाषा, विभाग, जीभ आदि।

स्पर्श-संघर्षी

आधुनिक भाषाशास्त्र के अनुसार चवर्गीय ध्वनियों को स्पर्श में न रख कर स्पर्श-संघर्षी में रखा जाता है। ये ध्वनियाँ च् छ् ज् झ् हैं।

/च्/ इसका उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। अतः यह स्पर्शसंघर्षी ध्वनि मानी जाती है। इसको अल्पप्राण-अघोष-स्पर्शसंघर्षी ध्वनि कहते हैं। यह ध्वनि संस्कृत, हिन्दी, अंग्रजी आदि भाषाओं में भी पायी जाती है। उदा. चन्दन, कचौड़ी, सच।

/छ्/ च् और छ् का स्थान एक ही है। यह महाप्राण, अघोष व्यंजन है। जैसे- छेद, कछुआ, कच्छ।

/ज्/ इसका उच्चारण भी जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूड़ों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड़ के साथ छूकर किया जाता है। किंतु ज् अल्पप्राण, सघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है। उदा. जाति, विजय, साज।

/झ्/ झ् का स्थान भी अन्य चवर्गीय ध्वनियों के समान ही है, लेकिन यह महाप्राण, सघोष, स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है। जैसे- झुंड, उलझना, बांझ।

नासिक्य ध्वनियाँ

नासिक्य व्यंजन घोष ध्वनि हैं, अत: ये कोमल-ध्वनि माने जाते हैं। नासिक्य ध्वनियों का महाप्राण रूप भी उच्चरित होता है जैसे न्ह्, म्ह्।

/ङ्/ इसके उच्चारण में जिह्वा-पश्च कोमल-तालु का स्पर्श करके वायु-प्रवाह के वेग के कारण स्फोट के साथ यह ध्वनि उत्पन्न होती है। नासाविवर के खुले रहने के कारण नासिक्य ध्वनियों में गूँज रहती है। इसे अल्पप्राण-सघोष-कण्ठ्य-नासिक्य कहते हैं। "यह ध्वनि प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में और यूरोपीय भाषाओं में पाई जाती है। संस्कृत व्याकरण में और अफ्रीकी भाषाओं में यह शब्द के प्रारम्भ में पाई जाती है।"[७] स्वर सहित ङ् हिन्दी में पाया जाता। शब्दों के आदि या अंत में भी इसका व्यवहार नहीं होता। शब्दों के बीच में कवर्ग के पहले ही ङ् सुनाई पड़ता है। देवनागरी लिपि में ङ् तथा समस्त अन्य पंचम अनुनासिक व्यंजनों के लिए अब प्राय: अनुस्वार लिखा जाता है। उदा० अङ्क-अंक, व्यङ्ग्य-व्यंग्य, बङ्ग-बंग। डॉ. कपिलदेव द्विवेदी ने इसका अंत प्रयोग का उदाहरण दिया है- "प्रत्यङ्"।[८]

/ञ्/ यह सघोष, अल्पप्राण, तालव्य, अनुनासिक ध्वनि है। ञ् ध्वनि साहित्यिक हिन्दी के शब्दों में नहीं पाई जाती। साहित्यिक हिन्दी में चवर्गीय ध्वनियों के पहले आने वाले अनुनासिक व्यंजन का उच्चारण न् के समान होता है। सं० चञ्चल, कञ्ज आदि का उच्चारण हिन्दी में चन्चल, कन्ज की तरह होता है। इसके अलावा हिन्दी ञ् के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग अधिक प्रचलित है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "ब्रज की बोली में नाञ् (हि० नहीं), साञ् साञ् (विशेष प्रकार की आवाज़) आदि शब्दों में ञ् की सी ध्वनि सुनाई पड़ती है। यह ञ् भी अनुनासिक य् अर्थात् य् से बहुत मिलता-जुलता है।"[९]

/ण्/ यह अल्पप्राण, सघोष, मूर्द्धन्य, नासिक्य व्यंजन है। इसका उच्चारण निरनुनासिक मूर्द्धन्य व्यंजनों की अपेक्षा कठोर तालु पर अधिक पीछे की ओर उल्टी जीभ

की नोक छुआ कर होता है। स्वर सहित यह ध्वनि हिन्दी में केवल तत्सम संस्कृत शब्दों में मिलती है और उनमें भी शब्दों के आदि में नहीं पाई जाती। उदा० गुण, परिणाम, चरण। हिन्दी में व्यवहृत संस्कृत शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श-व्यंजनों के पूर्व हलंत ण् का उच्चारण न् के समान हो गया है। जैसे- पण्डित, कण्टक आदि शब्दों का उच्चारण हिन्दी में पन्डित, कन्टक की तरह होता है। अर्द्धस्वरों के पहले ण ध्वनि रहती है, जैसे कण्व, पुण्य आदि। हिन्दी की बोलियों में ण् ध्वनि का व्यवहार बिल्कुल भी नहीं होता है। वास्तव में हिन्दी ण् का उच्चारण ड़ँ् से बहुत मिलता-जुलता होता है।

/न्/ इसका उच्चारण जिह्वानोक से वर्त्स को छुकर किया जाता है। इसे घोष-अल्पप्राण-वर्त्स्य-नासिक्य कहते हैं। उदा. नमक, बन्दर, कान।

/न्ह्/ यह न् का महाप्राण का रूप है। इसे घोष-महाप्राण-वर्त्स्य-नासिक्य कहते हैं। हिन्दी में इसे मूलध्वनि नहीं माना जाता है किंतु आधुनिक विद्वान इसे संयुक्त व्यंजन न मानकर घ्, ध्, भ् आदि की तरह मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं। लेकिन डॉ. कपिलदेव द्विवेदी का कहना है कि "इसको न् का महाप्राणकृत रूप ही समझना चाहिए स्वतंत्र-मूल-ध्वनि नहीं।"[१०] उदा. उन्होंने, कन्हैया, चिन्ह। डॉ.भोलानाथ तिवारी के अनुसार "आदि न्ह् मानक हिन्दी में नहीं है।"[११]

/म्/ म् का उच्चारण भी ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों होठों के छुआ कर होता है किंतु इसके उच्चारण में अन्य अनुनासिक व्यंजनों के समान कुछ हवा हलक़ के नाम के छिद्रों में होकर नासिका-विवर में गूँज उत्पन्न करती हैं। म् अल्पप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। जैसे- माता, कामना, कुम्हार, आम। हिन्दी में संयुक्त व्यंजनों वाले स्थलों पर म् को अनुस्वार के रूप में लिखने का अधिक प्रचलन है। उदा० कम्पन-कंपन, सम्पन्न-संपन्न, बिम्ब-बिंब, सम्बन्धी-संबंधी।

/म्ह्/ यह महाप्राण, सघोष, ओष्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन है। न्ह् के समान इसे भी आधुनिक विद्वान् संयुक्त व्यंजन न मानकर मूल महाप्राण व्यंजन मानते हैं। न्ह् की तरह आदि में इसका प्रयोग मानक हिन्दी नहीं मिलता। उदा० तुम्हारा, कुम्हार, ब्रम्ह।

पार्श्विक

"यह ध्वनि (ल्) अघोष और सघोष तथा अल्पप्राण और महाप्राण हो सकती है। इसके उच्चारण में ओष्ठ उदासीन या विवृत रहते हैं। इसको अनुनासिक भी किया जा सकता है। यह ध्वनि नासिक्य या काकल्य आदि रूपों में भी प्राप्त होती है।"[१२]

/ल्/ इसके उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूड़ों को अच्छी तरह छूती है किंतु साथ ही जीभ के दाहिने-बायें जगह छूट जाती है जिसके कारण हवा पार्श्वों(बगल) से निकलती रहती है। इसे घोष - अल्पप्राण -वर्त्स्य- पार्श्विक ध्वनि कहा जाता है। ल् का उच्चारण र् के स्थान से ही होता है किंतु इसका उच्चारण र् की अपेक्षा सरल है इसलिए आरंभ में बच्चे र् की जगह ल् बोलते हैं। जैसे- लाभ, लीला, खिलना, बाल।

/ल्ह्/ यह ल् का महाप्राण रूप है। न्ह्, म्ह् की तरह इसे भी महाप्राण व्यंजन के समान माना गया है। इसे संयुक्त व्यंजन ही मानना उचित है। परिनिष्ठित हिन्दी में ल्ह् आदि में नहीं आता है। उदा. दुल्हा, दुल्हिन, कुल्हड़।

लुंठित या प्रकम्पित

/र्/ इसके उच्चारण में जिह्वानोक दो-तीन बार वर्त्स्य या मसूड़े को बहुत शीघ्रता से छूती है। र् लुंठित, अल्पप्राण, वर्त्स्य, सघोष ध्वनि है। बच्चों को इस तरह जीभ में बहुत कठिनाई पड़ती है, इसलिए बच्चे बहुत दिनों तक र् का उच्चारण नहीं कर पाते। उदा. राम, चरण, पार आदि।

उत्क्षिप्त

/ड़्/ अल्पप्राण, घोष, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। जिह्वा अपने अग्र भाग को उलट कर मूर्धा को स्पर्श करती है और झटके से प्राणवायु बाहर निकल जाती है। यह प्राचीन भारतीय आर्यभाषा तथा मध्यकालीय पाली-प्राकृत में नहीं मिलती। अपभ्रंश-काल से इसका विकास आरम्भ हुआ और हिन्दी में यह पूर्ण रूप से विकसित हो गयी। इसे ड् की सहध्वनि माना जाता है। ड़् शब्दों के मध्य या अंत में प्राय: दो स्वरों के बीच में ही आता है। उदा० पेड़, बड़ा, गड़बड़।

/ढ़/ ड़् और ढ़् का उच्चारण-स्थान एक ही है। इसका उच्चारण ड़् के तुल्य है किंतु ढ़् महाप्राण, सघोष, मूर्धन्य, उत्क्षिप्त ध्वनि है। यह ध्वनि भी हिन्दी में नवीन है और शब्दों के मध्य और अन्त में प्राय: दो स्वरों के बीच में पाई जाती है। जैसे- बढ़िया, चढ़ना, बूढ़ा, बढ़।

संघर्षी

/स्/ जिह्वा-नोक ऊपर के तीन दाँतों की जड़ या मसूड़े के निकट जाकर संघर्ष की स्थिति में इस ध्वनि को उत्पन्न करती है। इसे अल्पप्राण-अघोष-वत्स्र्य-संघर्षी कहते हैं। पाणिनी-काल से ही परम्परा इसे दन्त्य या दन्ती *स्* कहती आयी है, किंतु मानक हिन्दी का स् वत्स्र्य स् है और यह आदि, मध्य तथा अन्त, तीनों स्थितियों में पाया जाता है। डॉ.कपिलदेव द्विवेदी इसे "दन्त्य"[१३] मानते हैं। उदा० सब, आसान, पास।

/श्/ जिह्वा-नोक ऊपरी दाँतों तथा वर्त्स से भी ऊपर उठकर कठोर तालु के निकट जाती है और संघर्ष की स्थिति से यह ध्वनि उत्पन्न करती है। जो लोग अपनी जीभ को दाँत से ऊपर कठोर तालु तक नहीं उठा पाते, वे इस तालव्य श् के स्थान पर वत्स्र्य स् का ही उच्चारण कर जाते हैं। इस कारण उनका उच्चारण अशुद्ध माना जाता है। यह अल्पप्राण, अघोष, तालव्य संघर्षी ध्वनि है। उदा० शब्द, मुश्किल, बदमाश।

/ष्/ अल्पप्राण, अघोष, मूर्धन्य, संघर्षी ध्वनि है। साहित्यिक मानक हिन्दी में संस्कृत शब्दों की वर्तनी में यह ध्वनि लिखी जाती है। यथा- भाषा, वर्षा, अष्ठ, पृष्ठ, निकृष्ट आदि। किन्तु मानक हिन्दी में यह ध्वनिग्राम नहीं है, बल्कि तालव्य श् की एक सहध्वनि है। श् ध्वनि ही मूर्धन्य व्यंजनों के पूर्व मूर्धन्यीकृत होकर ष् के रूप में सुनायी पड़ती है। यथा- भाषा, निकष, दोष, उषा, विष, आदि में ष अवश्य लिखा जाता है, किन्तु उच्चारण वास्तव में भाशा, निकश, दोश, उशा, विश जैसा होता है।

/.ह्/ : (विसर्ग) विसर्ग ह् का ही अघोष रूप है। इसका उच्चारण आन्तरिक वायु-प्रवाह के स्वरतंत्री के मुख (काकल) पर रगड़ के द्वारा होता है। संस्कृत में इसका प्रचलन बहुत अधिक है। हिन्दी में संस्कृत के तत्सम शब्दों में इसका प्रयोग पाया जाता है। जैसे- प्राय:, पुन:, दु:ख।

/ह्/ यह महाप्राण, स्वरयंत्रमुखी या काकल्य, संघर्षी है। इसका उच्चारण विसर्ग के तुल्य काकल्य या स्वरयंत्रमुखी है। दोनों में अन्तर यह है कि विसर्ग अघोष ध्वनि है और यह घोष ध्वनि है। आदि में जब यह ध्वनि आती है, तब अघोष होती है, अन्यथा घोष। महाप्राण घोष व्यंजनों (घ्, झ्, ध्, भ्) में जो हकार है, वह घोष है। मानक हिन्दी में तीनों स्थितियों में यह ध्वनि पायी जाती है। उदा० हम, कहता, वह।

अंतस्थ या अर्धस्वर

/य्/ उच्चारण की दृष्टि से स्वर और व्यंजन के बीच में होने के कारण इसे अर्धस्वर की संज्ञा दी जाती है। जीभ को अगले भाग के कठोर तालु के पास ले जाकर इसका उच्चारण होता है। किन्तु यह ध्वनि न तो संघर्षी है और न स्पर्श है। य् अल्पप्राण, तालव्य, सघोष, अर्धस्वर है। मानक हिन्दी में आदि, मध्य तथा अन्त तीनों स्थितियों में प्रयुक्त होती है। उदा० यह, माया, नियम, भय।

/व्/ इसके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग कोमल तालु की ओर उठता है और दोनों ओठ एक-दूसरे के पास आ जाते हैं; किन्तु संघर्षी स्थिति नहीं उत्पन्न होती। देर तक उच्चारण होने के कारण यह भी सप्रवाही ध्वनि है। इसके उच्चारण के पूर्व ओठ कुछ वर्तुलाकार रहते हैं, किन्तु प्राणवायु छोड़ने के पूर्व फैल जाते हैं। मानक हिन्दी में यह ध्वनि शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त तीनों स्थितियों में आती है। उदा० वहाँ, भवन, मानव।

गृहीत ध्वनियाँ

/ऑ/ अंग्रेज़ी से उधार ली हुई ध्वनि है। कुछ तत्सम शब्द के लिखने में ऑ चिह्न का व्यवहार हिन्दी में होता है। अंग्रज़ी ऑ का स्थान आ से काफ़ी ऊँचा है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार "अंग्रेज़ी में ऑ के अतिरिक्त उसका ह्रस्व रूप ॲ भी व्यवहृत होता है।"[१४] यह अर्धविवृत, अर्द्धवृत्तमुखी, दीर्घ, पश्च स्वर है। घोष ध्वनि है और उच्चारण में अवयव तन जाते हैं। साधारण हिन्दी-वक्ता इस ध्वनि के स्थान पर दीर्घ पश्च *आ* का प्रयोग करते हैं। "अतएव इस ध्वनि को दीर्घ पश्च आ की सहध्वनि ही कहना उचित

है।"[१५] यह आदि तथा मध्य में आती है। उदा० ऑफिस, कॉन्फ्रेन्स, फुटबॉल।

/क़्/ यह ध्वनि अरबी-फ़ारसी के तत्सम शब्दों में मिलती है। इसका उच्चारण जिह्वामूल को कौवा से मिला कर किया जाता है। इसे अघोष अल्पप्राण अलिजिह्वीय या जिह्वामूलीय स्पर्श कहा जाता है। इसका स्थान जीभ तथा कोमल-तालु की दृष्टि से सबसे पीछे है। "सामान्यत: मानक हिन्दी में यह ध्वनि उच्चरित नहीं होती है। इसके स्थान पर सामान्य कंठ्यध्वनि क् प्रयुक्त होती है, अतएव इसे हिन्दी का ध्वनिग्रामिक विकास नहीं माना जा सकता है।"[१६] जैसे- क़त्ल, मुक़ाम, ताक़।

/ख़्/ मानक हिन्दी में इसकी स्थिति क़् की भाँति ही है। यह महाप्राण, अघोष, कंठ्य या अलिजिह्वीय संघर्षी ध्वनि है। उदा० ख़राब, बुख़ार, शेख़।

/ग़्/ इसका उच्चारण ख़् के तुल्य होता है। यह महाप्राण, घोष, कंठ्य संघर्षी है। क़्, ख़् की भाँति ही यह ध्वनि केवल फ़ारसी-अरबी लोगों के मुख से उच्चरित होती है। हिन्दी में प्राय इसका उच्चारण ग ही किया जाता है। उदा० ग़रीब, दारोग़ा, दाग़।

/ज़्/ यह अल्पप्राण, घोष, वर्त्स्य संघर्षी ध्वनि है। यह वर्त्स्य स् का संघर्षी उच्चारण है। इसके उच्चारण में स्वरतंत्री में कम्पन होता है। फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से उधार लिए हुए शब्दों में से सुनायी पड़ता है। यह तीनों स्थितियों में प्रयुक्त होता है- ज़ालिम, गुज़र, बाज़।

/फ़्/ इसका उच्चारण नीचे के होठ को ऊपर के दाँतों की पंक्ति से लगाकर किया जाता है, साथ ही होठों और दाँतों के बीच में रगड़ के साथ हवा निकलती रहती है। अल्पप्राण, अघोष, दन्त्योष्ठ्य, संघर्षी ध्वनि है। यह ध्वनि संस्कृत और हिन्दी में नहीं है। अरबी, फ़ारसी से लिए गए तत्सम शब्दों में इसका प्रयोग मिलता है। उदा० फ़ारसी, गिरफ़्तार, अफ़वाह, साफ़। अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच आदि में यही फ़् ध्वनि मिलती है। जैसे- अंग्रेज़ी- फ़ोटो, अफ़सर, कफ़।

५.१.२) हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था

५.१.२.१) संयुक्त व्यंजन व्यवस्था :

किसी शब्द में अति निकट आने वाले दो या अधिक व्यंजन वर्णों को संयुक्त व्यंजन या व्यंजन-गुंफ कहते हैं। यह व्यवस्था का त्रिविध रूप शब्द रचना में मिलता है- आदि, मध्य और अंत्य। इस व्यवस्था की एक द्विविध स्थिति और भी मिलती है- द्वित्व और संयुक्त। तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों तक का संयोग मिलता है। त्रि-व्यंजनात्मक संयोग की अपेक्षा द्वि-व्यंजनात्मक संयोग का बाहुल्य है। मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग सर्वाधिक है, जबकि आदि और अन्त्य स्थानीय संयोग कम हैं।

अ) आदि व्यंजन संयोग :

आदि स्थानीय व्यंजन-संयोग के पाँच प्रकार मिलते हैं- i) स्पर्श + स्पर्शेतर, ii) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर, iii) स्पर्शेतर + स्पर्श, iv) अनुनासिक + स्पर्शेतर, v) स्पर्शेतर + अनुनासिक, vi) स्पर्श + अनुनासिक।

i) स्पर्श + स्पर्शेतर

प् + र् - प्रणाली
क् + ष् - क्षेत्र
ट् + र् - ट्रेन
ज् + व् - ज्वाला
क् + य् - क्यारी
ध् + य् - ध्यान
ग् + ल् - ग्लानि
ग् + व् - ग्वाला
ग् + य् - ग्यारह
क् + र् - क्रम
क् + ल् - क्लेश
ड् + य् - ड्योढ़ी

ii) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर

ह् + र् - हृदय
व् + य् - व्यक्ति
स् + व् - स्वर

व् + र् - व्रत
श् + य् - श्याम
व् + य् - व्याख्यान
स् + व् - स्वच्छ
ह् + र् - ह्रस्व

iii) <u>स्पर्शेतर + स्पर्श</u>

स् + ख् - स्खलन
स् + प् - स्पर्द्धा
स् + फ् - स्फूर्ति
स् + थ् - स्थान

iv) <u>अनुनासिक + स्पर्शेतर</u>

न् + य् - न्याय
न् + र् - नृपति
न् + य् - न्यास
म् + य् - म्यान

v) <u>स्पर्शेतर + अनुनासिक</u>

स् + न् - स्नेह
स् + न् - स्नान

vi) <u>स्पर्श + अनुनासिक</u>

ज् + ञ् - ज्ञान

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि स्पर्श + स्पर्शेतर व्यंजन की आदि स्थिति में द्वितीय व्यंजन अंतस्थ और ऊष्म हैं, विशेषत अंतस्थ व्यंजन य्, र् अधिक हैं। उदाहरण को देखकर लगता है कि संस्कृत तत्सम शब्द अधिक हैं। स्पर्श + स्पर्शेतर के शब्द सबसे अधिक हैं जबकि स्पर्श + अनुनासिक के उदाहरण कम हैं।

आ) <u>मध्य स्थानीय व्यंजन-संयोग</u> :

हिन्दी में मध्य स्थानीय व्यंजन-संयोग की भी

बहुलता है। इसमें प्राप्त उदाहरण निम्नलिखित हैं-

i) स्पर्श + स्पर्श

त् + प् - उत्पन्न
द् + ध् - श्रद्धा
प् + ट् - कप्टी
क् + ख् - मक्खन
त् + म् - आत्मा
क् + त् - युक्ति

ii) स्पर्श + स्पर्शेतर

द् + य् - विद्या
द् + व् - विद्वान
त् + य् - साहित्यकार
क् + र् - कार्यक्रम
त् + र् - चित्रा
प् + र् - अप्रैल

iii) स्पर्श + अनुनासिक

ग् + न् - अग्नि
त् + म् - महात्मा
द् + म् - पद्मा

iv) स्पर्शेतर + स्पर्श

र् + ज् - सर्जन
ल् + क् - कल्पना
र् + क् - कर्कश
स् + थ् - उपस्थित
स् + म् - कर्मण्य
र् + द् - हार्दिक
श् + त् - निश्चित
र् + म् - मार्मिक

v) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर

ल् + ह् - चूल्हा
ल् + ह् - कुल्हड़
र् + ह् - अर्हन्त
श् + य् - आवश्यक
र् + ष् - आकर्षित

vi) स्पर्शेतर + अनुनासिक

र् + ण् - वर्णन

vii) अनुनासिक + स्पर्श

म् + प् - कंपन / कम्पन
न् + त् - चिन्ता
म् + ब् - अंबर / अम्बर
ङ् + ख् - पंखा / पङ्खा
न् + द् - मंदिर / मन्दिर
न् + द् - कुंदन / कुन्दन
ञ् + ज् - व्यंजन / व्यञ्जन

viii) अनुनासिक + अनुनासिक

ङ् + म् - वाङ्मय
न् + म् - उन्मेष
म् + म् - सम्मान
न् + न् - उन्नति

इ) अन्त्य स्थानीय संयोग-व्यंजन :

हिन्दी में इसके सबसे अधिक उदाहरण मिलते हैं। इसके अन्तर्गत नौ भेद हैं-

i) स्पर्श + स्पर्श

क् + त् - रक्त
ग् + ध् - मुग्ध

क् + त् - वक्त
ट् + ठ् - मट्ठा
ड् + ग् - खड्ग
ड् + ढ् - बुड्ढा
क् + त् - मुक्त
प् + त् - प्राप्त
ब् + ध् - उपलब्ध

ii) स्पर्श + स्पर्शेतर

घ् + य् - श्लाघ्य
घ् + र् - शीघ्र
ज् + य् - राज्य
ज् + र् - वज्र
ट् + य् - नाट्य
ढ् + य् - धनाढ्य
त् + व् - तत्व
त् + ल् - कत्ल
त् + य् - साहित्य
त् + व् - दायित्व

iii) स्पर्श + अनुनासिक

ग् + ण् - रुग्ण
घ् + न् - विघ्न
त् + न् - रत्न
ज़् + म् - नज़्म
ख़् + म् - जख़्म

i

v) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर

ष् + य् - शिष्य
ह् + य् - बाह्य
र् + स् - नर्स
स् + य् - रहस्य

र् + ष् - हर्ष
र् + श् - स्पर्श
ष् + य् - मनुष्य
ष् + य् - भविष्य

v) स्पर्शेतर + स्पर्श

ष् + ट् - स्पष्ट
स् + थ् - अस्वस्थ
ष् + ट् - कष्ट
ल् + ब् - बल्ब
ष् + क् - शुष्क
स् + त् - व्यस्त

vi) अनुनासिक + स्पर्श

ङ् + क् - अंक / अङ्क
ङ् + ख् - शंख / शङ्ख
ङ् + घ् - संघ / सङ्घ
ञ् + ज् - कुंज / कुञ्ज
ण् + ठ् - कंठ / कण्ठ
ण् + ड - ठंड / ठण्ड
न् + त् - अंत / अन्त

vii) अनुनासिक + स्पर्शेतर

ण् + य् - पुण्य
ण् + व् - कण्व
न् + य् - धन्य
न् + श् - अंश / अन्श
न् + य् - शून्य

viii) स्पर्शेतर + अनुनासिक

ष् + ण् - कृष्ण
ष् + म् - भीष्म

ह् + न् - चिह्न
ह् + ण् - अपराह्ण
ह् + म् - ब्रह्म
ह् + न् - मध्याह्न
र् + ण् - कर्ण

ix) <u>अनुनासिक + अनुनासिक</u>
न् + म् - जन्म

५.१.२.२) **<u>द्वि-व्यंजन संयोग</u>** -

हिन्दी भाषा और साहित्य में द्विव्यंजनात्मक संयोग के मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग के अन्तर्गत ही द्वित्व व्यंजन आते हैं। आरम्भिक स्थिति में उदाहरण उपलब्ध नहीं है। अंत्य स्थिति में इसकी व्यवस्था नहीं है, कारण यही है कि अंत्य द्वित्व व्यंजन का अस्तित्व स्वर के बिना नहीं है।

अ) <u>अल्पप्राण + अल्पप्राण(स्पर्श + स्पर्श)</u>

क् + क् - टक्कर, पियक्कड़, घुमक्कड़, पक्का, चक्की
च् + च् - कच्चा, सच्चा, बच्चा
ज् + ज् - सज्जन, लज्जा, ताज्जूब, निर्लज्ज
ट् + ट् - लट्टू, मिट्टी
ड् + ड् - लड्डू, अड्डा, खड्डा
त् + त् - कुत्ता, पत्ता
द् + द् - गद्दार, गद्दा, खुद्दार, भद्दा
प् + प् - चप्पल, थप्पड़
ब् + ब् - मुहब्बत, गुब्बारा

आ) <u>अनुनासिक + अनुनासिक</u>

न् + न् - सन्नाटा, आसन्न, प्रसन्न, उन्नीस, पन्ना
म् + म् - हिम्मत, चम्मच, सम्मान, निकम्मा, उम्मीद

इ) <u>स्पर्शेतर + स्पर्शेतर</u>

य् + य् - शय्या
ल् + ल् - पल्लव, पल्ला, तल्लीन, उल्लास, दिल्लगी
व् + व् - फ़व्वारा
स् + स् - निस्सार, रस्सा, रस्सी

५.१.२.२) त्रि-व्यंजनात्मक संयोग -

हिन्दी में त्रि-व्यंजनात्मक संयोग की स्थिति पाई जाती है। इसके उदाहरण काफी मात्रा में मिल जाते हैं।

न् + ध् + य् - संध्या
स् + त् + र् - स्त्री
न् + द् + र् - चन्द्र, इन्द्र
र् + थ् + य् - सामर्थ्य
न् + त् + र् - स्वतंत्र, यंत्र
न् + द् + व् - अंतर्द्वन्द्व(र् द् व्)
र् + च् + छ् - मूर्च्छा
न् + त् + य् - अंत्याक्षरी, दन्त्य
ष् + ठ् + य् - ओष्ठ्य
त् + स् + न् - ज्योत्सना
द् + व् + य् - सद्व्यवहार
क् + ष् + य् - लक्षय/लक्ष्य(वर्तनी के आधार पर यह अशुद्ध होगा)
ष् + ट् + य् - वैशिष्ट्य
ष् + क् + र् - निष्क्रमण
र् + त् + स् - भर्त्सना
स् + थ् + य् - स्वास्थ्य
त् + म् + य् - महात्म्य
त् + न् + य् - सापत्न्य
र् + ह् + य् - गार्ह्य

इनके अलावा त्रिव्यंजन के अन्य कई उदाहरण हैं। हिन्दी के कई शब्द ऐसे भी हैं जिनमें चार व्यंजन का संयोग मिलता है; जैसे-

र् + त् + स् + य् - वर्त्स्य

न् + त् + र् + य्   -   स्वातन्त्र्य

इनकी संख्या अधिक नहीं है।

५.१.३) ध्वनि-परिवर्तन की दिशाएँ

भाषाविज्ञान के अन्तर्गत ध्वनि-परिवर्तन को ध्वनि-विकार एवं ध्वनि विकास भी कहते हैं, क्योंकि कभी तो प्रचलित ध्वनियाँ पूर्णतया परिवर्तित हो जाती हैं और कभी वे विकृत होकर नया रूप ग्रहण कर लेती हैं। कभी शब्दों में से कुछ ध्वनियों का लोप हो जाता है, तो कभी एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित करके अपने समान बना लेती है और कभी एक ध्वनि को देखकर दूसरी सम ध्वनि विषम हो जाती है। कभी-कभी किसी शब्द की अल्पप्राण ध्वनि महाप्राण हो जाती है, तो कभी महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण बन जाती है। इस प्रकार ध्वनियों में विविध प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं। अतः ध्वनियों के विकृत होने पर उनमें जो विविध प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं उनको ही 'ध्वनि-विकास' कहते हैं।

५.१.२.१) <u>आगम</u> : आगम के दो रूप मिलते हैं- स्वरागम, व्यंजनागम।

५.१.२.१.१) <u>स्वरागम</u> : साहित्यिक हिन्दी में आदि, मध्य और अन्त स्वरागम की स्थितियाँ मिलती हैं।

आदि			मध्य			अन्त		
स्तुति	-	अस्तुति	कृपा	-	किरपा	महत्	-	महन्त
स्नान	-	अस्नान	धर्म	-	धरम	पत्र	-	पतई
स्त्री	-	इस्त्री	प्रचार	-	परचार	ज्वलत्	-	ज्वलन्त

<u>मध्य- स्वरागम</u> : मध्य-स्वरागम के दो भेद किए जाते हैं-

अ) जब दो संयुक्त व्यंजनों के बीच किसी स्वर का आगम होता है, तब वह स्वर-भक्ति अथवा युक्तविकर्ष के कारण होता है; जैसे-

(सं०)श्लघा, (पा०)सिलाघा, (प्रा०)सलाहा, (हि०)सराहना

आ)   दूसरे प्रकार का स्वरागम अपिनिहिति के कारण होता है; जैसे-

बल्ली(लता)>बइल्लि>बइल>बेल>बेली, बेला, आदि। अपिनिहिति के उदाहरण हिन्दी में कम मिलते हैं, पर, स्वर-भक्ति के आगमवाले तद्भव शब्द हिन्दी में बहुत हैं- अगनी, अगनबोट, हरख, परताप, मिसिर, सुकुल, पूरब, भगत आदि।

५.१.२.१.२) <u>व्यंजनागम</u> :   इस प्रकार व्यंजनागम के भी तीन भेद होते हैं- आदि, मध्य और अन्त।

<u>आदि</u>	<u>मध्य</u>	<u>अन्त</u>
ओष्ठ - होठ	शाप - श्राप	भौं - भौंह
उल्लास - हुलास	आलस्य - आलकस	राधाकृष्ण - राधाकृष्णन्
अस्थि - हड्डी	हमेशा - हरमेशा	कल - कल्ह
औंरगाबाद - नौंरगाबाद		परवा - परवाह

५.१.२.२) **<u>लोप</u>** : साहित्यिक हिन्दी में स्वर-लोप एवं व्यंजन-लोप में तीनों स्थितियाँ मिलती हैं।

५.१.२.२.१) <u>स्वर-लोप</u> :

<u>आदि</u>	<u>मध्य</u>	<u>अन्त</u>
अनाज - नाज	बलदेव - बल्देव	कमल - कमल्
अभ्यंतर - भीतर	तरबूज - तर्बूज	निद्रा - नींद
उपायन - बायन	कपड़ा - कप्ड़ा	जाति - जात्
एकादश - ग्यारह	समझना - समझ्ना	बाहु - बाँह

५.१.२.२.२) <u>व्यंजन-लोप</u> :

शमशान - मसान	कार्तिक - कातिक	निम्ब - नीम
स्कंधा - कंधा	सप्त - सात	आम्र - आम
स्फूर्ती - फूर्ती	घरद्वार - घरबार	सत्व - सत

५.१.२.२.३) स्वर-व्यंजन-लोप :

इसे अक्षर-लोप भी कहते हैं। जहाँ शब्द के आदि, मध्य और अन्त में स्वर और व्यंजन लुप्त हो जायें वहाँ अक्षर-लोप होता है।

त्रिशूल - शूल	फलाहार - फरार	माता - माँ
शहतूत - तूत	भांडागार - भंडार	व्यंग्य - व्यंग
आदित्यवार - इतवार	चतुष्क - चौक	कुंचिका - कुंजी

५.१.२.२.४) समाक्षर-लोप :

जहाँ किसी शब्द में एक ही अक्षर दो बार प्रयुक्त होता है और उनमें से एक का लोप हो जाता है, वहाँ 'समाक्षर-लोप' होता है। जैसे-

नाककटा - नकटा
खरीददार - खरीदार
मानससरोवर - मानसरोवर

५.१.२.३) विपर्यय :

जब उच्चारण करते-करते किसी शब्द के कुछ अक्षर एक स्थान से स्थान पर बोले जाने लगते हैं, तब वहाँ 'विपर्यय' होता है। इसके तीन प्रमुख भेद होते हैं- स्वर-विपर्यय, व्यंजन-विपर्यय और अक्षर-विपर्यय।

५.१.२.३.१) स्वर-विपर्यय : कुछ - कछु
अम्लिका - इमली
उल्का - लूका

५.१.२.३.२) व्यंजन-विपर्यय : लखनऊ - नखलऊ
चाकू - काचू
मतलब - मतबल

५.१.२.३.३) अक्षर-विपर्यय : दाल में काला - काल में दाला
चहल-पहल - पहल-चहल
कोलतार - तारकोल

५.१.२.४) मात्रा-भेद :

जहाँ किसी शब्द में कोई मात्रा ह्रस्व से दीर्घ या दीर्घ से ह्रस्व हो जाती है, वहाँ 'मात्रा-भेद' होता है। क्षतिपूरकता तथा स्वराघात आदि के परिणामस्वरूप ये परिवर्तन होते हैं। इसलिए इसे 'क्षतिपूर्ति' भी कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं- ह्रस्व से दीर्घ होना और दीर्घ से ह्रस्व होना। जैसे-

५.१.२.४.१) ह्रस्व से दीर्घ :

अक्षत - आखत
लज्जा - लाज
पुत्र - पूत

५.१.२.४.२) दीर्घ से ह्रस्व :

शून्य - सून्न
धूम्र - धुआँ
आश्चर्य - अचरज

५.१.२.५) समीकरण :

जहाँ कोई ध्वनि अपनी समीपवर्ती ध्वनि को अपने समान बना लेती है, वहाँ 'समीकरण' होता है। इसे कुछ विद्वान् 'सावर्ण्य' भी कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है-

५.१.२.५.१) पुरोगामी समीकरण :

जहाँ पूर्ववर्ती ध्वनि अपनी परवर्ती ध्वनि को अपने समान बना लेती है, वहाँ 'पुरोगामी समीकरण' होता है। जैसे-

स्वर समीकरण	व्यंजन समीकरण
जुल्म - जुलुम	पत्र - पत्ता
हुक्म - हुकुम	चक्र - चक्का
मुक्ति - मुकुति	अग्नि - अग्गि

५.१.२.५.२) पश्चगामी समीकरण :

जहाँ परवर्ती ध्वनि अपनी पूर्ववर्ती ध्वनि को अपने समान बना लेती है, वहाँ 'पश्चगामी समीकरण' होता है।

स्वर समीकरण	व्यंजन समीकरण
अंगुली - उंगली	धर्म - धम्म
इक्षु - उक्खु	शर्करा - शक्कर
श्वसुर - सुसुर	गल्प - गप्प

५.१.२.६) विषमीकरण :

यह समीकरण का उल्टा है। इसमें दो समान ध्वनियाँ अपना रूप छोड़कर दूसरा रूप धारण कर लेती हैं। इसे कुछ 'असावर्ण्य' भी कहते हैं। इसके दो भेद हैं-

५.१.२.६.१) पुरोगामी विषमीकरण :

जहाँ समीपवर्ती दो समान ध्वनियों में से पूर्ववर्ती ध्वनि जैसी की तैसी बनी रहती है, किन्तु परवर्ती ध्वनि अपना रूप बदल लेती है, वहाँ पुरोगामी विषमीकरण होता है। जैसे-

स्वर विषमीकरण	व्यंजन विषमीकरण
पुरुष - पुरिस या पुलिस	काक - काग
तित्तिर - तीतर	कंकण - कंगन
भित्ति - भीत	पिपासा - प्यास

५.१.२.६.२) पश्चगामी विषमीकरण :

इसमें समीपवर्ती दो समान ध्वनियों में से परवर्ती ध्वनि जैसी की तैसी बनी रहती है, किन्तु पूर्ववर्ती ध्वनि बदल जाती है।

स्वर विषमीकरण	व्यंजन विषमीकरण
नूपुर - नेउर	लांगन - नांगल
मुकुल - मउल	दरिद्र - दलिद्दर
मुकुट - मउर	नवनीत - लवनी

५.१.२.७) सघोषीकरण : कभी-कभी मुख-सुख के लिए अघोष ध्वनियों को घोष कर दिया जाता है।

शकुन - सगुन

शती - सदी
नकद - नगद

५.१.२.८) अघोषीकरण : यहाँ सघोष ध्वनि कालान्तर में अघोष ध्वनि के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

मदद - मदत
खर्ज - खर्च
तद् + पर - तत्पर
अज्ञातक - अचानक [ज्ञ् (ज् + ञ) का च् हो गया है]

५.१.२.९) अल्पप्राणीकरण : उच्चारण की सुविधा के लिए कुछ शब्दों में महाप्राण का अल्पप्राण हो जाता है।

स्वादिष्ठ - स्वादिष्ट (ठ का ट)
सिन्धु - हिन्दु (स का ह)
भीख - भीक (ख का क)
भगिनि - बहिन (भ का ब + स्वर-लोप)

५.१.२.१०) महाप्राणीकरण : कभी-कभी अल्पप्राण ध्वनियों को मुख-सुख के लिए महाप्राण बोला जाता है।

शुष्क - सुखा (क का ख + व्यंजन-लोप + स्वरागम)
हस्त - हाथ (त का थ + व्यंजन-लोप + स्वरागम)
वेष - भेष (व का भ)
वृश्चिक - बिच्छू (च का छ + व्यंजन-लोप + स्वरागम)

५.१.२.११) ऊष्मीकरण :

स्पर्श ध्वनियाँ कालान्तर में ऊष्म ध्वनियों के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। यह प्रवृत्ति केण्टुम् और शतम् वर्ग की भाषाओं में पाई जाती है। जैसे-

केण्टुम - शतम् (क का श)

५.१.२.१२) अनुनासिकीकरण :

मुख-सुख के लिए अनुनासिक-रहित शब्दों को भी

अनुनासिक-युक्त कर देते हैं। यह अनुनासिकता दो प्रकार की है-

५.१.२.१२.१) सकारण : शब्द में नासिक्य ध्वनि थी, अतः विकसित रूप में अनुनासिक आया।

चन्द्र - चाँद
अन्धकार - अँधेरा
कम्पन - काँपना

५.१.२.१२.२) अकारण : शब्द में नासिक्य ध्वनि न होने पर भी विकसित रूप में अनुनासिकता आ जाती है। जैसे-

सर्प - साँप
अक्षि - आँख
उच्च - ऊँचा

५.१.२.१३) संधीकरण : कुछ व्यंजन उच्चारण में स्वर के समीप होने के कारण स्वर में परिवर्तित हो जाते हैं और फिर अपने से पहले के व्यंजन में मिल जाते हैं। कभी-कभी इससे ध्वनियों में इतना परिवर्तित हो जाता है कि साधारणतया समझ में नहीं आता।

सपत्नी - सवत्त - सउत्त - सौत
शत - सत - सव - सउ - सौ
नयन - नइन - नैन
भ्रमर - भँवर - भौंरा
चामर - चँउर - चोर

५.१.२.१४) विशेष प्रकार के ध्वनि-परिवर्तन : अपिनिहिति, अवश्रुति, अभिश्रुति

कुछ विशेष प्रकार के ध्वनि-परिवर्तन भी भाषाओं में मिलते हैं। इनके बारे में सभी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। "इन परिवर्तनों का अब मात्र ऐतिहासिक महत्व है।"[१७] हिन्दी में इनके उदाहरण बहुत कम हैं या नहीं हैं। इनके उदाहरण अधिकांशतः संस्कृत तथा विदेशी भाषाओं में पाए जाते हैं। अतः उपर्युक्त दिए गए तेरह परिवर्तन अधिक महत्वपूर्ण हैं।

सारतः हिन्दी ध्वनि व्यवस्था में ग्यारह स्वर, सत्रह स्पर्श व्यंजन (गृहीत ध्वनि क़् को मिलाकर), चार स्पर्श-संघर्षी व्यंजन, आठ संघर्षी व्यंजन, सात अनुनासिक स्पर्श व्यंजन, पार्श्विक ल्, ल्ह्, लुंठित र्, उत्क्षिप्त ड़्, ढ़्, अर्द्धस्वर य् और व् प्राप्त होते हैं। न्म्, न्ह् ध्वनियों का अस्तित्व भी दोनों में उल्लेखनीय है। ऋ और ष् का उच्चारण रि, रु, रो और श् के समान हैं। इसके बावजूद वर्तनी के रूप में इसका प्रयोग अपने शुद्ध रूप में होता है।

हिन्दी में व्यंजन संयोग की लगभग सारी स्थितियाँ दक्खिनी में भी मिलती हैं। आदि और मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग सभी प्रकार के शब्दों में पाया जाता है जबकि त्रि-व्यंजनात्मक संयोग संस्कृत और फ़ारसी की स्थिति में ही मिलता है। इसके अतिरिक्त चार व्यंजनात्मक संयोग हिन्दी व्यवस्था में मिलता है जो संस्कृत निष्ठ है। साधारणतः द्वित्व व्यंजन की स्थिति शब्द के मध्य में ही पायी जाती है।

ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न स्थितियाँ भी पाई गयी हैं। हिन्दी में संधीकरण, अक्षर-विपर्यय, ऊष्मीकरण, अल्पप्राणीकरण, महाप्राणीकरण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

५.२ व्याकरणिक विशेषताएँ

५.२.१) संज्ञा विवेचन :

संज्ञा विवेचन के अन्तर्गत भाषा में प्रयुक्त संज्ञा रूपों के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डाला जाता है। संज्ञा के मूल रूप के साथ-साथ वचन, लिंग और कारक के प्रभाव से संज्ञा रूप में होने वाले परिवर्तनों का विवेचन भी इसमें समीकृत होता है।

५.२.१.१) संज्ञा मूलरूप :

डॉ.धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होने वाले समस्त संभावित परिवर्तन रूपों के निम्न तालिका में स्पष्ट किया है।[१८]

	पु०		स्त्री०	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
		आकारान्त		
मूलरूप	-आ	-एं	x	-एं
विकृतरूप	-ए	-ओं	x	-ओं
		अन्य		
मूलरूप	x	x	x	(-ए, आं)
विकृतरूप	x	-ओं	x	-ओं

सूचना--- १) ईकारांत तथा ऊकारांत शब्दों में 'ओं' लगाने के पूर्व ईकार तथा ऊकार के स्थान में इकार तथा उकार हो जाता है।

२) स्त्री० के अन्य रूपों में इकारांत अथवा ईकारांत तथा ऊकारांत संज्ञाओं के मूलरूप बहु० में इआं, इऐं तथा उऐं रूप भी होते हैं।

५.२.१.१.१) वचन :

संज्ञा के जिस रूप से उसकी संख्या का बोध होता है, उस रूप को 'वचन' कहते हैं। मानक हिन्दी में दो वचन हैं- एकवचन और बहुवचन। बहु० दो प्रकार का है- साधारण बहु० तथा आदरार्थक बहु०। एक से अधिक वस्तुओं के लिए प्रयोग में आने वाला बहु० 'साधारण बहु०' कहलाता है तथा जहाँ किसी के प्रति आदर(सम्मान) का भाव प्रकट करने के लिए एक० के स्थान पर बहु० का प्रयोग किया जाता है, वहाँ 'आदरार्थक बहु०' होता है। इसमें क्रिया तो हमेशा बहु० में ही रहती है, किन्तु संज्ञा(कर्त्ता आदि) कभी एक० में रहती है तो कभी-कभी बहु० में भी रहती है। तो कभी बहु० बनाने के लिए आदरसूचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है; जैसे- जी, आप।

एक० से बहु० बनाने के नियम :

वचन की दृष्टि से संज्ञा में परिवर्तन दो रूपों में होता है-

क) मूल (अविकृत या कारक चिह्न रहित) रूप में।
ख) विकृत (तिर्यक् या कारक चिह्न सहित) रूप में।

मूलरूप :

अ) अकारान्त शब्दों के उच्चारण में स्वर का लोप हिन्दी की विशेषता है। इनके अलावा आकारान्त पु० शब्दों को छोड़कर शेष पु० के मूलरूप में शून्य प्रत्यय बहु० के रूप में लगता है। या यूँ कह सकते हैं कि पु० व्यंजनांत तथा कुछ स्वरांत संज्ञाओं में प्रथमा एक० तथा बहु० के रूप समान होते हैं, जैसे-

	एक०	बहु०
i)	{-अ}	{-अ} + {०}
	प्राण	प्राण
	ब्राह्मण	ब्राह्मण
	लोग	लोग
	समाचार	समाचार
	शिक्षक	शिक्षक
	होश	होश
	होंठ	होंठ

घर	घर
बर्तन	बर्तन
मुनि	मुनि
कवि	कवि
पक्षी	पक्षी
आदमी	आदमी
गुरु	गुरु
साधु	साधु
डाकू	डाकू
चौबे	चौबे
जौ	जौ

ऐसे संज्ञापदों के बहु० का बोध पदात्मक स्तर पर न होकर वाक्यात्मक स्तर पर क्रिया के सहारे जाना जाता है। यथा- 'उसके तीन घर(बहु०) हैं।' 'हैं' बहु० क्रिया से घर बहु० का बोध होता है। इसी प्रकार- आकाश में पक्षी उड़ रहे हैं, डाकू पकड़े गए, आदि।

ऐसे पदों के बहु० का बोध कराने के लिए कभी-कभी इन संज्ञापदों के पूर्व एक से अधिक पूर्ण संख्याबोधक पद या बहुत, अनेक, कुछ तथा बाद में गण, लोग, वृन्द आदि बहुवचनबोधक शब्द जोड़ दिए जाते हैं।

कुछ अकारान्त स्त्री० शब्दों के अन्तिम 'अ' को 'एँ' करने से वे बहु० बन जाते हैं। जैसे-

ii)	{-अ}	{-अ} + {-एँ} का लोप
	बात	बातें
	रात	रातें
	औरत	औरतें
	किताब	किताबें
	पुस्तक	पुस्तकें
	बहन	बहनें
	सड़क	सड़कें

आ) यदि पु० शब्द आकारान्त हो, तो बहु० बनाने के लिए 'आ' के स्थान पर 'ए' का प्रयोग होता है-

i)	{-आ}	{-आ} का लोप	+	{-ए}
	लड़का		लड़के	
	बेटा		बेटे	
	घोड़ा		घोड़े	
	रास्ता		रास्ते	
	बच्चा		बच्चे	
	हीरा		हीरे	

अपवाद- संस्कृत के आकारान्त शब्द बहु० में नहीं बदलते हैं। जैसे- कर्ता, दाता, देवता. पिता, नेता, योद्धा, राजा, सखा आदि।

सम्बन्धियों के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्दों में पोता, बेटा, भतीजा, भानजा और साला में 'आ' का 'ए' हो जाता है, परन्तु काका, चाचा(चचा), ताया, नाना, दादा, फूफा, मामा आदि में दोनों वचनों का रूप एक-सा ही रहता है।

इ) आकारन्त स्त्री० शब्दों के अन्त में 'एँ' जोड़ने से वे बहु० बन जाते हैं। यथा-

{-आ}	{-आ} + {-एँ}
माता	माताएँ
लता	लताएँ
कन्या	कन्याएँ
भावना	भावनाएँ
सूचना	सूचनाएँ
लेखिका	लेखिकाएँ

ई) स्त्री० शब्दों के अन्त के 'इ', 'ई' या 'इया' बदलकर बहु० में 'इयाँ' हो जाते हैं-

i)	{-इ}	{-इ} + {-इयाँ}
	जाति	जातियाँ

नीति	नीतियाँ
निधि	निधियाँ
तिथि	तिथियाँ
रीति	रीतियाँ
विधि	विधियाँ

ii) {-ई} {-ई} + {-इ} + {-इयाँ}
का लोप

लड़की	लड़कियाँ
स्त्री	स्त्रियाँ
रमणी	रमणियाँ
नदी	नदियाँ
बेटी	बेटियाँ
पोथी	पोथियाँ
रानी	रानियाँ
नारी	नारियाँ
कली	कलियाँ

iii) {-इया} {-इया} + {-ँ}

चिड़िया	चिड़ियाँ
गुड़िया	गुड़ियाँ
डिबिया	डिबियाँ
खटिया	खटियाँ

उ) उकारान्त, ऊकारान्त तथा औकारान्त स्त्री० शब्दों के अन्त में 'एँ' जोड़ने तथा 'ऊ' को 'उ' करने से वे बहु० बन जाते हैं। जैसे-

i) {-उ} {-उ} + {-एँ}

वस्तु	वस्तुएँ
धेनु	धेनुएँ

ii)	{-ऊ}	{-ऊ} + {-उ} + {-एँ}
		का लोप
	वधू	वधुएँ
	बहू	बहुएँ
iii)	{-औ}	{-औ} + {-एँ}
	गौ	गौएँ

विकृतरूप :

अ) कुछ अकारान्त और आकारान्त शब्दों के 'अ' और 'आ' के स्थान पर 'ओं' जुड़ जाता है-

	एक०	बहु०
i)	{-अ}	{-अ} + {-ओं}
		का लोप
	आँख	आँखों
	बहन	बहनों
	पत्थर	पत्थरों
	बात्	बातों
	घर्	घरों
ii)	{-आ}	{-आ} + {-ओं}
		का लोप
	लड़का	लड़कों
	घोड़ा	घोड़ों
	साला	सालों

कुछ आकारान्त शब्दों में 'ओं' जुड़ता है-

iii)	{-आ}	{-आ} + {-ओं}
	नेता	नेताओं
	माता	माताओं

आ) इकारान्त और ईकारान्त शब्दों के अन्त में 'यों' जोड़ने से और 'ई' को 'इ' करने से वे बहु० बन जाते हैं-

i)	{-इ}	{-इ} + {-यों}
	कवि	कवियों
	जाति	जातियों
	मुनि	मुनियों

ii)	{-ई}	{-ई} + {-इ} + {-यों} का लोप
	नाई	नाइयों
	स्त्री	स्त्रियों
	नदी	नदियों

इ) जिन शब्दों के अन्त में 'या' होता है, उसे अन्तिम 'या' को हटाकर 'यों' जोड़ देने से वे बहु० बन जाते हैं-

i)	{-या}	{-या} + {-यों} का लोप
	गुड़िया	गुड़ियों
	डिबिया	डिबियों
	चिड़िया	चिड़ियों

विशेष- सानुस्वार ओकारांत और औकारांत संज्ञाएँ बहु० में बहुधा अविकृत रहती हैं; जैसे- दौं, कोदों, सरसों, गौं आदि। हिन्दी में ये शब्द बहुत कम हैं।

ई) उकारान्त शब्दों के अन्त में 'ओं' जोड़ने से ये बहु० बन जाते हैं-

i)	{-उ}	{-उ} + {-ओं}
	साधु	साधुओं
	वस्तु	वस्तुओं

ii)	{-ऊ}	{-ऊ}	+	{-उ}	+	{-ओं}
		का लोप				
	बहू	बहुओं				
	हिन्दू	हिन्दुओं				
	लू	लुएँ				

सूचना-- हिन्दी में प्रचलित आकारांत और उकारांत स्त्री० शब्द संस्कृत के हैं। संस्कृत की कुछ ऋकारांत और व्यंजनांत स्त्री० संज्ञाएँ हिन्दी में आकारांत हो जाती हैं; जैसे, मातृ-माता, दुहितृ-दुहिता, सीमन्-सीमा, अप्सरम्-अप्सरा इत्यादि।

५.२.१.१.१.१) अरबी-फ़ारसी वचन व्यवस्था :

पं० कामता प्रसाद गुरु का कहना है कि "हिन्दीगत उर्दू शब्दों का बहु० बनाने के लिए उनमें बहुधा हिन्दी प्रत्यय लगाए जाते हैं; जैसे, शाहज़ादा-शाहज़ादे, बेग़म-बेग़में, इत्यादि।"[१९] उर्दू भाषा के बहु० के नियम इस प्रकार हैं-

अ) i) फ़ारसी प्राणिवाचक संज्ञाओं का बहु० बहुधा 'आन' लगाने से बनता है; जैसे, साहब - साहबान, मालिक - मालिकान, काश्तकार - काश्तकारान, इत्यादि।

ii) अंत्य 'ह' के बदले 'ग' और 'ई' के बदले 'इय' हो जाता है; जैसे,
बदह - बदगान, बाशिंदह - बाशिंदगान,
पटवारी - पटवारियान, मुत्सद्दा - मुत्सद्दियान, इत्यादि।

आ) फ़ारसी अप्राणिवाचक संज्ञाओं का बहु० 'हा' लगाकर बनाते हैं; जैसे,
बार - बारहा, कूच - कूचहा, आदि।

इ) i) फ़ारसी अप्राणिवाचक संज्ञाओं का बहु० अरबी की नकल पर बहुधा 'आत' लगाकर भी बनाते हैं; जैसे, काग़ज़ - काग़ज़ात, दिह(गाँव) - दिहात, आदि।

ii) अंत्य 'ह' के बदले 'ज' हो जाता है; जैसे, परवानह - परवानज़ात,
नामह - नामज़ात, आदि।

ई) अरबी व्याकरण के अनुसार बहु० दो प्रकार का होता है- नियमित और अनियमित। नियमित बहु० शब्द के अंत में 'आत' लगाने से बनता है जैसे, ख्याल - ख्यालात, इख्तियार - इख्तियारात, मकान - मकानात, मुकद्दमा - मुकद्दमात, इत्यादि।

अनियमित बहु० बनाने के लिए शब्द के आदि मध्य और अंत में रूपांतर होता है; उदाहरण के लिए, हुक्म - अहकाम, हाकिम - हुक्काम, क़ायद - क़वाइद, आदि।

उ) अरबी अनियमित बहु० कईं वजनों पर बनता है;

i)	अफआल; जैसे-	हुक्म - अहकाम	तरफ - अत्तराफ
		वक्त - औक़ात	ख़बर - अख़बार
		हाल - अहवाल	शरीफ़ - अशराफ़

ii)	फुऊल; जैसे-	हक़ - हुक़ूक़
iii)	फुअला; जैसे-	अमीर - उमरा
iv)	अफइला; जैसे-	वली - ओलिया
v)	फुअआल; जैसे-	हाक़िम - हुक्काम
vi)	फआइल; जैसे-	अजीब - अजाइब
vii)	फवाइल; जैसे-	क़ायदा - क़वाइद
viii)	फआलिम; जैसे-	जौहर - जवाहिर
ix)	फआलील; जैसे-	तारीख़ - तवारिख़

ऊ) कभी-कभी एक अरबी एक० के दुहरे बहु० बनते हैं; यथा- जौहर - जवाहिरात, हुक्म - अहक़ामात, दवा - अदवियात, इत्यादि।

ऋ) कुछ अरबी बहु० शब्दों का प्रयोग हिन्दी में एक० में होता है; यथा- वारिदा तहक़ीक़ात, अख़बार, अशरफ़, क़वाइद, तवारीख़(इतिहास), औलिया, औक़ात(स्थिति), अहवाल, आदि।

ए) कई एक उर्दू आकारांत पु० शब्द, संस्कृत और हिन्दी शब्दों के समान बहु० में अविकृत रहते हैं; जैसे- सौदा, दरिया, मियाँ, मौजा, दारोगा, आदि।

उपर्युक्त ए, एँ, आँ, ओं आदि बहु० बोधक प्रत्यय महत्त्वपूर्ण व्याकरणिक कोटियाँ हैं।

अरबी-फ़ारसी दोनों भाषाओं में 'आत' प्रत्यय का प्रयोग है। 'आन', 'ज', 'हा', 'ग' और 'इय' फ़ारसी में बहु० रूप बनाने में सहायक प्रत्यय हैं। मानक हिन्दी की जनपदीय खड़ी बोली और हरियाणवी में लगभग यही प्रत्यय मिलते हैं। पश्चिमी हिन्दी की उपभाषा ब्रज तथा जनपदीय बुंदेली, कन्नौजी में मुख्य बहु० हैं- ए(मेले), ऐं(रातैं), इन(बेटिन), अय, यन(पोथियन)। ब्रजभाषा में कर्त्ता एक० ओकारान्त होता है। यथा- छोरो, मूसो आदि।

पूर्वी हिन्दी की अवधी उपभाषा में कर्त्ता एक० में तीन रूप मिलते हैं- घोड़, घोड़वा, घोड़ौना। मानक हिन्दी की भाँति मूलरूप बहु० यहाँ भी 'ए' है। यथा- घोड़वे, घोड़ौने। ईकारांत स्त्री० शब्दों में मानक हिन्दी की भाँति मूलरूप में ही 'आँ', 'याँ' जोड़ा जाता है। यथा- बिटिया-बिटियाँ। विकृत रूप बहु० में 'अन', 'वन' (लड़कन-लड़कवन) जोड़कर बहु० के रूप निर्मित किए जाते हैं। आधुनिक भारतीय आर्यभाषा की पंजाबी तथा लहँदा में बहु० बनाने की प्रक्रिया मानक हिन्दी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

५.२.१.१.२) लिंग व्यवस्था :

संज्ञा शब्द के जिस रूप से यह जाना जाय कि वह पुरुष-जाति के लिए प्रयुक्त हुआ है या स्त्री-जाति के लिए, उसे 'लिंग' कहते हैं। पाणिनि-व्याकरण में लिंग के लिए 'व्यक्ति' शब्द आया है। यथार्थ में लिंग शब्द का अर्थ 'चिह्न' होता है। चिह्न या निशान ही इस बात की ओर संकेत करता है कि संज्ञा की जाति स्त्री० है या पु०।

संस्कृत, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में भी तीन लिंग होते हैं, परंतु उनमें कुछ जड़ पदार्थों को उनके कुछ विशेष गुणों के कारण सचेतन मान लिया गया है। जिन पदार्थों में कठोरता, बल, श्रेष्ठता आदि गुण दिखते हैं उनमें पुरुषत्व की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को पु०, और जिनमें नम्रता, कोमलता, सुंदरता आदि गुण दिखाई देते हैं, उनमें स्त्रीत्व की कल्पना करके उनके वाचक शब्दों को स्त्री० कहते हैं। शेष अप्राणिवाचक शब्दों को बहुधा नपुंसक लिंग कहते हैं।

लिंग-भेद हमेशा प्राकृतिक नहीं हुआ करता, क्योंकि उसका सम्बन्ध शब्दों से होता है वस्तुओं से नहीं। इसीलिए हिन्दी में लिंग-निर्णय के मुख्यतया दो आधार हैं- शब्द का अर्थ और, शब्द का रूप। हिन्दी में लिंग की दृष्टि से सभी संज्ञा-शब्दों को दो भागों में बाँटा गया है- पु० और स्त्री०। हिन्दी में लिंग-भेद की दृष्टि से तीन प्रकार की संज्ञाएँ

हैं[२०]-

- आदमी तथा बड़े जानवरों के नाम सूचित करने वाली संज्ञाएँ।
- छोटे कीड़ों तथा पक्षियों के नाम प्रकट करनेवाली संज्ञाएँ।
- अप्राणिवाचक संज्ञाएँ।

प्राय: प्राणिवाचक शब्दों का लिंग अर्थ के अनुसार तथा अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग रूप के अनुसार निश्चित किया जाता है। शेष के लिए व्यवहार का आधार लेना होता है। लिंग मात्र संज्ञा को ही नहीं सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और क्रियाविशेषण को भी प्रभावित करने की क्षमता के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अ) प्राणिवाचक संज्ञाएँ यदि पुरुष का ज्ञान कराएँ तो पु०(नर) और स्त्री (मादा) का ज्ञान कराएँ तो स्त्री० होती हैं। उदाहरण के लिए-

पु०- पिता, चाचा, ताऊ, भाऊ, पुरुष, बालक, बैल, कुत्ता, हाथी आदि।
स्त्री०- माता, चाची, ताई, भाभी, स्त्री, बालिका, गाय, कुतिया, हथिनी आदि।

आ) कुछ प्राणिवाचक संज्ञाएँ (जो प्राय: पशु-पक्षी या कीट आदि का ही ज्ञान कराती हैं) पुरुष व स्त्री दोनों का ज्ञान कराने पर भी वे नित्य-पु० या नित्य-स्त्री० होती हैं। जैसे-

नित्य-पु० - भेड़िया, चीता, कौवा, खटमल, मच्छर, खरगोश, उल्लू, पशु, तोता, पक्षी आदि।
नित्य-स्त्री० - कोयल, चील, लोमड़ी, गिलहरी, मक्खी, तितली, मछली, मैना, दीमक, मकड़ी आदि।

नित्य-पु० तथा नित्य-स्त्री० शब्दों का भिन्न लिंग बताने के लिए उनके साथ नर या मादा शब्द जोड़ा जाता है। जैसे- नर चीता, मादा चीता। नर कोयल, मादा कोयल आदि।

इ) प्राणियों के समूह को बताने वाली संज्ञाएँ व्यवहार के अनुसार कुछ पु० होती हैं, तो कुछ स्त्री०। यथा-

पु० - दल, समूह, समाज, संघ, मंडल, परिवार, झुण्ड, जत्था, कुटुम्ब आदि।

स्त्री० - भीड़, सेना, सभा, समिति, टोली, कमेटी, सरकार, संसद, परिषद् आदि।

ई) कुछ प्राणिवाचक शब्दों का प्रयोग केवल स्त्री० में ही होता है अर्थात् उनका पु० रूप नहीं बनता। जैसे- सन्तान, सवारी, नर्स, सती आदि।

उ) कुछ पद-सूचक शब्द उभयलिंगी होते हैं अर्थात् पुरुष के लिए प्रयोग में आने पर पु० और स्त्री के लिए प्रयोग में आने पर स्त्री० माने जाते हैं। जैसे- गवर्नर, मंत्री, जज, प्रोफेसर, राजदूत, अध्यक्ष, डॉक्टर, प्रिंसिपल, मैनेजर, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री आदि।

ऊ) प्राय: भारी, मोटी, भद्दी और विशाल वस्तुओं के नाम पु० होते हैं। उदाहरण- पत्थर, टीला, खेत, लक्कड़, गट्ठर, गड्ढा, रस्सा आदि।

ऋ) संस्कृत के पु० तथा नपुंसक लिंग शब्द प्राय: हिन्दी में पु० ही होते हैं। जैसे- देश, धन, सागर, घृत, पुष्प, पर्वत, प्रभात, जगत्, मन, हृदय आदि। (अपवाद- वायु, देह, ऋतु, आत्मा, अग्नि, विजय तथा पुस्तक आदि)

पं०कामता प्रसाद गुरु का मानना है कि "हिन्दी में अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग जानना विशेष कठिन है क्योंकि यह बात अधिकांश व्यवहार के अधीन है। अर्थ और रूप दोनों ही साधनों से इन शब्दों का लिंग जानने में कठिनाई होती है।"[२१] -

रूप या बनावट की दृष्टि से लिंग-भेद-

संस्कृत पु० संज्ञाएँ, जिनके अंत में निम्नलिखित प्रत्यय होते हैं-

आय - समुदाय, अध्याय, अन्याय, उपाय आदि।

आर - आधार, विस्तार, अवतार, चीत्कार आदि।

आस - प्रवास, हास, विकास, अभ्यास आदि।

आश - विनाश, प्रकाश, नाश, पाश आदि।

ख - दु:ख, सुख, मुख, लेख आदि।

ज - पंकज, जलज, नीरज, सरोज आदि।

ण - कंकण, भूषण, त्राण, गण आदि।

त - स्वागत, अंत, मत, अमृत आदि।

त्र - शास्त्र, पत्र, चित्र, नेत्र, अस्त्र आदि।

त्व - महत्व, मनुष्यत्व, ममत्त्व, अपनत्व आदि।

न - अंजन, प्रश्न, नयन, दमन आदि।

व - लाघव, प्रभाव, गौरव, भव आदि।

हिन्दी पु० संज्ञाएँ, जिनके अंत में निम्नलिखित प्रत्यय लगते हैं-

आ - कपड़ा, आटा, दरवाज़ा, माथा आदि।

आव - घटाव, बढ़ाव, ताव, घुमाव आदि।

ना - चलना, देना, जागना, पढ़ना आदि(क्रियार्थक संज्ञाएँ)।

पन - बचपन, बड़प्पन, भोलापन, ओछापन आदि।

पा - बुढ़ापा, मोटापा, चप्पा, गोलगप्पा आदि।

संस्कृत स्त्री० संज्ञाएँ, जिनके अंत में निम्नलिखित प्रत्यय लगते हैं-

अना - सचना, सान्त्वना, भावना, कल्पना आदि।

आ - सेवा, पूजा, कृपा, शिक्षा आदि।

इ - राशि, कृषि, विधि, रुचि आदि।

ति - जाति, प्रीति, नीति प्रतीति आदि।

नि - हानि, योनि, ग्लानि, अवनि आदि।

या - विद्या, क्रिया, असूया, ईर्ष्या आदि।

सा - मीमांसा, पिपासा, जिज्ञासा, नासा आदि।

इमा - कालिमा, गरिमा, महिमा, प्रतिमा आदि।

ता - सज्जनता, प्रवीणता, मित्रता, योग्यता आदि।

हिन्दी स्त्री० संज्ञाएँ, जिनके अन्त में निम्नलिखित प्रत्यय लगते हैं-

ई - रोटी, टोपी, उदासी, फाँसी आदि।
(अपवाद- दही, मोती, पानी, घी, जी।)

इया - मचिया, डिबिया, खटिया, नथिया आदि।

ख	-	कोख, सीख, राख, ईख आदि।
वट	-	बनावट, सजावट, लिखावट, थकावट आदि।
हट	-	आहट, चिल्लाहट, घबराहट, गुर्राहट आदि।
आई	-	लम्बाई, लड़ाई, चढ़ाई, बड़ाई।

बनावट की दृष्टि से कुछ शब्द मिलते-जुलते हैं, जिनमें से कुछ शब्द पु० हैं तो कुछ स्त्री०। इन्हें केवल लोक-व्यवहार के आधार पर ही पहचाना जा सकता है-

पु०	स्त्री०
विधाता	दुहित
आकू	बाकू
होंठ	सोंठ
भात	बात
नीड़	भीड़
साहू	बहू
पहर	नहर
बाँस	साँस
बाल	खाल
सूप	धूल

कुछ शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी में स्त्री० हैं, पर अन्य भाषाओं में पु० हैं, या हिन्दी में पु० हैं तो अन्य भाषाओं में स्त्री० हैं। जैसे- 'व्यक्ति' शब्द हिन्दी में पु० है, पर मराठी में स्त्री० है। 'कलम' शब्द उर्दू में पु० है, पर हिन्दी में स्त्री० हैं। इसी प्रकार 'आत्मा', 'अग्नि' और 'ऋतु' शब्द संस्कृत में पु० हैं, पर हिन्दी में स्त्री० हैं। हिन्दी के व्यवहार में हिन्दी भाषा में व्यवहृत लिंग-निर्णय का ही अनुसरण करना चाहिए।

अर्थ की दृष्टि से लिंग-भेद : पुलिंग

अर्थ की दृष्टि से निम्नलिखित शब्द पु० हैं। ईकारान्त शब्द अपवाद-स्वरूप स्त्री० हैं।

शरीर के अव्यवों के नाम- कान, मुँह, दाँत, होंठ, गाँव, हाथ, गाल, मस्तक, तालु, बा, अँगूठा, नाखून आदि। (अपवाद- कोहनी, कलाई, नाक, आँख, जीभ, खाल, बाँह, नस, हड्डी, इन्द्रिय आदि।)

धातुओं के नाम- सोना, ताँबा, लोहा, सीसा, काँसा, पारा, पीतल आदि।
(अपवाद- चाँदी।)

रत्नों के नाम- हीरा, मोती, माणिक, मूगा, पन्ना, नीलम आदि।
(अपवाद- मणि, पन्नी।)

भोज्य-पदार्थों के नाम- पुआ, पेड़ा, भात, रायता, लड्डू, हलुआ, समोसा, चाकलेट आदि।
(अपवाद- दाल, रोटी, तरकारी, पूरी, जलेबी, मिठाई।)

अनाजों के नाम- गेहूँ, चना, चावल, बाजरा, उड़द, तिल, जो, मटर आदि।
(अपवाद- अरहर, मूँग, मक्का, जुआर आदि।)

दिनों और महीनों के नाम- सोमवार, मंगलवार, बुधवार, माघ, पौष आदि।

पहाड़ों और समुद्रों के नाम- हिमालय, विंध्याचल, अरबसागर, हिन्द महासागर आदि।

देशों के नाम- भारत, इंग्लैण्ड, रूस, इटली, अमरीका आदि।

ग्रहों के नाम- सूर्य, चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र आदि।
(अपवाद- पृथ्वी।)

पेड़ों के नाम- बरगद, पीपल, शीशम, सागौन आदि।
(अपवाद- इमली, सौलसिरी, नीम, जामुन।)

वर्णमाला के अक्षरों के नाम- अ, औ, क्, प्, य्, श् इत्यादि।(अपवाद- इ, ई, ऋ।)

<u>अर्थ की दृष्टि से लिंग-भेद</u> : <u>स्त्री०</u>

किराने के नाम- लौंग, इलायची, सुपारी, जावित्री(जायपत्री), दालचीनी इत्यादि।
(अपवाद- तेजपात, कपूर आदि।)

नक्षत्रों के नाम- रोहिणी, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, अश्विनी आदि।

नदियों के नाम- गंगा, यमुना, गोमती, सिंधु, नर्मदा, ताप्ती, कृष्णा आदि।
(अपवाद- ब्रह्मपुत्र, सोन, दामोदर, सोन आदि ।)

झीलों के नाम- चिलका, साँभर आदि।

तिथियों के नाम- द्वितीय, तृतीया, पंचमी, एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्था आदि।

अर्थ के अनुसार वैयाकरणों द्वारा किए गये उपर्युक्त अप्राणिवाचक लिंग-भेद के नियमों को पं०कामता प्रसाद गुरु ने अव्यापक और अपूर्ण माना है।[२२] उन्होंने संज्ञाओं के रूप के अनुसार लिंग-निर्णय के कुछ नियमों का उल्लेख किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने प्रत्येक भाषा में संज्ञा-शब्दों के अंतिम वर्ण के आधार पर एवं भाववाचक कृदन्त शब्दों के उदाहरणों द्वारा लिंग-वर्ग भेद प्रस्तुत किया है।[२३]

इस विवेचन के बाद यह लगता है कि हिन्दी की लिंग-व्यवस्था का निर्णय दुष्कर कार्य है। ख़ासतौर से अप्राणिवाचक शब्दों का लिंग-निर्णय। इसकी प्रकृति इतनी लचली है कि किसी एक सूमह के शब्दों में भी लिंग-भेद मिलता है। व्यवहार के आधार पर ही शब्द का लिंग जाना जा सकता है लेकिन ग़ैरभाषी व्यवहार से भी अनभिज्ञ रहता है। यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में जितने शब्द हैं उतने ही लगभग लिंग-नियम हैं। तथापि मौटे तौर पर यदि कहें तो हिन्दी के पुरुषवाची संज्ञापदों में ई(लड़का-लड़की), आनी(पंडित-पंडितानी), आइन(पंडिताइन), नी, अनी(शेर-शेरनी), इनी(बाघ-बाघिनी), इया(बूढ़ा-बुढ़िया), आ(छात्र-छात्रा) आदि प्रत्यय लगाकर स्त्री० पदों का निर्माण किया जाता है। कभी-कभी नर, मादा शब्द जोड़कर भी लिंगबोध कराया जाता है। हिन्दी का प्रमुख स्त्री० प्रत्यय 'ई' है, अतएव अधिकांश ईकारान्त पद स्त्री० होते हैं और मानक हिन्दी का पु० प्रत्यय 'आ' है जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल है।

५.२.१.१.३) <u>कारक-व्यवस्था</u> :

कारक के लिए हिन्दी व्याकरणों में कारक, विभक्ति, परसर्ग, कारक चिन्ह आदि पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग देखा जा सकता है। कारक के लिए उपयुक्त

अभिधान के सम्बन्ध में वैयाकरणों तथा विद्वानों में मतभेद है।

हिन्दी में जिन शब्दों के आगे कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए, ने, को, से, के लिए आदि कारक जिह्न जोड़े जाते हैं, उन्हें 'प्रातिपदिक' कहते हैं। प्रातिपादिक का अर्थ है- सार्थक शब्द, जिसे Bare या Crude Form शब्द भी कह सकते हैं।

सभी प्रकार के प्रातिपदिक शब्दों के आगे विविध कारक संबंधों को प्रकट करने के लिए हिन्दी में ने, को आदि और संस्कृत में सु, औ, गस् आदि प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इस प्रकार एक ही शब्द के विभिन्न कारकों व वचनों की दृष्टि से कई रूप हो जाते हैं। कर्ता, कर्म आदि कारकों के ही अर्थ में संस्कृत में प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियों का प्रयोग होता है। 'विभक्ति' शब्द का अर्थ है 'विभाग' अर्थात् कारक सम्बन्धों का विभाग।

'कारक' उस वस्तु को कहा जाता है जिसका साक्षात् या असाक्षात् रूप से वाक्य की क्रिया से सम्बन्ध हो, अर्थात् क्रिया के सम्पादन में जिसका उपयोग हो। जैसे- 'वन से आकर राम ने सीता के लिए, लंका में रावण को वाण से मारा था।' इस वाक्य में वन, राम, सीता, लंका, रावण, वाण, इन सभी शब्दों का कारक-क्रिया के सम्पादन में साक्षात् या असाक्षात् रूप के उपयोग है, अतः ये सभी कारक कहे जाएँगे (क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्)। इस प्रकार क्रिया के सम्पादन में ये छः सम्बन्ध होते हैं। इन्हीं सम्बन्धों को प्रकट करने के लिए कारकों का प्रयोग होता है। और इन्हीं अर्थों में प्रथमा आदि विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं।

क्रिया से जिसका सम्बन्ध नहीं होता, उसे कारक नहीं कहा जाता; जैसे, 'राम के भाई ने गोपाल को एक पुस्तक दी।' इस वाक्य में भाई, गोपाल, पुस्तक शब्दों का क्रिया के साथ सम्बन्ध है, राम का क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः 'राम' को कारक नहीं कहा जा सकता, उसका सम्बन्ध 'भाई' से है, क्रिया से नहीं। इसलिए संबंध को कारक नहीं कहा जाता। संस्कृत में भी सम्बन्ध मात्र में की जानेवाली षष्ठी विभक्ति कारक विभक्ति नहीं कही जाती, उसका सम्बन्ध किसी अन्य पद से रहता है। अतएव उसे उपपद विभक्ति कहा जाता है। शेष विभक्तियाँ कारक कहलाती हैं।

कर्ता कर्म च करणं, सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे, इत्याहुः कारकाणि षट्।।

इसी प्रकार सम्बोधन भी कारक नहीं होता, क्योंकि उसका भी सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ नहीं रहता।

संस्कृत संज्ञा में तीन वचन होते हैं। हिन्दी में द्विवचन नहीं होता। प्रथमा बहु० तथा समस्त अन्य कारकों के एक० तथा बहु० के रूपों में अंत, वचन, लिंग-भेद के अनुसार कुछ भेद पाए जाते हैं। इन्हीं रूपों में भिन्न-भिन्न कारक चिह्न लगाकर तथा कुछ प्रयोगों में बिना लगाए भी भिन्न-भिन्न विभक्तियों के रूप बना लिए जाते हैं।

५.२.१.१.३.१) संज्ञाओं की कारक रचना :

मूलरूप-विकृतरूप: कारक चिह्न लगाने से पूर्व हिन्दी संज्ञा के मूलरूप में जब परिवर्तन किया जाता है तो ऐसे रूपों को संज्ञा का 'विकृत रूप' कहते हैं।

	एक०	बहु०	
कर्ता	घोड़ा	घोड़े	(मूलरूप)
	घोड़े(ने)	घोड़ों(को)	(विकृतरूप)

जैसा कि उपरोक्त तालिका में दिखाया गया है कि- 'घोड़ा' शब्द के 'ने' विभक्ति के योग के एक० में 'घोड़े' और बहु० में 'घोड़ों' हो जाता है। इसलिए 'घोड़े' और 'घोड़ों' विकृत रूप हैं। विभक्तिरहित कर्ता और कर्म को छोड़कर और शेष कारक, जिनमें संज्ञा व सर्वनाम का विकृत रूप आता है, 'विकृत कारक' कहलाते हैं। कर्ता कारक की 'ने' विभक्ति का प्रयोग सर्वत्र नहीं किया जाता है; जैसे-

बच्चे दौड़ते हैं।
स्मिता ने पुस्तक पढ़ी।

दौड़ने का कार्य बच्चे करते हैं, अतः 'बच्चे' कर्ता कारक हैं। दोनों वाक्यों मे कर्ता कारक 'बच्चे' और 'स्मिता' हैं।

अ) एक० में विकृत रूप का प्रत्यय 'ए' है, जो केवल हिन्दी और उर्दू(तद्भव) आकारांत पु० संज्ञाओं में लगाया जाता है; जैसे- लड़का- लड़के ने, घोड़ा- घोड़े ने, सोना- सोने का, परदा- परदे में, अंधा- हे अंधे, इत्यादि।

आ) हिन्दी आकारांत संज्ञाओं वा विशेषणों में 'पन' से जो भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं उनके आगे विभक्ति आने पर मूल संज्ञा व विशेषण का रूप विकृत होता है; जैसे- कड़ापन- कड़ेपन को, गुंडापन- गुंडेपन से, बहिरापन- बहिरेपन में, इत्यादि।

अपवाद- i) संबोधन कारक बेटा में शब्दों का रूप बहुधा नहीं बदलता; जैसे- अरे बेटा, आँख खोलो; बेटा ! उठ।

ii) जिन आकारांत पु० शब्दों का रूप विभक्तिरहित बहु० में नहीं बदलता वे एक० में भी विकृत रूप में नहीं आते; जैसे- राजा ने, काका को, दरोगा से, देवता में, रामबोला का इत्यादि।

iii) भारतीय प्रसिद्ध स्थानों के व्यक्तिवाचक आकारांत पु० नामों को छोड़, शेष देशी तथा मुसलमानी स्थानवाचक आकारांत पु० शब्द का विकृत रूप विकल्प से होता है; जैसे- आगरे का आया हुआ, कलकत्ते के महलों में, राजपूताने में, दरभंगे की फसल आदि।

इ) प्रत्ययवाद - पाश्चात्य स्थानों के और कई देशी स्थानों के आकारांत पु० नाम अविकृत रहते हैं; जैसे- अफ्रीका, अमेरीका, आस्ट्रेलिया, लासा, रीवाँ, नाभा, कोटा आदि।

अपवाद- iv) जब किसी विकारी आकारांत(संज्ञा अथवा दूसरे शब्द) के साथ कारक के बाद वही शब्द आता है, तब पूर्व शब्द बहुधा अविकृत रहता है; जैसे कोठा का कोठा, जैसा का तैसा।

v) यदि विकारी संज्ञाओं(और दूसरे शब्दों) का प्रयोग शब्द ही के अर्थ में हो तो विभक्ति के पूर्व उसका विकृत रूप नहीं होता। जैसे- 'घोड़ा' का क्या अर्थ है, 'मैं' को सर्वनाम कहते हैं, आदि।

ई) बहु० में विकृत रूप के प्रत्यय 'ओं' और 'यों' है। अकारांत, विकारी आकारांत और हिन्दी याकारांत शब्दों के अंत्य स्वर में 'ओं' आदेश होता है; जैसे, घर- घरों की(पु०), बात- बातों में (स्त्री०), लड़का- लड़कों का(पु०), डिबिया- डिबियों में(स्त्री०)। मुखिया, अगुआ, बापदादा आदि शब्दों का विकृत रूप इसी प्रकार बनता है।

(सूचना- संस्कृत के हलंत शब्दों का विकृत रूप आकारांत शब्दों के समान होता है, जैसे विद्वान्- विद्वानों की, सरित्- सरितों को इत्यादि।)

उ) इकारांत संज्ञाओं के अंत्य ह्रस्व स्वर के पश्चात् 'यों' लगाया जाता है; जैसे, मुनि- मुनियों को, हाथी- हाथियों से, शक्ति- शक्तियों का, नदी- नदियों में आदि।

शेष शब्दों में अंत्य स्वर के पश्चात् 'ओं' आता है; जैसे, राजा- राजाओं को, साधु- साधुओं में, चौबे- चौबेओं में, जौ- जौओं को।

ऊ) ओकारांत शब्दों के अंत में केवल अनुस्वार आता है और सानुस्वार ओकारांत तथा ओकारांत संज्ञाओं में कोई रूपांतर नहीं होता; जैसे- रासो- रासों में, कोदों- कोदों से आदि। जिन आकारांत शब्दों के अंत में अनुस्वार होता है उनके वचन और कारकों के रूपों में अनुस्वार बना रहता है; जैसे- रोयाँ- रोएँ, रोएँ से, रोओं में।
(सूचना - हिन्दी में ऐकारांत पु० और एकारांत तथा ओकारांत स्त्री० संज्ञाएँ नहीं हैं।)

ऋ) जाड़ा, गर्मी, बरसात, भूख, प्यास आदि कुछ शब्द विकृत कारकों से बहुधा बहु० ही में आते हैं; जैसे- भूखों मरना, बरसातों की रातें, गरमियों में आदि।

ए) कुछ कालवाचक संज्ञाएँ विभक्ति के बिना ही बहु० के विकृत रूप में आती हैं; जैसे- 'बरसों बीत गए', 'इस काम में घंटों लग गए हैं'।

ऐ) विभक्तियों के बदले में कभी-कभी संबंधसूचक अव्यय आते हैं-
कर्म कारक - प्रति, तईं।
करण कारक - द्वारा, करके, जरिए, कारण, मारे।
संप्रदान कारक - लिए, हेतु, निमित्त, अर्थ, वास्ते।
अपादान कारक - अपेक्षा, बनिस्बत, सामने, आगे, साथ।
अधिकरण - मध्य, बीच, भीतर, अंदर, ऊपर।

ओ) हिन्दी में कुछ संस्कृत कारकों विशेषकर करण कारक का प्रयोग होता है; जैसे- सुखेन (सुख से), कृपया (कृपा से)।

औ) हिन्दी में कुछ उर्दू भाषा के भी कारक इस्तेमाल होते हैं; जैसे-

करण और अपादान- इनकी विभक्ति 'अज'(से) है जो दो-एक शब्दों में आती है; उदाहरण के लिए: अज खुद(आपसे), अज तरफ(तरफ से)।

संबंध कारक- इसमें भेद पहले आता है और अंत में 'ए' प्रत्यय लगाया जाता है; जैसे- सितारे हिन्द (हिन्द के सितारे), दफ्तरे हिन्द (हिंद का दफ्तर)।

अधिकरण कारक- इसकी विभक्ति 'दर' है जो 'अज' के समान कुछ संज्ञाओं के पहले आती है; जैसे- दर हक़ीक़त(हक़ीक़त में), दर असल(असल में)। 'फिलहाल' शब्द में 'फ़ी' अरबी प्रत्यय है और फ़ारसी 'दर' का पर्यायवाची है।

सार यही है कि मानक हिन्दी में संज्ञापद की कारक(रूप) रचना में उसके लिंग, वचन और अंतिम ध्वनि का विशेष प्रभाव पड़ता है। इन सभी दृष्टियों से विचार करने पर हिन्दी में प्रमुखतः निम्न कारक-रूप बनते हैं-

	एक०	बहु०	प्रत्यय
आकारान्त पु० लड़का			
मूलरूप	लड़का	लड़के	ए
विकृतरूप	लड़के	लड़कों	ओं
व्यंजनांत पु० घर्			
मूलरूप	घर्	घर्	०
विकृतरूप	घर्	घरों	ओं
व्यंजनांत स्त्री० किताब्			
मूलरूप	किताब्	किताबें	एं
विकृतरूप	किताब्	किताबों	ओं
ईकारान्त स्त्री० लड़की			
मूलरूप	लड़की	लड़कियाँ	आँ
विकृतरूप	लड़की	लड़कियों	ओं
ऊकारांत पु० डाकू			
मूलरूप	डाकू	डाकू	०
विकृतरूप	डाकू	डाकुओं	ओं
ऊकारांत स्त्री० बहू			
मूलरूप	बहू	बहुएँ	एँ
विकृतरूप	बहू	बहुओं	ओं

ओकारांत पु० रासो

मूलरूप	रासो	रासों	ओं
विकृतरूप	रासो	रासों	ओं

उपर्युक्त कारक रचना में जिनकी चर्चा नहीं की गई है वे उपर्युक्त किसी न किसी कारक-रूप के अन्तर्गत आते हैं। अतः ए, एं, एँ, आँ, ओं- ये पाँच कारक-रूप प्रत्यय हैं जो किसी न किसी शब्द के बहु० कारक-रचना में सहायता देते हैं।

ए, अज, दर जैसे अरबी-फ़ारसी प्रत्यय हिन्दी के - के, का, से, में - कारक-प्रत्यय का कार्य करते हैं। हिन्दी का 'ए' प्रत्यय उर्दू सामासिक शब्दों में भी पाया जाता है।

५.२.२) प्रत्यय :

धातु के अन्त में जुड़कर तत्सम्बंधी नवीन शब्दावली का निर्माण करनेवाले पद्याशं को प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय को 'पर-प्रत्यय' भी कहते हैं। कुछ प्रत्यय धातु में संलग्न होकर संज्ञा विशेषण आदि की रचना करते हैं। जैसे -

पिघल + आई = पिघलाई, जड़ + अत = जड़त, आदि।

कुछ प्रत्यय रूढ़ शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर संज्ञा, विशेषण, क्रिया-विशेषण आदि का निर्माण करते हैं। प्रत्यय से बने हुए शब्दों के दो मुख्य भेद हैं- कृदंत और तद्धित।

कृत - रचनात्मक पर-प्रत्यय जब क्रिया में लगते हैं, तब उन्हें कृत प्रत्यय कहते हैं और इस कृत प्रत्यय से जो शब्द बनते हैं, उन्हें कृदन्त(कृत+अन्त) कहा जाता है।

उदाहरण- लड़ + आकू = लड़ाकू, लिख + आई = लिखाई

तद्धित- रूढ़ शब्दों के साथ प्रयुक्त होकर संज्ञा, विशेषण आदि को व्युत्पन्न करते हैं। तद्धित प्रत्ययों के योग से बनने वाले शब्द तद्धितान्त(तद्धित+अन्त) कहलाते हैं।

यथा - कृपा + आलू = कृपालु, भारत + ईय = भारतीय,
पाप + ई = पापी।

किशोरीदास वाजपेयी ने कृदन्त और तिङन्त में भेद करते हुए कहा है कि -"संस्कृत

में(प्राकृत में भी) जो, क्रियाओं के वे दो भेद किए गए हैं, उन में मुख्य अन्तर यह है कि कृदन्त क्रियाएँ तो संज्ञाओं की तरह चलती हैं और तिङन्तों की अपनी अलग पद्धति है। हिन्दी में स्पष्टता के लिए यही एक पहचान है। 'पत्ता गिरा' और 'लड़की गिरी' यहाँ 'गिरा' तथा 'गिरी' शब्द स्पष्टतः कृदन्त है। परन्तु 'लड़का यहाँ है', 'लड़की यहाँ है' में 'है' क्रिया तिङन्त है। 'लड़का पढ़े', 'लड़की पढ़े' में 'पढ़े' क्रिया तिङन्त है।"[२४] हिन्दी की क्रियाएँ कृदन्त अधिक हैं, तिङन्त बहुत कम।

हिन्दी में संस्कृत की भाँति कृत् और तद्धित के बीच कोई निश्चित विभाजक-रेखा नहीं खींची जा सकती, क्योंकि कुछ प्रत्यय ऐसे हैं जो कृत और तद्धित में समान रूप से प्रयोग में आते हैं। जैसे-

कृत्	तद्धित
चढ़+आई = चढ़ाई	चतुर+आई = चतुराई
पढ़+आई = पढ़ाई	भला+आई = भलाई
मिल+नी = मिलनी	जाट+नी = जाटनी
कतर+नी = कतरनी	ऊँट+नी = ऊँटनी
बस+एरा = बसेरा	साँप+एरा = सँपेरा
लूट+एरा = लुटेरा	चाचा+एरा = चेचेरा

हिन्दी की तरह संस्कृत, उर्दू (अरबी-फ़ारसी सहित) भाषाओं में प्रत्यय(कृदन्त और तद्धित) भी प्रयोग में आते हैं। जिनके अलग-अलग उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

५.२.२.१) <u>संस्कृत - कृदन्त</u> :

हिन्दी में संस्कृत के अधिकांश शब्द तत्सम या तद्भव हैं। अतः संस्कृत-प्रत्यय तत्सम-शब्दों के अन्त में ही जोड़े जाते हैं। उदाहरणों तो बहुत है पर यहाँ केवल दो-दो उदाहरण दिए जा रहे हैं।

अक(कृतवाचक)	निन्द = निन्दक	पठ् = पाठक
	लिख् = लेखक	नृत् = नर्त्तक
अनीय(गुणवाचक)	विचर = विचारणीय	प्रशंस = प्रशंसनीय
	दृश् = दर्शनीय	कृ = करणीय

आ(भाववाचक)	पूज् = पूजा	शिक्ष् = शिक्षा
ई(कर्तृ०)	स्था = स्थायी सहचर = सहचरी	मंत्र् = मंत्री सम् + यम् = संयमी
तव्य(योग्यार्थक)	ज्ञा = ज्ञातव्य	कृ = कर्त्तव्य
मान(विविधार्थक)	वृत् = वर्तमान	यज् = यजमान
य(योग्यार्थक)	क्षम् = क्षम्य	पठ् = पाठ्य
सा(इच्छावाचक)	लल् = लालसा	पा = पिपासा

५.२.२.२) <u>संस्कृत - तद्धित</u> :

अण्/अ	रघु = राघव पुरुष = पौरुष	कुरु = कौरव पृथ्वी = पार्थिव
आ(स्त्री प्र०)	माननीय = माननीया	प्रिय = प्रिया
इक(गुण०)	अलंकार = आलंकारिक	न्याय = नैयायिक
इत=युक्त(गुण०)	पुष्प = पुष्पित	दु:ख = दु:खित
इम(भाव०)	गुरु = गरिमा	रक्त = रक्तिमा
इल(गुण०)	पंक = पंकिल	उर्मि = उर्मिल
ई(गुण०)	पक्ष = पक्षी	हस्त = हस्ती
ईन(गुण०)	कुल = कुलीन	युग = युगीन

ईय(सम्बन्ध०)	नरक = नारकीय	स्वर्ग = स्वर्गीय
एय(अपत्य०)	कुंती = कौन्तेय भगिनी = भागिनेय	राधा = राधेय गंगा = गांगेय
तन(काल०)	पुरा = पुरातन	चिरम् = चिरंतन
तः(रीति०)	स्व = स्वतः	वस्तु = वस्तुतः
तया(रीति०)	विशेष = विशेषतया	मुख्य = मुख्यतया
तर,तम(विशेषण उत्तरावस्था)	लघु = लघुतर लघु = लघुतम	बृहत् = बृहत्तर श्रेष्ठ = श्रेष्ठतम
ता(भाव०)	विशेष = विशेषता	नवीन = नवीनता
त्र(स्थान०)	यद् = यत्र	सर्व = सर्वत्र
त्व(भाव०)	सती = सतीत्व	महान् = महत्त्व
दा(क्रि०वि०)	एक = एकदा	यत् = यदा
मय(युक्त के अर्थ में)	मनः = मनोमय	दुःख = दुःखमय
मात्र(केवल के अर्थ में)	लेश = लेशमात्र	क्षण = क्षणमात्र
मान(युक्त के अर्थ में)	श्री = श्रीमान	विद्य = विद्यमान
य(भाव०)	धीर = धैर्य	अलस = आलस्य
ल(गुण०)	मांस = मांसल	श्याम = श्यामल

लु(गुण०)	श्रद्धा = श्रद्धालु	लज्जा = लज्जालु
वत्(तुल्यार्थक)	पूर्व = पूर्ववत्	पुत्र = पुत्रवत्
वान्(गुण०)	धन = धनवान	गुण = गुणवान
श:(रीति०)	क्रम = क्रमश:	शब्द = शब्दश:

इनके अतिरिक्त प्रत्यय रूप में प्रयुक्त होने वाले कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो अर्थ की दृष्टि से यद्यपि शब्द हैं, तथापि उनका स्वतंत्र प्रयोग कम होता है। जैसे-

अधीन	-	स्वाधीन, पराधीन
अन्तर	-	देशान्तर, पाठान्तर
अतीत	-	आशातीत, कालातीत
अनुसार	-	समयानुसार, इच्छानुसार
अर्थ	-	परमार्थ, स्वार्थ, धर्मार्थ
आक्रान्त	-	भयाक्रान्त, पराक्रान्त
आतुर	-	कामातुर, चिंतातुर
आकुल	-	शोकाकुल, प्रेमाकुल
आस्पद	-	हास्यास्पद, निंदास्पद
कर	-	दिवाकर, दिनकर, हितकर
कार	-	सहित्यकार, ग्रन्थकार, कुंभकार, कलाकार
ग	-	विहग, खग, जग
गत	-	व्यक्तिगत, दिवंगत
गम	-	दुर्गम, आगम, संगम
ग्रस्त	-	चिन्ताग्रस्त, रोग-ग्रस्त, बाढ़ग्रस्त
घ्न	-	कृतघ्न
चर	-	जलचर, अनुचर, निशाचर
ज	-	पंकज, अनुज, द्विज
जन्य	-	प्रेमजन्य, क्रोधजन्य
जाल	-	प्रेमजाल, शब्दजाल
जीवी	-	श्रमजीवी, बुद्धिजीवी

ज्ञ	-	मर्मज्ञ, विशेषज्ञ, नीतिज्ञ
द	-	सुखद, दुःखद
दर्शी	-	दूरदर्शी, सूक्ष्मदर्शी
दायक	-	लाभदायक, सुखदायक
धर	-	गिरिधर, हलधर, जलधर
धार	-	सूत्रधार, कर्णधार
भेद	-	मतभेद, पाठभेद
रहित	-	ज्ञानरहित, भावरहित, प्रमरहित
शील	-	कर्मशील, सहनशील, भाग्यशील
शाली	-	शक्तिशाली, बलशाली
स्थ	-	गृहस्थ, तटस्थ
हर	-	मनोहर, दुःखहर
हीन	-	गुणहीन, विद्याहीन, धनहीन

५.२.२.३) **हिन्दी - कृदन्त :**

अ(कृ० भाववाचक संज्ञा, विशेषण, पूर्वकालिक कृ० अव्यय)

कुछ अकारान्त धातुएँ ज्यों के त्यों भाषा में प्रयुक्त होती है, लेकिन उन की स्थिति भाववाचक संज्ञा जैसी होती है। हिन्दी के कुछ भाषा वैज्ञानिकों ने इस प्रकार की सार्थक संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होनेवाले प्रत्यय का नाम शून्य प्रत्यय रखा है। हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरणिक पं० कामता प्रसाद गुरु ने हिन्दी व्याकरण में शून्य प्रत्यय न कहकर शब्द के अंतिम अकार को स्वीकार करते हुए सार्थक अ प्रत्यय का उल्लेख किया है।[२५] डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी इस प्रकार की धातु संज्ञाओं को अ प्रत्यय युक्त माना है।[२६]

बोलना = बोल	चमकना = चमक
देखना = देख	समझना = समझ

अक(कर्तृ०)	पाठ+अक =पाठक	चाल+अक =चालक
अक्कड़(कर्तृ०)	पी+अक्कड़ =पियक्कड़	घूम+अक्कड़ =घुमक्कड़

अत(भाव०)	खर+अत =खपत	बच+अत =बचत
अन(भाव०)	झाड़+अन =झाड़न	पालन+अन=पालन
अन्त(भाव०)	रट+अन्त=रटन्त	गढ़+अन्त=गढ़न्त
आ(भाव०)	भेज+आ=भेजा	उतार+आ=उतारा

विशेष- समास में भी यह नियम दूसरे पद पर लागू होता है, किन्तु समस्त-पद कर्तृवाचक होता है। जैसे-

घोड़ा+चढ़ना=घुड़चड़ा	जान+लेना=जानलेवा
काठ+फोड़ना=कठफोड़ा	बड़ा+बोलना=बड़बोला

आई(भाव०)	चढ़+आई=चढ़ाई	सुन+आई=सुनाई
आऊ(भाव०)	टिक+आऊ=टिकाऊ	बिक+आऊ=बिकाऊ
आक,आका,आकू(कर्तृ०)	तैर+आक=तैराक	चाल+आक=चालाक
	लड़+आका=लड़ाका	धम+आका=धमाका
	पढ़+आकू=पढ़ाकू	लड़+आकू=लड़ाकू
आन(भाव०)	चाल+आन=चालान	लग+आन=लगान
आना(कर्म०)	मिट+आना=मिटाना	मिल+आना=मिलाना
आव(भाव०)	जम+आव=जमाव	छिड़क+आव=छिड़काव
आवा(भाव०)	पहन+आवा=पहनावा	पछता+आवा=पछतावा
आवट(भाव०)	रुक+आवट=रुकावट	थक+आवट=थकावट

आवना(विशेषण)	लुभा+आवना=लुभावना	उठ+आवना=उठावना
आहट(भाव०)	गड़गड़+आहट=गड़गड़ाहट मुस्करा+आहट=मुस्कराहट	
इयल(कर्तृ०)	मर+इयल=मरियल	अड़+इयल=अड़ियल
ई(भाव०)	हँस+ई=हँसी	झिड़क+ई=झिड़की
इया(कर्तृ०)	गढ़+इया=गढ़िया	बढ़+इया=बढ़िया
ऊ(कर्तृ०)	खा+ऊ=खाऊ	चाल+ऊ=चालू
एरा(कर्तृ०)	लूट+एरा=लुटेरा	बस+एरा=बसेरा
ऐत(कर्तृ०)	चढ़+ऐत=चढ़ैत	लठ+ऐत=लठैत
ओड़ा(कर्तृ०)	हँस+ओड़ा=हँसोड़ा	भग+ओड़ा=भगोड़ा
औता,औती(भाव०)	समझ+औता=समझौता चुन+औती=चुनौती	मन+औती=मनौती कस+औटी=कसौटी
औना,औनी(विविधार्थक)	खेल+औना=खिलौना ओढ़+औना=उढ़ौना	बिछ+औना=बिछौना
औवल(भाव०)	बूझ+औवल=बुझौवल	मींच+औवल=मिचौवल
ती(भाव०)	भर+ती=भरती	चुक+ती=चुकती
ना(विविधार्थक)	हो+ना=होना	सह+ना=सहना
नी(स्त्री० प्र०)	कर+नी=करनी	भर+नी=भरनी

वाला(कर्तृ०)	टोपीवाला	धनवाला
	जानेवाला	खानेवाला

(यह प्रत्यय के पूर्व अंत्य 'आ' के स्थान पर 'ए' हो जाता है।)

वाल(वाला का शेष)	कोतवाल	गयावाल
वैया(कर्तृ०)	गा+वैया=गवैया	खे+वैया=खेवैया
हार(कर्तृ०)	होना+हार=होनहार	करना+हार=करनहार

इनके अलावा कुछ प्रत्यय और भी हैं जो विभिन्न प्रकार के शब्द बनाते हैं-

आड़ी	-	खिलाड़ी
आप	-	मिलाप, विलाप
आपा	-	पुजापा
आरी	-	पुजारी, भिखारी
आलू	-	झगड़ालू
आवत	-	कहावत
आस	-	प्यास, भड़ास
ऐया	-	बचैया, सुनैया, नचैया
ओड़	-	हँसोड़
औनी	-	मिचौनी
आनी	-	कहानी
वाँ	-	ढलवाँ, चुनवाँ, कटवाँ
सार	-	मिलनसार
हा	-	चरवाहा, कटहा

५.२.२.४) हिन्दी - तद्धित :

हिन्दी के तद्धित रूप तद्भव तथा देशज शब्दों के अन्त में प्रत्यय जुड़कर भी बनते हैं।

भाववाचक तद्धित

आ - बोझा, चूरा

आई	-	ढिठाई, मिठाई, बुराई
आका	-	भड़का, धमाका, धड़ाका
आन	-	लम्बान, ऊँचान, चौड़ान, घमासान
आपा	-	मोटापा, बुढ़ापा, रँड़ापा
आयत	-	पंचायत, बहुतायत, लिंगायत, अपनायत
आस	-	मिठस, खटास
आवट	-	बुनावट, लिखावट
आहट	-	चिकनाहट, मर्मराहट, गरमाहट, कड़ुवाहट
इमा	-	कालिमा, लालिमा, महिमा
ई	-	गृहस्थी, बुद्धिमानी, सावधानी, खेती
औती	-	बुढ़ौती, बपौती
क	-	ठंडक, धड़क, कड़क, ठसक
त	-	चाहत, रंगत, संगत, मिल्लत
ता	-	सुन्दरता, महानता, समानता, एकता, प्रभुता
पन	-	बचपन, लड़कपन, बालपन, जंगलीपन

गुणवाचक तद्धित

आ	-	भूखा, प्यासा, प्यारा, मैला, झूठा
आऊ	-	अगाऊ, पंडिताऊ, घराऊ(घरू)
आरा(आड़ी)	-	हत्यारा, घसियारा, अनाड़ी, जुआड़ी(जुआरी)
आल	-	दयाल, कृपाल, खुशाल(खुशहाल), मजाल
इयल	-	दढ़ियल, तुँदियल,लठियल, मुटियल, चुटियल
ई	-	धनी, गुलाबी, नेपाली, घमंडी
ईला	-	खर्चीला, सुरीला, जहरीला, चमकीला
उआ	-	गेरूआ, टहलुआ, बाबुआ(बबुआ)
ऊ	-	घरू, बाजारू
एरा		बहुतेरा, घनेरा, सवेरा
ऐत	-	लठैत, दंगैत
ऐल	-	दुधैल, रखैल, खपरैल, दँतैल
ऐला	-	विषैला, कसैला, सौतेला, गुबरैला
ला	-	लाड़ला, पिछला, अगला, मँझला, साँवला
हरा	-	सुनहरा(सुनहला), रूपहरा(रूपहला)

ऊनवाचक तद्धित

इया	-	खटिया, अँबिया, बिटिया, गठरिया
ई	-	पहाड़ी, कटोरी, टुकड़ी
ओट	-	लंगोट, चमोटा
औटा	-	बिलौटा, हिरनौटा, पहिलौटा
औटी	-	सचौटी, अछरौटी
ई	-	पालकी, टिमकी
टा,टी	-	कलूटा, चोट्टा, वधूटी, बहूटी
ड़ा,ड़ी	-	बछड़ा, चमड़ा, अँतड़ी, टँगड़ी
री	-	छतरी, बाँसुरी, गठरी, कोठरी
ली	-	सुतली, मँझली, खुजली, लाड़ली
वा	-	बिटवा, बचवा, बछवा, बदरवा
सा	-	एक-सा, मरा-सा, थोड़ा-सा, काला-सा

कर्तृवाचक तद्धित

आर	-	सुनार, लुहार, कुम्हार
इया	-	रसोइया, गड़रिया, रसिया, ढोलिया
ई	-	तेली, माली, भंगी, धोबी
उआ	-	मछुआ, मनुआ, नउवा, टहलुआ
एड़ी	-	गँजेड़ी, भँगेड़ी
एरा	-	सँपेरा, कसेरा, चितेरा, मछेरा
वाल(वाला)	-	दिल्लीवाला, घरवाला, कोतवाल, गाड़ीवाला
हार,हारा	-	पनिहार, मनिहार, लकड़हारा, चुड़िहारा

स्थानवाचक तद्धित

आड़ी	-	अगाड़ी, पिछाड़ी
आना	-	राजपूताना, सिरहाना, घराना, पैताना
आल	-	ससुराल, ननिहाल, घड़ियाल, शिवाला
		(यह संस्कृत के 'आलय' का विकृत रूप हैं)
इया	-	कलकतिया, कनौजिया, बम्बइया, पुरविया
ई	-	इलाहाबादी, रूसी, चीनी, गढ़वाली
वाल	-	गढ़वाल, प्रयागवाल

		विविधार्थी तद्धित
आनी	-	जेठनी, देवरानी, नौकरानी, मेहतरानी
आला	-	पनाला, दिवाला
आसा	-	मुँहासा, मुँडासा
इन	-	साँपिन, लुहारिन, जुलाहिन, कहारिन
इया	-	अँगिया, अँखिया, हरिया, जिया
ई	-	पच्चीसी, बत्तीसी, शती, अंगूठी
ए	-	पीछे, सवेरे, बदले, आगे
एर,ऐरा	-	अँधेरा, ममेरा, मौसेरा
एल	-	नकेल, फुलेल
		(हाथ-हथेली शब्द भी इसी के अन्तर्गत आता है।)
औड़ा,औड़ी	-	हथौड़ा, बरसौड़ी
का	-	बड़का, छुटका, दुक्का, मटका
जा	-	अनुजा, शैलजा, तीजा, भतीजा
ती	-	कमती, घटती, मँगती, बढ़ती
नी	-	चाँदनी, घरनी, पैजनी, नथनी
ल	-	घायल, पायल
वाँ	-	पाँचवाँ, दसवाँ, सौवाँ, आठवाँ
सरा	-	दूसरा, तीसरा
हरा	-	इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले कईं ऐसे शब्द भी हैं जो दो प्रत्ययों से जुड़कर बने हैं। जैसे-

मूलशब्द	प्र० + प्र०	निर्मित शब्द
दया	लु + ता	दयालुता
साहस	इक + ता	साहसिकता
कुल	ईन + ता	कुलीनता
उत्तर	दायी + त्व	उत्तरदायित्व
सफल	ता + पूर्वक	सफलतापूर्वक
लोक	इक + ता	लौकिकता
भारत	ईय + ता	भारतीयता
आत्मा	ईय + ता	आत्मीयता

टिक	आऊ + पन	टिकाऊपन
रंग	ईन + ई	रंगीनी

५.२.२.५) उर्दू-प्रत्यय :

उर्दू में अधिकांश अरबी, फ़ारसी के शब्द ही उपयोग में आते हैं। अतः उर्दू के प्रत्यय इन्हीं दो भाषाओं के शब्दों के अन्त में जुड़ते हैं। उर्दू के प्रत्यय भी हिन्दी-संस्कृत की भाँति दो भागों(कृदन्त तथा तद्धित) में बाँटे गए हैं।

५.२.२.५.१) फ़ारसी कृदन्त :

अ(भाव०)	आमद बरदाश्त	खरीद
आ(कर्तृ०)	दान=दाना	रिह=रिहा
	मुकाबिल=मुकाबिला	मुआमल=मुआमला(मामला)
इंदा(कर्तृ०)	आ=आइंदा	पर=परिन्दा
	बाश=बाशिन्दा	जी=जिन्दा
ईश(भाव०)	कोश=कोशिश	ख्वाह=ख्वाहिश
	नाल=नालिश	परवर=परवरिश
ई(भाव०)	आमदन=आमदनी	रफ्तन=रफ्तनी

विशेष- वैसे उर्दू में अरबी-फ़ारसी के कृदन्त पर्याप्त मात्रा में है, किन्तु हिन्दी में उन सबका प्रयोग नहीं होता। अतः यहाँ वही शब्द दिए गए हैं, जिनका हिन्दी में आजकल प्रचलन है।

५.२.२.५.२) फ़ारसी - तद्धित :

अंदाज(सं०,वि०)	तीर=तीरंदाज	गोला=गोलंदाज
	दस्त=दस्तंदाज	बर्क=बर्कंदाज

आ(भाव०)	गरम=गरमा	खराब=खराबा
आबाद(बसा हुआ,स्थान०)	हैदर=हैदराबाद	इलाही=इलाहाबाद
आनह(आना,वि०)	जुर्म=जुर्माना	रोज़=रोज़ाना
आनी	जिस्म=जिस्मानी	रूह=रूहानी
आवर(वि०)	जोर=जोरावर बख्त=बख्तावर	दिलावर दस्तावर
इंदा(वि०)	कार=कारिन्दा	शर्म=शर्मिन्दा
इयत	इन्सान=इन्सानियत	खास=खासियत
इस्तान,स्तान (स्थान०)	कब्र=कब्रिस्तान	हिन्दुस्तान

('इस्तान' या 'स्तान' संस्कृत के स्थान शब्द के समानार्थी है।)

ई(भाव०)	नेक=नेकी		रहमदिल=रहमदिली	
ई(वि०)	ईरानी	खूनी	ख़ाकी	आसमानी
ईन(वि०)	नमक=नमकीन		शौक=शौकीन	
ईना	कम=कमीना		माह=महीना	
कार(कर्तृ०)	पेश=पेशकार		सलाह=सलाहकार	
खाना(स्थान०)	कैद=कैदखाना		पागल=पागलखाना	
खोर(खानेवाला)	चुगली=चुगलखोर		सूद=सूदखोर	

गर(वाला,कर्तृ०)	सौदा=सौदागर	कार=कारगर, कारीगर
गार(वाला,कर्तृ०)	मदद=मददगार	याद=यादगार
गाह(स्थान०)	ईद=ईदगाह	बन्दरगाह
गी	बन्दह=बन्दगी	जिंदह=जिंदगी
गीर(पकड़नेवाला)	जहांगीर	राह=राहगीर
चा,इचा(ऊन०)	देग=देगचा	चम=चमचा
	गाली(कालीन)=गलीचा	बाग=बगीचा
ची	तबला=तबलची	मशाल=मशालची
	तोप=तोपची	बावर=बावर्ची
जादह(ज़ादा)	शाह=शाहज़ादा	पीर=पीरज़ादा
त	हुकुम=हुकूमत	रहीम=रहमत
दान(पात्रवाचक)	पान=पानदान	इत्र=इत्रदान
	खान=खानदान	उगाल=उगालदान

(इसमें 'ई' स्त्री प्रत्यय लगाकर 'दानी' हो जाता है। जैसे- गोंददानी, चायदानी, मच्छरदानी, खानदानी)

दार(रखनेवाला)	जमीं=जमींदार	रिश्ता=रिश्तेदार
नशीन(बैठनेवाला)	तख्त=तख्तनशीन	परदा=परदानशीन
नाक(वाला,वि०)	खौफ़=खौफ़नाक	शर्म=शर्मनाक
नामा(चिट्ठी)	वसीयत=वसीयतनामा	इक़रार=इक़रारनामा

बंद(बाँधनेवाला)	क़मर=कमरबंद	दस्त(हाथ)=दस्तबंद
बाज(वाला)	दग़ा=दग़ाबाज़	चाल=चालबाज़
बान(वाला,कर्तृ०)	बाग़=बाग़बान	दर=दरबान
बीन(देखनेवाला)	तमाशा=तमाशबीन	दूर=दूरबीन
मंद(वाला)	अक्ल=अक्लमंद	दानिश=दानिशमंद
वर(वाला)	नाम=नामवर	हिम्मत=हिम्मतवर
वार	उम्मीद=उम्मीदवार	माह=माहवार
साज(बजानेवाला)	जाल=जालसाज	रंग=रंगसाज
अह,ह(विविधार्थक)	रोज=रोजह,रोजा	पेश=पेशह, पेशा
	चश्म=चश्मह,चश्मा	पुश्त=पुश्तह,पुश्ता

(हिन्दी में 'ह' के स्थान में 'आ' हो जाता है; जैस- हफ्ता, पेशा)

इनके साथ कुछ प्रत्यय और भी हैं, जिनसे बने शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं।

आब	-	गुलाब, शराब
आवेज	-	दस्तावेज़
क(ऊन०)	-	तुपक(तोप)
कुन	-	कारकुन
ज़ार	-	बाज़ार, गुलज़ार
ती	-	ज़्यादती
नवीस	-	अर्जीनवीस
नुमा	-	कुतुबनुमा, किश्तीनुमा
पोश	-	सफ़ेदपोश, पापोश
बर	-	पैगम्बर, दिलबर
म	-	बेग़म, ख़ानम

माल	-	रूमाल
शन	-	गुलशन
सार	-	ख़ाकसार, शर्मसार

५.२.२.५.३) अरबी - कृदन्त :

अरबी के प्राय: सभी शब्द किसी न किसी धातु से बने हुए होते हैं और अधिकांश धातु त्रिवर्ण रहते हैं। कुछ धातु चार वर्णों के और कुछ पाँच वर्णों के भी रहते हैं। धातुओं के अक्षरों के मान(वजन) के अक्षर सब कृदंतों में पाए जाते हैं और वे 'मूलाधार' कहलाते हैं। इन मूलाक्षरों के सिवा कुछ और भी अक्षर कृदंतों की रचना में प्रयुक्त होते हैं जिन्हें 'अधिकाक्षर' कहते हैं। ये अधिकाक्षर सात हैं- क्, त्, स्, म्, न्, ऊ, य् और इन्हें स्मरण रखने के लिए इनसे 'कतसमनूय' शब्द बना लिया गया है। एक धातु से बने हुए सभी कृदंत हिन्दी में नहीं आते, और जो आते हैं, उनमें भी बहुधा उच्चारण की सुगमता के लिए रूपांतर कर लिया जाता है। धातु के मूलरूप से कईं एक क्रियार्थक संज्ञाएँ बनती हैं। इनमें जो हिन्दी में प्रचलित हैं, उनके वजन और उदाहरण नीचे दिए गए हैं-

वजन		उदाहरण	वजन		उदाहरण
फ़अल	-	कत्ल	फ़आल	-	सलाम
फ़िअल	-	इल्म	फ़आल	-	कियाम(ठहरना)
फ़ुअल	-	हुक्म	फ़ुआल	-	सवाल
फ़अल	-	तलब	फ़ँऊल	-	कबूल
फ़अलत	-	रहमत	फ़ऊल	-	जहूर(रूप)
फ़िअलत	-	खिदमत	फ़अलान	-	दवरान(संचार)
फ़ुअलत	-	कुद्रत	फ़आलत	-	बगावत
फ़अलत	-	हरकत	फ़िआलत	-	किताबत
फ़इलत	-	सरिका(बोरी)	फ़ऊलत	-	ज़रूरत
फ़अला	-	दअवा(दावा)	मफ़अलत	-	मर्हमत(दया)
तफ्ईल	-	तालीम	मुफ़ाअलत	-	मुकाबला
इफ़्आल	-	इन्कार	तफ़उउल	-	तअल्लुक
इफ़्तिआल	-	इम्तिहान	इस्तिफ़आल	-	इस्तिमाल

दूसरे मुख्य व्युत्पन्न शब्द कृदन्त विशेषण हैं-

फ़ाइल(कर्तृ० संज्ञा)	-	आलिम, हाकिम(अधिकारी), गाफ़िल
मफ़ऊल(कर्मवाच्य)	-	मअलूम, मंज़ूर, मशहूर
फ़ईल(गुण०)	-	हकीम(साधु,वैद्य), रहीम

(उपर्युक्त तीनों शब्द संज्ञा के समान प्रयुक्त होते हैं।)

फऊल	-	गफ़ूर(अधिक क्षमाशील), ज़रूर
अफ़अल(उत्कर्ष०वि०)	-	अक़बर(बहुत बड़ा), अहमद(परम प्रशंसनीय)
फ़अआल(कर्तृ० संज्ञा)	-	जल्लाद, सर्राफ़(ससफ़-बदलना, हि०-सराफ), बज्जाज(हि०-बजाज), बक्काल

इनके अलावा स्थानवाचक और कालवाचक संज्ञाएँ मफ्अल या मुफइल के वजन से बनती हैं और उनके आदि 'म' अवश्य आता है- मज़लिस, मसज़िद, मंज़िल। स्थानवाचक संज्ञाओं में कभी-कभी 'ह' जोड़ दिया जाता है; जैसे- मकबरह, मद्रसह।

५.२.२.५.४) <u>अरबी - तद्धित</u> :

आनी(वि०वाचक)	-	जिस्मानी, रूहानी
इयत(भाव०)	-	इंसानियत, कैफ़ियत
ई(गुण०)	-	इल्मी, अरबी, ईसवी, इंसानू
ची(व्यापार०)	-	मशअलची(मशालची), तबलची, खजानची, बावरची
म(तुर्की प्र०,स्त्री०)	-	बेग़म, खानम

अरबी में समास के लिए दो संज्ञाओं के बीच में उल्(का) संबंधसूचक रख देते हैं और भेद्य को भेदक के पहले लाते हैं; जैसे-

जलाल(प्रभुत्व) + उल् + दीन(धर्म) = जलालुद्दीन(धर्मप्रभुत्व)।

इस उदाहरण में 'उल्' का अंत्य 'ल्' अरबी भाषा की संधि के अनुसार 'द्' होकर 'दीन' के आद्य 'द' में मिल गया है। इसी तरह-

दार(घर)+उल् + सल्तनत(राज्य) = दारुस्सल्तनत(राजधानी)

हबीब(मित्र) + उल् + अल्लाह(ईश्वर) = हबीबुल्लाह(ईश्वर-मित्र)

'वलद'(पुत्र) दो हिन्दी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के बीच में पिता पुत्र का संबंध बनाने के लिए आता है; जैसे- मोहन वलद सोहन(सोहन का पुत्र मोहन)। यहा कानूनी हिन्दी का एक उदाहरण है।

५.२.३) उपसर्ग :

'उप' का अर्थ है- "एक उपसर्ग जो शब्दों के आगे लग कर उनमें समीपता, सादृश्य, सामर्त्य, व्याप्ति, शक्ति, पूजा, मारण तथा उद्योग के अर्थों को प्रकाशित करता है।"[२७] 'सर्ग' का अर्थ है - "आगे की ओर बढ़ना या गमन"।[२८] उदाहरण के लिए- 'गमन' शब्द का अर्थ है 'जाना'। यदि इसके आदि में 'आ' लगा दें तो 'आगमन' का अर्थ हो जाएगा 'आना', जो मूल शब्द 'गमन' के अर्थ से बिलकुल विपरीत है। अतः शब्द के पूर्व जो अक्षर या अक्षरसमूह लगाया जाता है, उसे 'उपसर्ग' कहते हैं। संस्कृत ग्रंथ में उपसर्ग के बारे में यह कहा गया है-

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।।[२९]

डॉ.बाबूराम सक्सेना उपसर्ग की विशेषता बताते हुए यही बात अपने शब्दों में कहते हैं कि "केवल उपसर्ग ही धातु के अर्थ में कुछ विकृति उत्पन्न कर देता है और उस दशा में वह धातु के अनुसार ही विकार प्राप्त करता है।"[३०]

उपसर्ग शब्द के अर्थ निर्माण में सहायक अंश होता है। उपसर्ग को 'पूर्व प्रत्यय' भी कहा जाता है। यह भाषा में स्वन्त्र रूप से नहीं प्रयुक्त होता है लेकिन किसी शब्द के पूर्व जुड़कर विशेषार्थ लाता है।

उपसर्ग के प्रयोग से धातु के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। हिन्दी में मुख्यतः चार वर्ग के उपसर्ग प्राप्त होते हैं- संस्कृत उपसर्ग, हिन्दी उपसर्ग, उर्दू उपसर्ग, अंग्रज़ी उपसर्ग। उदयनारायण तिवारी ने इन चार वर्गों के दो ही वर्ग किए हैं- स्वदेशी उपसर्ग और विदेशी उपसर्ग।[३१] इनकी संख्या भी उन्होंने बहुत कम बताई है।

५.२.३.१) संस्कृत-उपसर्ग :

उप०	अर्थ	उदाहरण
अति	अधिक	अतिशय, अतिरिक्त. अत्यन्त, अत्याचार।
अधि	श्रेष्ठ,ऊपर	अधिपति, अधिकार, अध्यक्ष, अध्यात्म।
अनु	पीछे	अनुकरण, अनुचर, अनुज, अनुवाद।
अप	बुरा,हीन	अपमान, अपकार, अपहरण, अपकीर्ति।
अभि	सामने,ओर,पास	अभिमान, अभिलाषा, अभिप्राय, अभीष्ट।
अव	बुरा,नीचे,हीन	अवगुण, अवनति, अवज्ञा, अवकाश।
आ	तक, समेत	आजन्म, आक्रमण, आमरण।
उत्	ऊपर,ऊँचा,अधिक	उत्कर्ष, उत्थान, उत्पत्ति, उत्सर्ग।
उप	समीप,गौण	उपकार, उपयोग, उपमंत्री, उपवन।
दुर्	बुरा, कठिन	दुर्जन, दुराचार, दुर्दशा, दुर्लभ।
दुस्	बुरा, कठिन	दुश्चरित्र, दुष्कर्म, दुस्तर।
नि	नीचे,अभाव,भीतर	निवारण, निदान, नियुक्त, निषेध।
निर्	बिना,रहित	निराकार, निर्दय, निरपराध, निर्मल।
परा	निषेध,रहित	निश्चल, निष्काम, निस्सार।
परा	पीछे,उलटा	पराजय, पराक्रम, परामर्श, पराकाष्ठा।
परि	आसपास,चारों-ओर	परिक्रमा, परिणाम, परिचय।
प्र	अधिक, आगे	प्रचार, प्रमाण, प्रख्यात।
प्रति	विरूद्ध,प्रत्येक	प्रतिकुल, प्रतिध्वनि, प्रत्युपकार।
वि	विशेष,भिन्न,अभाव	विज्ञान, विधवा, विवाद।
सम्	अच्छा,साथ,पूर्ण	सम्मति, संयोग, संगम।
सु	अच्छा,सहज	सुपुत्र, सुलभ, सुशिक्षित।

विशेष- अ) कभी-कभी एक ही शब्द के साथ दो या तीन उप० भी जोड़े जाते हैं। जैसे-

उप०	मूलशब्द	उदाहरण
निर्+अभि	मान	निरभिमान
निर्+आ	करम	निराकरण
प्रति+उप	कार	प्रत्युपकार
वि+आ	करण	व्याकरण
सम्+आ	लोचना	समालोचना
सु+सम्	गठित	सुसंगठित

दुर्+वि+अव	हार	दुर्व्यवहार
सु+वि+अव	स्थित	सुव्यवस्थित।

आ) सं० के कुछ विशेषण तथा अव्यय भी उप० के समान प्रयोग में आते हैं-

उप०	अर्थ	उदाहरण
अ	अभाव, निषेध	अज्ञान, अन्याय, अलौकिक।
अधस्	नीचे	अधपतन, अधोगति, अधोमुख।
अन्तर्	भीतर	अन्तःकरण, अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्द्वन्द्व।
अन्	अभाव, निषेध	अनन्त, अनादि, अनावश्यक।
अलम्	सुन्दर	अलंकार, अलंकृत, अलंकृति।

(यह सदैव 'कृ' धातु से पूर्व ही जुड़ता है।)

आवि	प्रकट, बाहर	आविर्भाव, आविर्भूत, आविष्कार।
का,कु,कद	बुरा	कापुरुष, कुकर्म, कदाचार।
चिर	बहुत	चिरायु, चिरंजीव, चिरस्थायी।
तिरस्	तुच्छ,अदृश्य होना	तिरस्कार, तिरोभाव, तिरोहित।
न	अभाव	नास्तिक, नगण्य, नपुंसक।
पुनर्	फिर	पुनर्जन्म, पुनरागमन, पुनरुक्ति।
पुरस्	सामने, आगे	पुरस्कार, पुरोहित, पुरश्चरण।
पुरा	पहले का	पुरातन, पुराण, पुरावृत्त।
प्रदुर्	प्रकट	प्रादुर्भव, प्रादुर्भूत।
बहिर्(बहिस्)	बाहर	बहिर्गमन, बहिर्द्वार, बहिष्कार।
स	सहित	सजीव, सविनय, सावधान।
सत्	अच्छा	सत्कार, सदाचार, सज्जन।
सह	साथ	सहोदर, सहपाठी, सहानुभूति।
स्व	अपना	स्वजन, स्वतन्त्र, स्वराज्य।

अन्य कुछ संस्कृत विशेषण या अव्यय हैं, जो उपसर्ग के रूप में प्रयुक्त होते हैं-

अमा	अमावास्या, अमात्य
इति	इतिवृत्त, इतिहास
नाना	नाना रूप, नाना जाति
प्राक्	प्राक्कथन, प्राक्कर्म

प्रातः	प्रातःकाल, प्रातःस्मरणीय

५.२.३.२) हिन्दी - उपसर्ग :

हिन्दी-उपसर्ग प्रायः संस्कृत उपसर्गों के ही विकृत रूप हैं और विशेषकर तद्भव एवं देशज शब्दों के साथ प्रयोग में आते हैं।

उप०	अर्थ	उदाहरण
अ	अभाव,निषेध	अशांत, अथाह, अजान, अछूता।
अध(सं० अर्द्ध)	आधा	अधकचरा, अधमरा, अधखिला, अधूरा।
अन	अभाव,निषेध	अनजान, अनपढ़, अनहोनी, अनबन।
उन(सं० ऊन)	एक कम	उन्नीस, उन्तीस, उनसठ, उनहत्तर।
औ(सं० अव)	हीन,निषेध	औगुन, औघट, औसर, औसान।
कु(क)	बुरा	कुठौर, कुदिन, कुलच्छनी, कपूत।
चौ	चार	चौपाई, चौराहा, चौमासा, चौकन्ना।
ति	तीन	तिकोना, तिराहा, तिमाही, तिपाई।
दु(सं० दुर्,दुस्)	बुरा, हीन	दुबला, दुमुँही, दुभाषिया, दुसूती।
नि(सं० निर्, निस्)	बिना, रहित	निकम्मा, निडर, निधड़क, निहत्था।
पर	दूसरा,बाद का	परलोक,परोपकार, पर-पुरुष, परहित।
बिन	बिना,निषेध	बिनब्याहा, बिनबोया, बिनबादल।
भर	पूरा,ठीक	भरपूर, भरपेट, भरसक।
सु(स)	अच्छा	सुजान, सुडौल, सुगन्ध, सपूत।

विशेष- हिन्दी में अति और इति स्वतंत्र शब्द के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं।

५.२.३.३) उर्दू - उपसर्ग :

उर्दू-उपसर्ग अरबी-फ़ारसी के उपसर्ग हैं जो इन्हीं भाषाओं के शब्दों के साथ जुड़ते हैं।

उप०	अर्थ	उदाहरण
अल	निश्चित	अलबत्ता, अलबेला, अलमस्त।
ऐन	ठीक, पूरा	ऐनवक्त, ऐनमौका, ऐनजवानी।
कम	थोड़ा, हीन	कमज़ोर, कम्बख्त, कमउम्र, कमअक्ल।

खुश	अच्छा	खुशकिस्मत, खुशखबरी, खुशबू।
गैर	बिना,भिन्न,अनुचित	गैरहाज़िर, गैरवाजिब, गैरमुमकिन, गैरमुल्क।
दर	में	दरअसल, दरखास्त, दरम्यान, दरबार।
ना	नहीं,अभाव	नादान, नालायाक, नाबालिग, नापसन्द।
ब	सहित, में अनुसार	बखूबी, बदौलत, बदस्तूर, बनिस्बत।
बद	बुरा,भद्दा	बदनाम, बदबू, बदकिस्मत, बदचलन।
बर	ऊपर, पर	बराबर, बरख़ास्त, बरदाश्त, बरकरार।
बिला	बिना	बिलानागा, बिलाशक, बाइज्ज़त।
बे	बिना	बेईमान, बेकसूर, बेचैन, बेरहम, बेवकूफ़।
ला	अभाव	लाइलाज, लाजवाब, लावारिस, लापरवाह।
सर	मुख्य	सरकार, सरताज, सरदार, सरहद, सरपंच।
हम	साथ, समान	हमराही, हमवतन, हमदर्द, हमसाया।
हर	प्रत्येक	हरतरह, हररोज़, हरचीज़, हरघड़ी।

इनकी अतिरिक्त फी (फीसदी, फिलहाल, फीआदमी) तथा बिल (बिलकुल) आदि कुछ उर्दू-उपसर्ग और भी हैं।

५.२.३.४) अंग्रज़ी-उपसर्ग :

भाषा प्रवाहमयी नदी के समान है, जो सब ओर से अपना परिवार बढ़ाती रहती है। क्योंकि अंग्रेज़ी भारतीय-जीवन में अपना एक स्थान बनाए हुए है, अतः कुछ अंग्रेज़ी-उपसर्ग भी आज हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु वे जड़ते अंग्रेज़ी से आगत शब्दों में ही हैं। जैसे-

उप०	अर्थ	उदाहरण
सब	अधीन,नीचे	सब-जज, सब-कमेटी, सब-इंस्पेक्टर।
डिप्टी	सहायक	डिप्टी रजिस्ट्रार, डिप्टी मिनिस्टर, डिप्टी कलेक्टर।
वायस	सहायक	वायसराय, वायस-चांसलर, वायस-प्रेसीडेण्ट।
जनरल	प्रधान	जनरल मैनेजर, जनरल सैक्रेटरी।
चीफ़	प्रमुख	चीफ मिनिस्टर, चीफ सैक्रेटरी, चीफ़ इंजीनियर।

हिन्दी में प्रयोग हो रहे कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनके आदि में उपसर्ग तथा अन्त में प्रत्यय दोनों जुड़ते हैं; यथा-

उपसर्ग	मूलशब्द	प्रत्यय	निर्मित शब्द
निर्	आश्रय	इत	निराश्रित
सु	गंध	इत	सुगंधित
उप	योग	इता	उपयोगिता
स	फल	ता	सफलता
अ	पठन	ईय	अपठनीय
ना	पसंद	गी	नापसंदगी
बा	क़ायदा	गी	बाक़ायदगी
कम	ज़ोर	ई	कमज़ोरी
सम्	गठन	इत	संगठित
वि+अव	हार	इक+ता	व्यावहारिकता

५.२.४) **सार्वनामिक व्यवस्था :**

हिन्दी के प्राय: सभी वैयाकरण सर्वनाम को संज्ञा का एक भेद मानते हैं। संस्कृत में सर्व(प्रातिपादिक) के समान जिन नामों(संज्ञाओं) का रूपांतर होता है, उनका एक अलग वर्ग मानकर उसका नाम सर्वनाम रखा गया है। सर्वनाम शब्द एक और अर्थ में भी आ सकता है। वह यह है कि सर्व (सब) नामों (संज्ञाओं) के बदले में जो शब्द आता है, उसे सर्वनाम कहते हैं। हिन्दी में सर्वनाम शब्द से यही(पिछला) अर्थ लिया जाता है और इसी के अनुसार वैयाकरण सर्वनाम को संज्ञा का भेद मानते हैं। अत: सर्वनाम उस विकारी शब्द को कहते हैं जो पूर्वापर संबंध से किसी भी संज्ञा के बदले में आता है। संज्ञा केवल उसी वस्तु का बोध कराती है जिसका वह नाम है, परन्तु सर्वनाम एक तक ही सीमित न रहकर सबका नाम बताते हैं।

पं०कामता प्रसाद गुरु ने हिन्दी में ११ सर्वनाम की बात कही है- मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या।[३२] उन्होंने प्रयोग के आधार पर सर्वनामों के छह भेद बताए हैं-

पुरुषवाचक - मैं, तू, आप(आदरसूचक)।
निजवाचक - आप।
निश्चयवाचक - यह, वह, सो।

संबंधवाचक - जो।
प्रश्नवाचक - कौन, क्या।
अनिश्चयवाचक - कोई, कुछ।

परन्तु डॉ.धीरेन्द्र वर्मा ने इनके आठ गिनाए हैं, जिनमें आदरसूचक(आप), नित्यवाचक(सो) को पंक्ति में रखते हैं। डॉ.हरदेव बाहरी ने केवल चार - पुरुषवाचक, संबंधवाची, नित्यसम्बन्धी, प्रश्नवाची - सर्वनामों की ही चर्चा की है।[३३] जबकि डॉ.उदयनारायण तिवारी ने नौ भेद बताए हैं।[३४]

५.२.४.१) सर्वनाम की व्यवस्था व रूप-रचना :

हिन्दी सर्वनामों में संस्कृत(पु० सः, स्त्री० सा) और अंग्रज़ी(he, she) की भाँति लिंग-भेद नहीं होता। अपवादस्वरूप संबंध के रूपों उसका-उसकी, मेरा-मेरी, तुम्हारा-तुम्हारी और अपना-अपनी में लिंग-भेद है, अन्यथा सर्वनामों के लिंग का बोध क्रियापद से होता है; मैं जाता हूँ(पुं०), मैं जाती हूँ(स्त्री०)।

सर्वनामों की रूप-रचना पुरुष, वचन और कारक के आधार पर होती है। पुरुष का अर्थ है 'व्यक्ति'। वार्तालाप में साधारणतया तीन व्यक्ति होते हैं- उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष।

उत्तमपुरुष	मध्यमपुरुष	अन्यपुरुष
मैं	तू/तुम/आप	यह,वह,कौन,क्या,कोई

विभिन्न पुरुषों में सर्वनामवाची पृथक-पृथक शब्द होते हैं, इसलिए पुरुष तत्त्वत रूप-रचना का आधार नहीं है। हाँ, क्रिया की रूप-रचना में पुरुष व्याकरणिक कोटि है। इस प्रकार सर्वनामों की रूप-रचना के दो आधार ठहरते हैं- वचन और कारक।

वाक्यगत सर्वनाम जिस संज्ञारूप के बदले प्रयुक्त हुआ रहता है उसी के अनुसार सर्वनाम का वचन भी होता है। सर्वनाम के वचन के अनुसार क्रियापद का भी वचन रखा जाता है। आदरार्थ आप एक० होते हुए भी बहु० में प्रयुक्त होता है और उसके साथ क्रिया भी बहु० की प्रयुक्त होती है। वचन के अनुसार अलग-अलग रूप-भेद उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष

और निश्चयवाचक सर्वनामों में ही मिलते हैं। शेष प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक और सम्बंधवाचक सर्वनामों का एक० रूप ही बहु० में भी व्यवहृत होता है। आदरसूचक 'आप' तथा निजवाचक 'आप' भी अविकृत रहते हैं।

संज्ञा की भाँति सर्वनाम में भी दो कारक(रूप) मिलते हैं- मूलरूप और विकृतरूप।

५.२.४.१.१) पुरुषवाचक मैं,तू -

इस सर्वनाम के हिन्दी के केवल उत्तम तथा मध्यम पुरुष के रूप मिलते हैं। अन्यपुरुष में दूरवर्ती निश्चयवाची सर्वनाम के रूप ही प्रयुक्त होते हैं।

उ०पु० 'मैं'

उ०पु०	एक०	बहु०
मूलरूप	मैं	हम
कर्म-सम्प्र०	मुझे	हमें(हम को)
विकृतरूप	मुझ	हम
संबंधकारक(पु०)	मेरा	हमारा
सम्बंधकारक(स्त्री०)	मेरी	हमारी

निम्नलिखित वाक्यों में 'मैं' का रूपांतर देखा जा सकता है-

मैं पढ़ता हूँ। हम पढ़ते हैं।
मैंने पुस्तक पढ़ी। हमने पुस्तक पढ़ी।
मुझे पुस्तक दो। हमें पुस्तक दो।
मुझको पुस्तक दो। हमको पुस्तक दो।
मुझसे उसकी मुलाकात नहीं हुई। हमसे उसकी मुलाकात नहीं हुई।
मेरे लिए पुस्तक लाओ। हमारे लिए पुस्तक लाओ।
मुझसे वह डरता है। हमसे वह डरता है।
मेरी पुस्तक फट गई। हमारी पुस्तक फट गई।
मुझमें कई गुण हैं। हममें कई गुण हैं।

'मैं' सर्वनाम के ये रूपान्तर- हम, मैंने, हमने, मुझे, हमें, मुझको, हमको, मुझसे, हमने, मेरे लिए, हमारे लिए, मेरी, हमारी, मुझमें और हममें- वचन और कारक के आधार पर

होते हैं।

म०पु० 'तू'

म०पु०	एक०	बहु०
मूलरूप	तू	तुम
कर्म-संप्रदान	तुझे	तुम्हें
विकृतरूप	तुझ	तुम्ह, तुम
संबंधकारक(पु०)	तेरा	तुम्हारा
संबंधकारक(स्त्री०)	तेरी	तुम्हारी

मध्यम पुरुष में 'तू' का प्रयोग अत्यधिक प्यास, घृणा या अनादर के लिए होता है। 'तुम' का प्रयोग, जो मूलत बहु० है, व्यवहार में एक० के रूप में होता है। बहु० में 'तुम लोग' का प्रयोग होता है।

आदर के लिए 'तुम' के स्थान पर 'आप' का प्रयोग होता है। आप के साथ बहु० की क्रिया प्रयुक्त होती है।

५.२.४.१.२) निश्चयवाचक 'यह', 'वह'-

इसके सर्वनामों के दोनों वचनों की कारकरचना में विकृतरूप आता है। एक० में 'यह' का विकृतरूप 'इस', 'वह' का 'उस' और 'सो' का का 'तिस' होता है और बहु० में क्रमशः 'इन', 'उन' और 'तिन' आते हैं। इनके विभक्तिसहित बहु० कर्ता के अंत्य 'न' में विकल्प से 'हों' जोड़ा जाता है, और कर्म तथा संप्रदान कारकों के बहु० 'ए' के पहले 'न' में 'ह' मिलाया जाता है।

निकटवर्ती 'यह'

हिन्दी में अन्यपुरुष का काम निश्चयवाचक सर्वनामों से लिया जाता है। हिन्दी में निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'यह' के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं-

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	यह	यह, ये
	इसने	इनने, इन्होंने
कर्म-संप्रदान	इसको, इसे	इनको, इन्हें
करण-अपादान	इससे	इनसे

संबंध	इसका-के-की	इनका-के-की
अधिकरण	इसमें	इनमें

	दूरवर्ती 'वह'	
कर्ता	वह	वह, वे
	उसने	उनने, उन्होंने
कर्म-संप्रदान	उसको, उसे	उनको, उन्हें

(शेष कारक यह के अनुसार विभक्तियाँ लगाने से बनते हैं)

५.२.४.१.३) नित्यसंबंधी 'सो'-

हिन्दी में सो व्यवहार साहित्यिक हिन्दी में कम होता है। इसके स्थान पर प्राय दूरवर्ती निश्चचवाचक सर्वनाम व्यवहृत होने लगा है।

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	सो	सो
	तिसने	तिनने, तिन्होंने
कर्म-संप्रदान	तिसको, तिसे	तिनको, तिन्हें

(शेष रूप वह के अनुसार विभक्तियाँ लगने से बनती हैं।)

डॉ०धीरेन्द्र वर्मा 'सो' के बारे में कहना है कि - "पुरानी हिन्दी तथा बोलियों में 'सो' का प्रयोग अन्यपुरुष के अर्थ में बराबर मिलता है।"[३५] 'सो' सदा 'जो' के साथ आता है; जैसे- जो कठिनाई थी सो दूर हो गई है। 'सो' के स्थान पर वह का भी प्रयोग होता है।

निश्चयवाचक सर्वनामों के रूपों में अवधारण के लिए एक० 'ई' और बहु० में ही अंत्य स्वर में आदेश करते हैं; जैसे- यह-यही, वह-वही, इन-इन्हीं से, उन्हीं को, सोई इत्यादि।

५.२.४.१.४) संबंधवाचक 'जो'-

'जो' और प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कौन' के रूप निश्चयवाचक सर्वनाम के अनुसार बनते हैं। 'जो' के विकृत रूप दोनों वचनों में क्रमशः 'जिस' और 'जिन' हैं तथा 'कौन'

के 'किस' और 'किन' हैं।

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	जो	जो
	जिसने	जिनने, जिन्होंने, जिन लोगों ने
कर्म-संप्रदान	जिसको, जिसे	जिनको, जिन्हें, जिन लोगों को
करण	जिससे, जिसके द्वारा	जिनसे, जिनके द्वारा, जिन लोगों से

५.२.४.१.५) प्रश्नवाचक 'कौन' -

कारक	एक०	बहु०
कर्ता	कौन, किसने	कौन लोग, किन्होंने, जिन लोगों ने
कर्म-संप्रदान	किसे, किसको	किन्हें, किनको, किन लोगों को
करण	किससे, किसके द्वारा	किनसे, किनके द्वारा, किन लोगों से

यह, वह, सो, जो और कौन के विभक्तिसहित कर्ता कारक के बहु० में दो-दो रूप हैं, उनमें से दूसरा रूप अधिक शिष्ट समझा जाता है; जैसे- उनने, उन्होंने।

प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क्या' की कारकरचना नहीं होती। यह शब्द इसी रूप में केवल एक०(विभक्तिरहित) कर्ता और कर्म में आता है; जैसे- 'क्या गिरा'?, 'वह क्या कर रहा है'?

५.२.४.१.६) अनिश्चयवाचक 'कोई'-

ये सर्वनाम प्रश्नवाचक सर्वनाम से बना है, जैसे- सं०-कोपि, प्रा०-कोबि, हिं०-कोई। इसका विकृत रूप 'किस' में अवधारणबोधक 'ई' प्रत्यय लगाने बना है। 'कोई' की कारकरचना केवल एक० में होती है, परंतु इसके रूपों की द्विरुक्ति से बहु० का बोध होता है। दीमशित्स ने इसका बहु० का रूप 'किन्हीं' दिया है; जैसे- 'किसी पुस्तक में', 'किन्हीं पुस्तकों में।'[३६] कर्म और संप्रदान कारकों में इसका एकारांत रूप नहीं होता, जैसा दूसरे सर्वनामों का होता है।

कारक	एक०
कर्ता	कोई
	किसी ने
कर्म-संप्रदान	किसी को

परिवर्तन के अर्थ में 'कोई' के अविकृत रूप के साथ संबंध कारक की विभक्ति आती है, जैसे- 'कोई का कोई राजा बन गया।' अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कुछ' की कारकरचना नहीं होती। 'क्या' के समान यह केवल विभक्तिरहित कर्ता और कर्म के एक० में आता है; जैसे- 'वहाँ कुछ है', 'पानी में कुछ है', 'बच्चे ने कुछ फेंका है।' 'कुछ का कुछ' वाक्यांश में संबंधकारक की विभक्ति आती है। संज्ञा के समान प्रयुक्त होने पर यह संबोधन कारक को छोड़ बाकि कारकों के बहु० में आता है- 'कुछ ऐसे हैं।'

५.२.४.१.७) निजवाचक 'आप'-

व्युत्पत्ति की दृष्टि से आदरवाचक 'आप' और निजवाचक 'आप' एक ही शब्द हैं। परंतु आदरसूचक 'आप' का प्रयोग केवल अन्य पुरुष के बहु० में होता है। इसलिए बहुत्व का बोध होने के लिए इसके साथ 'लोग' या 'सब' लगा देते हैं। इसके साथ ने विभक्ति आती है और संबंधकारक में का, के, की विभक्तियाँ लगाई जाती हैं। आदरसूचक तथा निजवाचक 'आप' मूल और तिर्यक् में समान रहते हैं। संज्ञा या सर्वनाम के पश्चात् निजवाचक 'आप' 'अपना/ने/नी' रूप ले लेता है- 'राम ने अपना काम किया', 'मैंने अपनी पुस्तक पढ़ी।' वाक्यांश में कभी-कभी बल देने के लिए पुनः निजवाचक आप का प्रयोग होता है- 'मैं अपने आप खाऊँगी।'

निजवाचक 'आप'

कारक	एक०,बहु०	प्रयोग
कर्ता	आप,अपने आप	मैं आप अपने आप चला जाऊँगा।
		वे लोग आपअपने आप चले जाएँगे।
कर्म-संप्रदान	अपने को,	वह अपने आपको पुलिस के हवाले कर देगा।
	आपको	वे सभी अपने आपको उनके हवाले कर देंगे।
करण	आपसे,अपने से	राम ने अपने आप से तैयारी कर ली।
	अपने आप से,	

संप्रदान	अपने लिए	वह स्वयं अपने लिए कुछ नहीं रखता।
अपादान	आपसे,अपने से, अपने आपको, अपने लिए, अपने आपसे	तुम उसे अपने से दूर मत करो।
संबंध	अपना,अपने,अपनी	मैंने अपना काम कर लिया। हम ने अपनी पुस्तक ले ली। उसने अपना काम कर लिया। उन्होंने अपना काम कर लिया।
अधिकरण	आपमें,अपने में, आपस	तुम लोग अपने में ही क्यों लड़ रहे हो? ये लोग आपस में क्यों लड़ रहे हो?

आदरसूचक 'आप'

कारक	एक०(आदर०)	बहु०(संख्या०)
कर्ता	आप	आप लोग
	आपने	आप लोगों ने
कर्म-संप्रदान	आपको	आप लोगों को
संबंध	आपका,के,की	आप लोगों का,के,की

(इसके शेष रूप विभक्तियों के योग से इसी प्रकार बनते हैं।)

इस पूरे विवेचन के बाद वचन और कारक के रूप-भेद को स्पष्टतः नीचे सर्वनामों की कारक-रचना की तालिकाएँ में दी जा रही हैं-

प्रधान सर्वनाम

सर्व०	मूल०		विकृ०		कर्म-संप्र०		संबंधवाची	
पुरुष	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
उ०पु०	मैं	हम	मैं,मुझ	हम	मुझको, मुझे	हमको, हमें	मेरा/री/रे	हमारी/री/रे
म०पु०	तू	तुम	तू,तुझ	तुम	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें	तेरा/री/रे	तुम्हारा/री/रे

अप्रधान सर्वनाम

सर्व०	मूल०		विकृ०		कर्म-संप्र०	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
निश्चय०						
निकट०	यह	ये	इस	इन,इन्हों	इसे	इन्हें
दूर०	वह	वे	उस	उन,उन्हों	उसे	उन्हें
अनिश्च०	कोई	कोई	किसी	किन्हीं	किसी को	किन्हीं को
प्रश्न०	कौन/ क्या	कौन/ क्या	किस	किन,किन्हों	किसे	किन्हें
संबंध०	जो	जो	जिस	जिन,जिन्हों	जिसे	जिन्हें
नित्य०	सो	सो	तिस	तिन,तिन्हों	तिसे	तिन्हें
आदर०	आप	आप	आप	आप	आपको	आपको
निज०	आप	आप	अपने	अपने	अपने को	अपने को

इस विवेचन से यह बात सामने आती है कि सर्वनाम के सम्बन्ध कारक रूप जिन शब्दों के पूर्व आते हैं, उनके वचन तथा लिंग के अनुसार उनमें परिवर्तन होता है। जैसे- मेरी पुस्तक, मेरे भाई, मेरा विद्यार्थी आदि। सम्बोधन कारक में सम्बोधन का प्रयोग नहीं होता; जैसे- हे तुम ! आदि का प्रयोग नहीं किया जाता। सर्वनाम के रूपांतर वचन और कारक के आधार पर होते हैं। हिन्दी में दो-दो सर्वनाम संयुक्त करके बोलने की प्रथा बढ़ती जा रही है। यथा- जो-जो, कुछ-कुछ, आप से आप, आप ही आप, क्या-क्या, और-और, जो कोई, सब कोई, कुछ न कुछ, कोई दूसरा, कुछ और, कौन-सा, इसी(इस+ई), हमी(हम+ई), यही(यह+ई), जिसी(जिस+ई), किन्हीं(किन+ही), इन्हीं(इन+ही) आदि। हिन्दी में आदरार्थ बहु० का प्रयोग सर्वनामों में विशेष बढ़ता जा रहा है। अतएव वास्तविक बहु० का बोध कराने के लिए- लोग(मूलरूप) 'लोगों'(विकृतरूप) को मुख्य सर्वनाम पद के साथ जोड़ने की प्रथा बढ़ती जा रही है। 'लोगों' की भाँति सभी सर्वनामों के साथ वास्तविक बहु० का बोध कराने के लिए 'सब' शब्द भी जोड़ा जाता है। जैसे- 'इन सबों', 'ये सब' आदि। हिन्दी में प्राचीन अकारान्त शब्द अब व्यंजनान्त हो गए हैं। सर्वनाम के साथ, अधिकांश कारक परसर्गों को मिलाकर बोलते और लिखते हैं; जैसे- उसने, मैंने, मुझको, तुमको आदि।

५.२.५) <u>विशेषण</u> :

वाक्य में संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताने वाला शब्द विशेषण कहलाता है जैसे- अच्छा लड़का। यहाँ अच्छा शब्द संज्ञा लड़का की विशेषता बता रहा है, इसलिए अच्छा शब्द विशेषण है। विशेषण शब्द द्वारा जिस संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताई जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं जैसे- सौम्य लड़की वाक्य में सौम्य विशेषण है और लड़की विशेष्य है।

संस्कृत-पाली-प्राकृत तक विशेषय के अनुसार विशेषण में लिंग, वचन-कारक-सम्बन्धी परिवर्तन होते रहे, यहाँ तक कि कारक प्रत्यय भी विशेष्य के अनुसार ही लगते थे। यथा- सुन्दरेण बालकेन। अपभ्रंश-काल से आकारान्त विशेषणों को छोड़कर विशेषण पद लिंग, वचन, कारक, के परिवर्तन से मुक्त हो गए। संदेशरासक, प्राकृतपैंगलम् में अनेक विशेषण पद विशेष्य के लिंग-वचन-कारक से प्रभावित रहते हैं। हिन्दी ने अपभ्रंश की यही परम्परा अपना ली है।

५.२.५.१) <u>विशेषण व्यवस्था</u> :

संज्ञा और सर्वनाम की भाँति विशेषण भी विकारी शब्द है, उनमें भी लिंग, वचन और कारक के आधार पर परिवर्तन होते हैं। विशेषण शब्दों के लिंग, वचन और कारक विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं। कुछ विशेषण शब्द लिंग, वचन, कारक से अप्रभावित भी रहते हैं। प्रथम वर्ग में वे विशेषण आते हैं, जो आकारान्त हैं। ऐसे विशेषणों के साथ लिंग, वचन, कारक, का प्रभाव स्पष्टत मिलता है। मूलरूप में आकारान्त वाले विशेषण रूप एकवचन पु० संज्ञाओं के साथ ईकारान्त विशेषण रूप स्त्री० एकवचन में तथा पु० एकारान्त बहुवचन के साथ ईकारान्त बहुवचन स्त्री० मिलते हैं। तिर्यक रूप में पु० एकारान्त एकवचन और बहुवचन तथा स्त्री० में ईकारान्त दोनों में वचन समान हैं। इस व्यवस्था की तालिका इस प्रकार है-

विशेषण	पु०		स्त्री०	
(आकारान्त)	एक०	बहु०	एक०	बहु०
मूल -	-आ	-ए	-ई	-ई
तिर्यक -	-ए	-ए	-ई	-ई

अप्रभावित रहने वाले विशेषणों में कोई रूप संरचना नहीं होती अथवा भाषा

वैज्ञानिक शब्दावली में कहा जाए तो शून्य प्रत्यय योग की स्थिति है।

अ) <u>प्रभावित-</u>

लिंग के आधार पर-	लम्बा लड़का	लम्बी लड़की
	छोटा बेटा	छोटी बेटी
	अच्छा घोड़ा	अच्छी घोड़ी
	मोटा बच्चा	मोटी बच्ची
वचन के आधार पर-	लम्बा लड़का	लम्बे लड़के
	छोटा बेटा	छोटे बेटे
	अच्छा घोड़ा	अच्छे घोड़े
	मोटा बच्चा	मोटे बच्चे

कारक के आधार पर-

आकारांत - जब एकवचन तथा पुलिंग रूप विशेष्य बिना विभक्ति के प्रयुक्त होते हैं, तो आकारान्त विशेषणों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

उदा०- वह विद्यार्थी पुस्तक पढ़ रहा है।
उसने एक काला कोट खरीदा।

एकारान्त - जब एकवचन तथा पुल्लिंग रूप विशेष्य कारक विभक्ति के साथ प्रयुक्त होते हैं, तो आकारान्त विशेषणों के आ बदलकर ए हो जाते हैं।

उदा०- उस अच्छे बालक को बहुत-से पुरस्कार मिले।
किसान ने अपने डंडे से काले साँप को मार डाला।

अपवाद - बढ़िया, घटिया, ज्यादा, सवा शब्द आकारान्त होते हुए भी सदा अपरिवर्तित रहते हैं। जैसे-

बढ़िया घर	बढ़िया साड़ी	बढ़िया पुस्तकें

घटिया कपड़ा	घटिया धोती	घटिया कपड़े
ज़्यादा लड़के	ज़्यादा लड़कियाँ	ज़्यादा लड़कों को
सवा रुपया	सवा रुपल्ली	सवा रुपये का

आ) अप्रभावित - आकारान्त से भिन्न विशेषण शब्द लिंग, वचन तथा कारक के अनुसार परिवर्तित न होकर मूल रूप में ही रहते हैं। उदाहरण के लिए -

लिंग के अनुसार	चतुर लड़का	चतुर लड़की
	देहाती आदमी	देहाती औरत
	दयालु भक्त	दयालु भक्तिन
वचन के अनुसार	चतुर लड़का	चतुर लड़के
	देहाती लड़की	देहाती लड़कियाँ
	दयालु स्त्री	दयालु स्त्रियाँ
कारक के अनुसार	चतुर लड़के ने	चतुर लड़कों को/के लिए
	चतुर व्यक्ति ने	चतुर व्यक्तियों ने
	देहाती लड़की से	चतुर लड़कियों से

५.२.५.२) **विशेषण के भेद** -

विशेषण के विद्वानों द्वारा प्रमुखत चार भेद किए गए हैं- अ) गुणवाचक विशेषण, आ) सार्वनामिक विशेषण, इ) संख्यावाचक विशेषण, ई) परिमाणवाचक विशेषण।

पं०कामता प्रसाद गुरु ने विशेषण के मुख्य तीन भेद बताए हैं- अ) गुणवाचक विशेषण, आ) सार्वनामिक विशेषण, इ) संख्यावाचक विशेषण।[३७] परिमाणवाचक विशेषण को उन्होंने संख्यावाचक के अंतर्गत ही माना है।

५.२.५.२.१) **गुणवाचक विशेषण** :

संज्ञा या सर्वनाम(वस्तु या व्यक्ति) के गुण, दशा, रंग, आकार, स्थान और समय का बोध कराने वाला शब्द गुणवाचक विशेषण होता है। यहाँ गुण का अर्थ केवल अच्छाई न होकर किसी भी विशेषता से है। अत: गुणवाचक में नीचे

लिखी सभी विशेषताओं का समावेश पाया जाता है-

गुण	-	अच्छा, बुरा, दयालु, सुशील, वीर, शांत, विद्वान्, भला, सज्जन, आदि।
दोष	-	दुष्ट, पापी, लोभी, झूठा, कायर, दुर्बल आदि।
रंग	-	लाल, पीला, हरा, काला, नीला, भूरा आदि।
आकार	-	गोल, टेढ़ा, नुकीला, चौड़ा, तिरछा, लम्बा, सुंदर, मोटा, पतला, दुबला आदि।
समय	-	नया, पुराना, अगला, पुछला, मासिक, वार्षिक, दैनिक, प्रातःकालीन आदि।
स्वाद	-	खट्टा, मूठा, कड़वा, कसैला, चटपटा आदि।
दिशा	-	पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, दक्षिणी, ऊपरी आदि।
गंध	-	खुशबूदार, सुगंधित, बदबूदार, दुर्गन्धपूर्ण आदि।
स्पर्श	-	कोमल, कठोर, नर्म, ऊबड़-खाबड़, खुरदरा आदि।
दशा या अवस्था	-	मजबूत, रोगी, भारी, स्वस्थ, गीला, सूखा आदि।
स्थान या देश	-	भारतीय, जापानी, बनीरसी, देशी, विदेशी, यूनानी, स्वर्गीय आदि।

गुणवाचक विशेषणों की संख्या सब विशेषण-भेदों की अपेक्षा अधिक है-

भार - हल्का, भारी, वजनी आदि।
शारीरिक विशेषताएँ - अन्धा, लंगड़ा, लूला, बहरा आदि।
वस्तु की मूल्य-परक विशेषताएँ - आवश्यक, महत्त्वपूर्ण उचित, अनुचित, हानिकारक, लाभदायक, आदि भी गुणवाचक के ही अन्तर्गत आती हैं।

साथ ही संबंधवाची शब्द भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। इनमें संबंधकारक की विभक्ति का लोप पाया जाता है। जैसे- फौज का जहाज=फौजी जहाज, जापान की गुड़िय=जापानी गुड़िया, भारत की नारी=भारतीय नारी, पहाड़ का रास्ता=पहाड़ी रास्ता, रेशम का कपड़ा=रेशमी कपड़ा, वैज्ञानिक, राजनैतिक, भौगोलिक आदि ऐसे ही शब्द हैं। शांतिमय, भीतरी, अंदरूनी, खुला(खुला अधिवेशन) आदि भी गुणवाचक विशेषण शब्द हैं।

५.२.५.२.२) सार्वनामिक विशेषण :

जो सर्वनाम विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें सार्वनामिक विशेषण कहते हैं जैसे- इतना धन, उतने लोग, यह मुनष्य, वह लड़की, कोई मनुष्य, कौन लड़का, जो लोग। सर्वनाम तथा सार्वनामिक विशेषण में अन्तर यह है कि सर्वनाम अकेले आता है, जबकि सार्वनामिक विशेषण विशेष्य से पहले प्रयुक्त होता है जैसे-

	सर्वनाम	सार्वनामिक विशेषण
उदा०	यह भला है।	यह आदमी भला है।
	कोई आ रहा है।	कोई आदमी आ रहा है।

उपर्युक्त उदाहरणों में रेखांकित 'यह', 'कोई' सार्वनामिक-विशेषण है, क्योंकि यह 'आदमी' संज्ञा के साथ आया है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से सार्वनामिक-विशेषण दो प्रकार के हैं-

अ) मूल सार्वनामिक, आ) यौगिक सार्वनामिक

अ) मूल सार्वनामिक-

जो सर्वनाम अपने मूल रूप में ही(बिना किसी रूपांतर के) संज्ञा शब्दों के साथ विशेषण रूप में प्रयुक्त होते हैं, अर्थात् मूलत सर्वनाम हैं, किन्तु विशेषण की तरह प्रयुक्त होते हैं। जैसे- यह लड़की, वह पुस्तक, ये कलमें, वे दवातें, कोई लड़का, कुछ घर आदि। यह, वह, ये, वे, कोई, कुछ- शब्द मूलतः सर्वनाम हैं किन्तु यहाँ क्रमशः लड़की, पुस्तक, कलमें, दवातें, लड़का, घर- संज्ञाओं के साथ आए हैं और इनके रूपों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है, अतः मूल सार्वनामिक हैं।

आ) यौगिक सार्वनामिक -

जो मूल सर्वनामों में प्रत्यय आदि लगाने से बनते हैं और संज्ञा के साथ प्रयुक्त होते हैं अर्थात् ये सर्वनामों के आधार बनते हैं जैसे- कैसा आदमी, इतना काम, ऐसा घर, जितना काम, उतना दाम। यौगिक सार्वनामिक निम्नलिखित सर्वनामों से मिलकर बनते हैं-

यह से इतना, इतने, ऐसा

वह से उतना, उतने, वैसा
जो से जितना, जितने, जैसा
कौन से कितना, कितने, कैसा।

विशेष- तुलनात्मक दृष्टि से हिन्दी की सार्वनामक प्रकृति पर विचार करते हुए यदि हम हिन्दी(मानक) तथा उसकी उपभाषाओं के मूल सर्वनाम पदों की तुलना करें तो ज्ञात होता है कि उनमें अधिकांश रूप में समानता है। उदाहरण के तौर पर -

प०हि०(ब्रज) मूलरूप	-	मैं(हौं), हम; तू(तैं), तुम(तुम्ह); यो-यौ(ये-वो), वे, जे, जौन, कौ।
हरियानी	-	मैं(हम); तू, तम(थम); एह, ये, वो(वोह, वे); जो, कौन।
खड़ीबोली	-	मैं(हम); तू, तुम(तम); यू(यो); एह, ये, वोह, वो(ऊ), वे, जो।
पू०हि०(अवधी)	-	मैं(मय), हम; तू(तैं), तुम(तुम्ह); ई(ई,ए); ऊ, ऊँ; जौन(जउन); कउन(के)।
बिहारी(हिन्दी)	-	मैं, हम(हमनी); तू, तोहनी(तोहरा); ई(ए), ऊ, ऊँ; जौन(जउन); कउन(के)।
राजस्थानी(हिन्दी)	-	हूँ(म्हूँ), म्हें; तूँ(थूँ); थे(थें), यो; ए(ऐ), ऊ(वू), वै(वी); जो(जे); कुण(कण)।
पहाड़ी(हिन्दी)	-	मैं, हम(हमि); तू(तँ), तुम(तुमन); यो, ये, ऊ(वीं), ऊँ; जो(जे), कौ(कुन)।

इससे ज्ञात होता है कि सबका मूल मैं, हम, तू, तुम, यह (इ, यो), वह (ऊ, वू), ये (ए), वै (वे), जो (जौन), कौन (कउन) ही है। इस दृष्टिकोण से सबकी सार्वनामिक प्रकृति लगभग समान है। विशेष रूप से बहु० हम, जौ, कौन, अल्पाधिक उच्चारण-सम्बन्धी अन्तर से सबमें एकसमान है। हिन्दी वर्तनी के अनुसार वह लिखा जाता है, किन्तु

उच्चारण आज भी खड़ीबोली-हरियानी में वोह, वो, वौ होता है।

५.२.५.२.३) संख्यावाचक विशेषण :

अपने विशेष्य की संख्या विषयक विशेषता बताने वाला विशेषण 'संख्यावाचक' कहलाता है; जैसे- दो पुस्तकें। चार रुपए। दस आदमी।

संख्यावाची विशेषण दो प्रकार के होते हैं-

अ) अनिश्चित संख्यावाची- जिन शब्दों से किसी वस्तु आदि की निश्चित संख्या का ज्ञान नहीं होता है, उन्हें 'अनिश्चित संख्यावाची विशेषण' कहते हैं। सब, कितने, दसियों, सैकड़ों, हज़ारों, अनेक, कम, थोड़ा, सभी, बहुत, कई, ज़्यादा, दो-एक(अन्य, और), कुछ आदि(इत्यादि, वगैरह), अमुक(फ़लाना), दसेक, सौ-पचास, दो-चार सौ। वगैरह, फ़लाना(फ़लाँ) उर्दू शब्द हैं।

आ) निश्चित संख्यावाची- जिन शब्दों से किसी वस्तु आदि की निश्चित संख्या का ज्ञान होता है, उन्हें 'निश्चित संख्यावाची विशेषण' कहते हैं।इस वर्ग के विशेषणों को पाँच उपभेदों में बाँटा जा सकता है- गणनावाचक, क्रमवाचक, आवृत्तिवाचक, समूहवाचक, प्रत्येकबोधक।

आ.i) गणनावाचक - गिनती बताने वाले शब्द- एक, दो, तीन, छ, दस, सौ आदि। इसके दो भेद हैं-

- पूर्णांकबोधक : एक, दो, चार, नौ, बीस, पचास, सौ आदि। पूर्णांकबोधक विशेषण दो प्रकार से लिखे जाते हैं- शब्दों में और अंकों में।
- अपूर्णांकबोधक : आध, पौन, सवा, डेढ़, ढाई, साड़े चार आदि। अर्थात् अपूर्णांकबोधक विशेषण से पूर्णसंख्या के किसी भाग का बोध होता है; जैसे, पाव=चौथाई भाग, पौन=तीन भाग, सवा=एक पूर्णांक चौथाई भाग, अढ़ाई=दो पूर्णांक और आधा इत्यादि। एक से अधिक संख्याओं के साथ पाव और पौन सूचित करने के लिए पूर्णांकबोधक शब्द के पहले क्रमशः सवा(सं० सपाद) और पौने(सं० पादोन) शब्दों का उपयोग किया जाता है; जैसे- सवा दो, पौने तीन। इसी

तरह सौ, हज़ार, लाख आदि संख्याओं में भी अपूर्णांकबोधक शब्द जोड़े जाते हैं जैसे सवा सौ=१२५, ढाई सौ=२५०, साढ़े तीन हज़ार=३५००, पौने पाँच लाख=४५७०० आदि। ये शब्द मापतौल वाचक संज्ञाओं के साथ भी आते हैं; उदाहरण- सवासेर, डेढ़ गज, पौने तीन कोस इत्यादि।

आ.ii) क्रमावाचक - क्रम का ज्ञान कराने वाले शब्द- पहला, दूसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, दसवाँ, सौवाँ आदि।

कभी-कभी संस्कृत क्रमवाचक विशेषणों का भी उपयोग होता है यथा- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, दशम। तिथियों के नामों में हिन्दी शब्दों के सिवा संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया जाता है- दूज, तीज, चौथ, पाँचें, छठ आदि।

आ.iii) आवृत्तिवाचक - गुणा का ज्ञान कराने वाले शब्द- दुगुना, तिगुना, चौगुना, दस गुना, सौगुना आदि। कभी-कभी संस्कृत के आवृत्तिवाचक विशेषण का भी उपयोग होता है- द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण आदि। पहाड़ों में आवृत्तिवाचक और अपूर्ण संख्याबोधक विशेषणों के रूपों में कुछ अंतर हो जाता है, जैसे-

दून-	दूने, दूनी	सतगुना-	सत्ते
तिगुना-	तिया, तिरिक	अठगुना-	अट्ठे
चौगुना-	चौक	नौगुना-	नवाँ, नवें
पंचगुना-	पंचे	दसगुना-	दहाम
छगुना-	छक	अढ़ाई-	अढ़ाम

(इन शब्दों का उच्चारण भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है।)

आ.iv) समूहवाचक - इससे किसी पूर्णांकबोधक संख्या के समूह का बोध होता है जैसे- दोनों, आठों, दसों, पचासों, लाखों आदि। एक के लिए अकेला समूहवाचक रूप है। समूह के अर्थ में कुछ संज्ञाएँ भी आती हैं; यथा-

जोड़ा, जोड़ी=दो गंडा=चार या पाँच

दहाई=दस	गाही=पाँच
कौड़ी, बीसा, बीसी=बीस	चालीसा=चालीस
बत्तीसी=बत्तीस	सैकड़ा=सौ
छक्का=छह	दर्जन=बारह

युग्म(दो), पंचक(पाँच), अष्टक(आठ) आदि संस्कृत समूहवाचक संज्ञाएँ भी प्रचार में हैं।

आ.v) प्रत्येकबोधक - प्रत्येकबोधक विशेषण में कई वस्तुओं में से प्रत्येक का बोध होता है जैसे- हर घड़ी, हर एक आदमी, प्रत्येक जन्म, प्रत्येक बालक, हर आठवें दिन आदि। 'हर' उर्दू शब्द है।

५.२.५.२.४) परिमाणवाचक विशेषण :

किसी वस्तु की नाप-तोल सम्बन्धी विशेषता बताने वाले शब्दों को 'परिमाणवाचक विशेषण' कहते हैं। यह विशेषण भी दो प्रकार के होते हैं- निश्चित परिमाणवाचक और अनिश्चित परिमाणवाचक।

अ) निश्चित परिमाणवाचक - जिन शब्दों से किसी वस्तु की निश्चित नाप-तोल का ज्ञान होता है। जैसे- चार किलो गेहूँ, ५०० ग्राम घी, चार मीटर कपड़ा, दस एकड़ ज़मीन, पचास मील यात्रा, दो-चार गज़ कपड़ा आदि।

यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने की है कि निश्चित परिमाणवाचक बनाने के लिए संख्यावाचक विशेषण के साथ परिमाण सूचक-संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। यथा-

नि०संख्या०वि०	परि० संज्ञा	नि०परि०वि
दस	गज	दस गज
पचास	मीटर	पचास मीटर
चार	किलोग्राम	चार किलोग्राम
पाँच	सेर	पाँच सेर

आ) अनिश्चित परिमाणवाचक - जिन शब्दों से किसी वस्तु की निश्चित नाप-तोल का ज्ञान नहीं होता है। जैसे- थोड़ा, कुछ(अल्प,किंचित्, ज़रा), कम, सारा, अधिक(ज्यादा), बहुत, बहुतेरा, समूचा, और, अधूरा, पूरा आदि। ये विशेषण एकवचन संज्ञा के साथ परिमाण बोधक और बहुवचन संज्ञा के साथ अनिश्चित संख्यावाचक होता है; जैसे-

परि०	अनि०संख्या०
बहुत दूध	बहुत आदमी
सब जंगल	सब पेड़
सारा देश	सारे देश
बहुतेरा काम	बहुतेरे उपाय
पूरा आनन्द	पूरे टुकड़े

परिमाणबोधक संज्ञाओं में 'ओं' जोड़ने से उनका प्रयोग अनिश्चित परिमाणबोधक विशेषणों के समान होता है; जैसे- ढेरों इलायची, मनों घी आदि। कोई-कोई परिमाणबोधक विशेषण एक दूसरे से मिलकर आते हैं; जैसे- बहुत सारा काम, बहुत कुछ आशा। उसी तरह इनके साथ- सा, सी, सरीखा, समान, तुल्य, जैसा, जैसी, जैसे -आदि पदों को विशेषण परसर्गों या प्रत्ययों की भाँति लगाकर ही समानता का बाध कराया जाता है; जैसे- बहुत-सा काम, थोड़ी-सी परेशानी, ज़रा-सी बात, अधिक-सा भाग, शिशु-सरीखा सरल, कपि-तुल्य चंचल, हीरो जैसे-बाल आदि। कईं जगहों पर परिमाणवाचक शब्द विशेषण क्रियाविशेषण के रूप में भी आते हैं; यथा-

मैंने उसे बहुत समझाया।	बात कुछ बड़ी न थी।
लकीर और सीधी करो।	यह सोना थोड़ा खोटा है, आदि।

संस्कृत-प्रधान शैली में तुलना के लिए संस्कृत के तुलनात्मक प्रत्यय तर, तम(अधिकतर, अधिकतम) जोड़े जाते हैं।

विशेष - थोड़ा, बहुत, कई, कम, कुछ, सब, सारा, अधिक, और आदि शब्द अनिश्चित संख्यावाचक और अनिश्चित परिमाणवाचक- दोनों का ही कराते हैं। अत: इनकी भिन्नता की पहचान के लिए देखना चाहिए कि उनके विशेष्य गणनीय(गिने जानेवाले) हैं या अगणनीय(नापने या तोलने योग्य)। यदि वे गणनीय हैं तो अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण होंग, और यदि वे नापने तथा तोलने योग्य हैं तो अनिश्चित परिमाणवाचक विशेषण होंगे। उदाहरण के लिए-

शब्द	अनि०संख्या०	अनि०परि०
थोड़ा	थोड़े आदमी	थोड़ा कपड़ा
बहुत	बहुत-सी पुस्तकें	बहुत-सा आटा

कई	कई लड़के	---
कम	कम पैसे	कम पानी
कुछ	कुछ आम	कुछ दूध
सब	सब केले	---
सारा	सारा सामान	सारी चीनी
अधिक	अधिक पैसा	अधिक पढ़ाई
और	और आदमी	और चाय

हिन्दी प्रदेश की सभी उपभाषाओं में व्याकरणिक पदों की रचना मानक हिन्दी की ही भाँति है, केवल मानक हिन्दी का आकारान्त विशेषण जनपदीय खड़बोली, हरियानी के अतिरक्त ब्रज, राजस्थानी तथा पहाड़ी में ओकारान्त हो जाता है तथा पूर्वी हिन्दी, बिहारी में वही कभी व्यंजनान्त(पू०हि० भल्(भला), बड़्(बड़ा), आदि) और कभी वाकारान्त (यथा- बड़कवा(बड़ा), छोटकवा(छोटा), कलुवा(काला), गोरकवा(गोरा), हरिकवा(हरा)) हो जाता है।

समानता का बोध कराने के लिए खड़ीबोली- हरियानी में 'सा' प्रत्यय, ब्रज, राजस्थानी, पहाड़ी में 'सौ' तथा पू०हि०, बिहारी में 'सन्', 'सम्' जोड़े जाते हैं।

५.२.६) अव्यय :

प्रयोग के आधार पर शब्द दो भागों में बाँटे गए हैं- विकारी और अविकारी। जिन शब्दों में लिंग, वचन कारक आदि के कारण कोई विकार(परिवर्तन) नहीं होता, उन्हें अविकारी या अव्यय कहते हैं। जैसे-

राम धीरे-धीरे चलता है।	सीता धीरे-धीरे चलती है।
लड़का धीरे-धीरे चलता है।	लड़के धीरे-धीरे चलते हैं।
मैं धीरे-धीरे चलता हूँ।	तुम धीरे-धीरे चलते हो।

उक्त उदाहरणों में धीरे-धीरे एक ऐसा शब्द है जो लिंग (राम-सीता), वचन (लड़का-लड़के) तथा पुरुष (मैं-तुम) के अनुसार नहीं बदला। अत: यह अविकारी है।

'अव्यय' शब्द का अर्थ है जिसमें व्यय अर्थात् परिवर्तन न हो। ये चार प्रकार के होते हैं- क्रियाविशेषण, सम्बन्ध-सूचक, योजक या समुच्चयबोधक, विस्मयादिबोधक।

५.२.६.१) अव्यय के प्रकार :

५.२.६.१.१) क्रियाविशेषण :

क्रियाविशेषण एक ऐसा प्रधान अविकारी शब्द है, जिससे क्रिया के व्यापार, स्थिति तथा गुण-सम्बन्धी विशेषता जानी जाती है। इसीलिए क्रिया की विशेषता बतानेवाले अविकारी शब्दों को क्रियाविशेषण कहते हैं। यहाँ विशेषता शब्द से स्थान, काल, रीति और परिमाण अभिप्राय है। जैसे- जल्दी, किधर, ठहरो, परसों आदि।

हिन्दी क्रियाविशेषणों का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया जा सकता है- प्रयोग के आधार पर, रूप के आधार पर और अर्थ के आधार पर।

अ) प्रयोग के आधार पर इसके तीन भेद हैं-

i) साधारण - जो क्रियाविशेषण वाक्य में स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त होते हैं; जैसे-

वह व्यक्ति कहाँ चला गया ? मैं अब चुप रहूँगा।
इसमें मैं क्या करता हूँ ? शाम को जल्दी आना।

ii) संयोजक - जो क्रियाविशेषण सम्बन्धवाचक सर्वनाम जो से उपवाक्यों को मिलाने के लिए प्रयोग में आते हैं।

जब वह आए तो मुझसे मिले। तुम जहाँ कहोगे मैं चलूँगा।
जितना मैं जानता था, बता दिया। ज्योंही वह आया, सब चुप हो गए।

iii) अवधारक - जिन शब्दों का प्रयोग क्रिया के निश्चय या सीमा-निर्धारण के लिए होता है; जैसे-

मैं उसे जानता तक नहीं। मुझे वहाँ पहुँच तो जाने दो।
मैंने उसे देखा भर है। अब मैं भी वहाँ जाऊँगा।
मुझे आपने ही भेजा था। उसे तुम कुछ न कहना।

इन वाक्यों मे तक, तो, भर, भी, ही, न - शब्द अवधारण के लिए प्रयोग में आए हैं, जो किसी भी शब्द के साथ आ सकते हैं।

आ) अर्थ के अनुसार क्रियाविशेषण के चार भेद हैं-

i) कालवाचक - जो अविकारी शब्द क्रिया के होने या करने का समय सूचित करे। जैसे-

सीता परसों आएगी। वह कल आया था।
तुम अब जा सकते हो। वह बराबर आता रहा है।

इसी तरह आजकल, कब, तब, अभी, सवेरे, सायं, दोपहर, पहले, आखिर आदि 'समयसूचक', दिनभर, सालभर, शामतक, निरंतर, सदैव, हमेशा, तबतक आदि 'अवधि-सूचक', बार-बार, प्रतिदिन, नित्यप्रति, घड़ी-घड़ी, फिर, हर समय, प्राय आदि 'पुनः पुनः सूचक', कालवाचक क्रियाविशेषण कहलाते हैं।

ii) स्थानवाचक - जिन अविकारी शब्दों से क्रिया के स्थान का बोध हो; जैसे- यहाँ, वहाँ, जहां, ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर, निकट, दूर आदि स्थिति-सूचक, जिधर, किधर, उधर, आर-पार, सब ओर, चोरों तरफ आदि दिशा-सूचक स्थानवाचक क्रियाविशेषण हैं।

राम आगे चले। मध्य सीता चली।
तुम कहाँ रहते हो। वह इधर-उधर देखता चल रहा था।

iii) परिमाणवाचक - जिन अविकारी शब्दों से क्रिया के परिमाण(न्यूनता, अधिकता) का ज्ञान होता है; जैसे- कुछ, बहुत, कम, जितना, केवल, थोड़ा-थोड़ा, लगभग, तनिक आदि।

आज तुम बहुत खुश नज़र आ रहे हो।
जितना चाहो ले लो।

iv) रीतिवाचक - जो अविकारी शब्द क्रिया की रीति, स्वीकृति, निश्चय आदि का ज्ञान कराते हैं; जैसे- अकस्मात, सहसा, अचानक, क्रमशः, धीरे से, जल्दी से, सुखेन, दु:खेन, अवश्य, ठीक, सचमुच, व्यर्थ, फटाफट, दरअसल, ज़रूरत आदि।

इ) रूप के आधार पर क्रियाविशेषण के तीन प्रकार हैं-

i) मूल - जो क्रियाविशेषण दूसरे शब्दों से मिलकर नहीं बनते हैं; जैसे- ऊपर, ठीक, दूर, तक ,अचानक, नहीं, जी, फिर, आज, कल, परसों, लगभग, सदा, तो, चाहे, हमेशा, द्वारा, सचमुच आदि।

ii) स्थानीय - जब संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि शब्द बिना किसी प्रत्यय या रूपांतर के क्रियाविशेषण रूप में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें स्थानीय क्रियाविशेषण कहते हैं; जैसे-

संज्ञा	अब क्या ख़ाक पड़ेगा ?	मेरा सिर समझा है ?
सर्वनाम	वह वहाँ आप ही चला गया।	
विशेषण	बच्चे अच्छा गाते हैं।	किरण उदास बैठी है।
पूर्वकालिक कृदन्त	मैं पढ़कर आ रहा हूँ।	वह दौड़कर आया था।

iii) यौगिक - जो क्रियाविशेषण दूसरे शब्दों या प्रत्यय आदि से मिलकर बनते हैं।

संज्ञा-द्विरुक्ति - बीचोंबीच, हाथोंहाथ, घर-घर, किनारे-किनारे, रात-रात आदि
दो समान संज्ञा - आकाश-पाताल, रात-दिन, सायं-प्रात, देश-विदेश आदि।
संज्ञा-उपसर्ग - प्रतिदिन, यथासंभव, अनुदिन।
संज्ञा-प्रत्यय - कुशलपूर्वक, नियमतः, विशेषतः।
क्रि०वि द्विरुक्ति - कहाँ-कहाँ, जहाँ-जहाँ, कैसे-कैसे, पीछे-पीछे, जब-जब आदि।
दो भिन्न क्रि०वि० - आगे-पीछे, आजकल, इधर-उधर, ऊपर-नीचे, जब-कभी आदि।
विशेषण-द्विरुक्ति - सही-सही, ठीक-ठीक, साफ़-साफ़ आदि।
विशेषण या क्रि०वि० पर पूर्वकालिक किया कर या करते के योग से -
एक-एक कर, दो-दो करके, थोड़ा-थोड़ा करके, विशेषकर आदि।
कृदंत-द्विरुक्ति - पीते-पीते, गाते-गाते, चलते-चलते, रोते-रोते आदि।
ध्वन्यात्मक-द्विरुक्ति - सटासट, खटाखट, दनादन, धड़ाधड़ आदि।

ई) संस्कृत क्रि०वि०

i) तत्सम - अकस्मात्, अन्यत्र, कदाचित्, कृपया, विधिवश, भयवश, प्रायः, बहुधा, व्यर्थ, वस्तुतः, शनैः, सहसा, सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा, साक्षात्, स्वभावतः, नाममात्र, प्रतिफल, प्रत्यक्ष, निःसंदेह, निर्भय, सपरिवार, अनायास, आजन्म, आमरण आदि।

ii) तद्भव - आज, कल, परसों, साथ, बारंबार, सामने, सतत, आगे आदि।

उ) हिन्दी क्रि०वि० - दौड़ता, करता, बोलता, उठाए, बैठे, दिन को, धर्म से, कब का, आज तक, रात तक, उठाकर, देख करके, क्योंकर, कैसे, जैसे, त्यों, जिसलिए, किसलिए, क्यों, तिधर, जिधर, तहाँ, अनजाने, अनपूछे, निधड़क, निडर आदि।

ऊ) उर्दू क्रि०वि०

i) तत्सम - शायद, ज़रूर, बिलकुल, अकसर, फौरन, बाला बाला इत्यादि।

ii) तद्भव - हमेशा(फ़ा० हमेशह), सही(अ० सहीह्), नगीच(फा० नज़दीक), जल्दी(फ़ा० जल्द), खूब(फ़ा० ख़ूब), आखिर(अ० आख़िर) आदि।

उर्दू यौगिक शब्द जबरन, फौरन, मसलन इत्यादि हैं। सामासिक अव्ययीभाव क्रि०वि० में हररोज़, हरसाल, हरवक्त, दरअसल, दरहक़ीकत, बदस्तूर, बेकार, बेफायदा, बेशक, बेतरह, बेहद आदि शब्द प्रयोग मे आते हैं।

५.२.६.१.२) संबंधसूचक :

वे अव्यय पद(शब्द या शब्दांश) जो किसी संज्ञा के बाद आकर उसका सम्बन्ध अन्य पदों से व्यक्त करते हैं। हिन्दी में इन्हें परसर्ग कहा जा सकता है। अँग्रज़ी आदि भाषाओं में ये संज्ञा के पूर्व आते हैं।

अ) अर्थ के अनुसार संबंधसूचक शब्दों के भेद -

i) कालवाचक - भोजन के उपरांत हम विश्राम करेंगे।
गाड़ी समय से पूर्व आ पहूँची।

के अनन्तर, के उपरान्त, के-से पूर्व, के लगभग, के-से बाद, के-से आगे, के-से पीछे, के पश्चात्, के-से पहले आदि कालवाचक संबंधसूचक शब्द हैं।

ii) स्थानवाचक - नदी के किनारे मंदिर है।
महाविद्यालय के पास उपहार-गृह है।

के समीप, के निकट, के पास, के नज़दीक, के यहाँ, के-से आगे, के-से पीछे, के बाहर, के भीतर, से दूर, के किनारे, से परे आदि शब्द स्थानवाचक संबंधसूचक हैं।

iii) दिशावाचक - नदी के उस पार गाँव है।
घर के आस-पास सन्नाटा छाया रहता है।

की ओर, की तरफ, के पार, के आस-पास, के आर-पार, के तईं, के प्रति आदि दिशावाचक सम्बन्धसूचक शब्द हैं।

iv) साधनवाचक - नौकर के द्वारा हमने पानी भिजवा दिया।
डाक के ज़रिए हमें पत्र मिला।

के ज़रिए, के द्वारा, के सहारे, को ज़बानी, के हाथ, की मार्फ़त, के बूते आदि।

v) कार्य-कारण-वाचक - गर्मी के मारे बुरा हाल है।
बाढ़ के कारण बड़ी क्षति हुई।

के लिए, के वास्ते, के निमित्त आदि शब्द कार्य-कारण संबंधसूचक हैं।

vi) विषय-सूचक - मेरे लेखे वह नहीं के बराबर है।
तुम्हारी बावत क्या कहा जाय !

के लेखे, की बावत, के नाम, के निस्बत, के मद्धे, के विषय(में) आदि।

vii) मित्रतावाचक - इसके सिवा तुम कर ही क्या सकते थे।
अपमान के अलावा उसे कुछ नहीं मिला।

के अतिरिक्त, के बिना, से रहित, के बग़ैर, के सिवाय आदि संबंधसूचक शब्द हैं।

viii) विनिमयवाचक - इस उपकार के बदले हम दे ही क्या सकते हैं !
श्याम की जगह कोई दूसरा होता, तो बाज़ी हार जाता।

के एवज(में), के पलटे आदि विनिमयसूचक संबंधसूचक शब्द हैं।

ix) सादृश्यवाचक - मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य कहियेगा।
उसेक समान सुखी और कोई नहीं।

की करह, की भाँति, के अनुसार, के मुताबिक, के अनुरूप, के सदृश, के बराबर आदि सादृश्यवाचक सम्बन्धसूचक शब्द हैं।

x) विरोधवाचक - उसके खिलाफ़ बहुत से इल्ज़ाम हैं।
चुनाव में मेरे विरुद्ध कौन खड़ा होगा ?

के विपरीत, के उलटा आदि शब्द विरोधवाचक सम्बंधसूचक शब्द हैं।

xi) सहचारवाचक - राम के साथ सीता ने भी कष्ट उठाए।
मित्रों-सहित वह चला गया ।

के संग, के वश(में), के अधीन आदि।

xii) संग्रहवाचक - हम दिन भर काम में लगे रहे।
मृत्यु-पर्यन्त वह संघर्ष करता रहा।

तक, समेत, लौं आदि। ये बिना विभक्ति के प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं।

xiii) तुलनावाचक - वह प्रत्येक कार्य में सबके आगे रहता है।
मेरी अपेक्षा तुम इसे ज़्यादा अच्छी तरह कर सकते हो।

के-से आगे, के सामने, की बनिस्बत, के सम्मुख आदि।

आ) व्युत्पत्ति के अनुसार सम्बन्धसूचक के दो भेद हैं-

i) मूल - हिन्दी मूल संबंधवाचक बहुत कम हैं, जैसे बिना, पर्यंत, पूर्वक आदि।

ii) <u>यौगिक</u> - जो संबंधबोधक अव्यय शब्दों से बनते हैं। जैसे-

संज्ञा से-	पलटे, वास्ते, ओर, अपेक्षा, नाम, लेखे, विषय, मारफत आदि।
विशेषण से-	तुल्य, समान, उलटा, जबानी, सरीखा, योग्य, जैसा, ऐसा आदि।
क्रि०वि० से-	ऊपर, भीतर, यहाँ, बाहर, पास, परे, पीछे आदि।
क्रिया से-	लिए, मारे, करके, जान।

हिन्दी के कईं संबंधसूचक उर्दू भाषा से और कई एक संस्कृत से आए हैं।

हिन्दी	उर्दू	संस्कृत
सामने	रूबरू	समक्ष, सम्मुख
पास	नज़दीक	निकट, समीप
मारे	सबब, बदौलत	कारण
पीछे	बाद	पश्चात्, अनंतर, उपरांत
तक	ता(क्वचित्)	पर्यंत्
से	बनिस्बत	अपेक्षा
नाई	तरह	भाँति
उलटा	खिलाफ़	विरुद्ध, विपरीत
लिए	वास्ते, ख़ातिर	निमित्त, हेतु
से	ज़रिए	द्वारा
मद्धे	बाबत, निस्बत	विषय
	बग़ैर	बिना
पलटे	बदले, एवज	
	सिवा, अलावा	अतिरिक्त

५.२.६.१.३) <u>सुमच्चयबोधक</u> :

जो अव्यय एक वाक्य का संबंध दूसरे वाक्य से मिलाता है, उसे समुच्चयबोधक कहते हैं, जैसे- और, यदि, तो, क्योंकि, इसलिए। इसके मुख्यत दो प्रकार हैं-

अ) <u>समानाधिकरण</u> - जिनके प्रयोग से समान श्रेणी के शब्द या वाक्य जोड़े जाते हैं। ये चार प्रकार के हैं-

i) संयोजक - और, तथा, एवं।

ii) विभाजक - कि, नकि, या, चाहे, अथवा, अन्यथा, या, नहीं तो।

iii) विरोधसूचक - पर, परन्तु, किंतु।

iv) परिणामसूचक- इसलिए, अतएव, अतः, जिससे, जिस कारण।

आ) व्याधिकरण - जो समुच्चयबोधक आश्रित उपवाक्य को मुख्य उपवाक्य से जोड़ता है। उदाहरणार्थ-

राम कहता है कि मैं लिखूँगा।
दो अध्यापक अवकाश पर हैं, इसलिए पढ़ाई नहीं हुई।
मैं पत्र का उत्तर जल्दी न दे सका, क्योंकि व्यस्त था।
जैसे आए, वैसे ही चले जाओ।
जैसा करोगे, वैसा भरोगे।
जो होना था, सो हो गया।
यदि तुम आते, तो मैं भी चलता।
यह कठिन प्रतीत होता है, तो भी परिश्रम से सब सम्भव है।
यद्यपि इसे करने से कोई लाभ नहीं है, तथापि करने में भी हानि नहीं है।

इस वर्ग में यदि-तो, जो-तो, मानो, यानी, अर्थात् आदि अव्यय सम्मिलित हैं।

५.२.६.१.४) विस्मयाबोधक :

जिन अव्ययों का संबंध वाक्य से नहीं रहता, जो वक्ता के केवल हर्ष, शोकादि भाव सूचिक करते हैं, उन्हें विस्मयादिबोधक अव्यय कहते हैं। भिन्न-भिन्न मनोविकार सूचित करने के लिए भिन्न-भिन्न विस्मयादिबोधक उपयोग में आते हैं; जैसे-

विस्मयबोधक	-	अरे !, हैं !, ऐ !, ओहो !, क्या !, सच !
अनुमोदन-प्रशंसाबोधक	-	ठीक !, अच्छा !, हाँ हाँ !, भला !, शाबाश !, धन्य !, खूब !, वाह !
हर्षबोधक	-	वाह-वाह !, अहा !, आहा !, शाबाश !, धन्य धन्य !, जयति !, जय !
शोकबोधक	-	आह !, ओह !, हाय !, हायराम !, ओफ !

तिरस्कारबोधक	-	छिः !, हट !, चुप !, दुर धिक् !
संबोधनबोधक	-	अरे !, ओ !, अजी !, एजी !, ऐ !, रे !, लो !, हे !, हो !
निषेधबोधक	-	नहीं !, जी नहीं !
स्वीकारबोधक	-	हाँ !, जी हाँ !, अच्छा !, जी !, ठीक-ठीक !, बहुत अच्छा !

इस विवेचन के अन्तर्गत भाषागत विशेषताएँ जो सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं। हिन्दी के आकारन्त और एकारान्त संज्ञाओं में मूल रूप के बहु० वचन में पु०, स्त्री० दोनों में ऐं तथा विकृत रूप ओं प्रत्यय जुड़ता है। जबकि अन्य ईकारान्त, ऊकारान्त में बहु० में एं, ओं रूप बनते हैं। विकृत रूप में ओं की स्थिति बनी रहती है। कुछ अकारान्त संज्ञाएँ ऐसी हैं जिनमें शून्य प्रत्यय लगता है। अरबी-फ़ारसी में आत, हा, आन आदि से बहु० रूप बनाए जाते हैं। मानक हिन्दी की जनपदीय खड़ी बोली, हरियानी के प्रत्यय मानक हिन्दी में भी हैं। आधुनिक आर्य भाषा पंजाबी, लहंदा में बहु० बनाने की प्रक्रिया मानक हिन्दी से मिलती-जुलती है।

हिन्दी की लिंग व्यवस्था बहुत जटील है। जहाँ इसके नियम स्थापित हैं वहीं नियमों के अपवाद भी मिल जाते हैं। इसलिए लिंग व्यवस्था का निर्णय शब्द के अर्थ और रूप के आधार पर किया जाता है। कभी-कभी एक ही समूह या वर्ग के अन्तर्गत आने वाले शब्दों में भी लिंग-भेद पाया जाता है। अत लिंग-व्यवस्था का कोई स्थिर नियम नहीं है।

हिन्दी में मुख्यत छः कारक मानी गई हैं। सम्बन्ध और सम्बोधन को कारक नहीं माना जा सकता क्योंकि इनका संबंध क्रिया से नहीं रहता है। हिन्दी में संस्कृत के कारण कारक का प्रयोग होता है। उर्दू भाषा के अज, दर विभक्तियाँ हिन्दी में अरबी-फ़ारसी शब्दों में आती हैं। उर्दू का सम्बन्ध कारक प्रत्यय ए है जो हिन्दी के- के, का- विभक्तियों का कार्य करता है। हिन्दी में संज्ञापद की कारक रचना में लिंग, वचन और अंतिम ध्वनि का विशेष प्रभाव रहता है। जिनमें ए, एं, एँ, आँ, ओं -ये पाँच कारक रूप प्रत्यय हैं जो किसी न किसी शब्द के बहु० कारक रचना में सहायता देते हैं। हिन्दी में संस्कृत कृदन्त, तद्धित प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। हिन्दी क् स्वयं के कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों की संख्या भी काफ़ी मात्रा में दिखाई देती है। हिन्दी कृदन्त प्रत्ययों में भाववाचक, कर्त्तृवाचक प्रत्यय अधिक हैं। संस्कृत की तरह हिन्दी में भी तद्धित प्रत्यय अधिक पाए जाते हैं। इनके अंतर्गत भाववाचक, गुणवाचक, ऊनवाचक, स्थानवाचक आदि प्रत्यय रूप

पाए गए हैं। कई शब्दों में एक से अधिक प्रत्यय भी मिलते हैं। ऐसे शब्द अधिकांशत: विशेषण शब्द हैं। फ़ारसी कृदन्त-तद्धित प्रत्यय अरबी के कृदन्त-तद्धित प्रत्ययों से ज़्यादा हिन्दी में में प्रयोग हुए हैं। ये प्रत्यय अरबी-फ़ारसी शब्दों में ही प्रयोग किए जाते हैं।

प्रत्यय की तुलना में उपसर्ग हिन्दी में कम हैं। परंतु शब्दों में जहाँ अंग्रज़ी उपसर्ग मिलते हैं वही हिन्दी में अंग्रेज़ी प्रत्ययों का प्रयोग नहीं पाया गया है। संस्कृत, उर्दू, अंग्रज़ी उपसर्ग का प्रयोग हिन्दी में हुआ है। कुछ ऐसे शब्द भी हिन्दी में हैं जिनकी निर्मिती उपसर्ग-प्रत्यय दोनों के योग से हुई है।

सार्वनामिक व्यवस्था के अंतर्गत मुख्यत: सात भेद पाए जाते हैं। सर्वनाम में लिंग का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सार्वनामिक प्रकृति को अगर देखा जाए तो मानक हिन्दी और उसकी उपभाषआओं के मूल सर्वनाम पदों में अधिकतर समानता परिलक्षित होती है।

विशेषण व्यवस्था में लिंग, वचन, कारक के प्रभाव से रूप-परिवर्तन देखाई देता है। कुछ विशेषण ऐसे भी हैं जो लिंग, वचन, कारक से भी अप्रभावित रहते हैं। विशेषण के प्रमुख चार भेद हैं। संख्यावाची विशेषण के दो भेद निश्चित और अनिश्चित हैं। निश्चित के अंदर गणनासूचक, क्रमवाचक, आवृतिवाचक, समूहवाचक, प्रत्येकबोधक संख्यावाचक विशेषण संज्ञाएँ पाए जाते हैं। परिमाणवाचक विशेषण के भी उपर्युक्त दो भेद हैं।

अव्यय के चार प्रकार हैं। क्रिया विशेषण के वर्गीकरण के तीन आधार हैं। हिन्दी क्रियाविशेषण में संस्कृत तत्सम-तद्‌भव और अरबी-फ़ारसी तत्सम-तद्‌भव क्रियाविशेषणों का प्रयोग होता है। संबंधसूचक अव्ययों को अर्थ के आधार पर तेरह और व्युत्पत्ति के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है। इनमें संस्कृत और अरबी-फ़ारसी संबंधसूचक अव्यय प्रयोग हुए हैं। हिन्दी के कईं संबंधसूचक अव्यय उर्दू और संस्कृत भाषा से आए हैं जैसे- पास(हि०), नज़दीक(उर्दू), निकट, समीप(संस्कृत)।

समुच्चयबोधक में - और, कि, पर, इसलिए, जैसा-वैसा, यदि, तो आदि अव्यय सम्मिलित हैं। विस्मयादिबोधक अव्ययों के आठ वर्ग पाए जाते हैं। इनको देखने पर लगता है कि हिन्दी और उसकी बोलियों में विस्मयादिबोधक अव्यय में पूरी तरह समानता है।

५.३ शब्द-भण्डार

अर्थप्रवृत्तितत्त्वानां शब्द एव निबन्धनम्।

तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते।।[३८]

- वाक्यपदीयम्,१/१३

अर्थात् अभिप्राय-संक्रमण(communication of ideas)मानवजीवन का अत्यंत महत्वपूर्ण अंग है। इसके साधनों में शब्द से बढ़कर कोई अन्य साधन नहीं।

'शब्द' का अर्थ बहुत व्यापक है। शब्द का संबंध 'शब्द' धातु से माना गया है जिसका अर्थ है 'ध्वनि करना', इसीलिए शब्द का मूल अर्थ मात्र 'ध्वनि' है। संस्कृत में कान के लिए 'शब्दग्रह' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें शब्द का अर्थ 'ध्वनि' ही है। 'कान' वह अवयव है जो शब्द को ग्रहण करता है। 'शब्दभेदी बाण चलाने वाला' उसे कहते हैं जो बिना देखे ध्वनि के आधार पर ध्वनि के स्रोत-स्थान पर निशाना साध लेता है। 'शब्द' का एक दूसरा अर्थ 'भाषा' भी है। वाक्य के स्तर पर उदाहरण- 'उसके शब्द तो मेरे पल्ले नहीं पड़ते, जाने कौन-सी भाषा बोलता है' में शब्द भाषा ही है। 'शब्द' का तीसरा अर्थ 'वचन', 'कथन' या 'बात' है। इसी प्रकार 'शब्द' किसी साधु-महात्मा के 'वाक्य' या 'पद' को भी कहा गया है। इसे 'सबद' या 'सब्दी' भी कहते हैं। कबीर कभी 'उपदेश' को सबद कहते हैं-

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।[३९] साखी- १.७

इस प्रकार 'शब्द' बहुअर्थी है, किन्तु आज सामान्यतः शब्द का सीमित अर्थ लेते हैं, और वह अर्थ है 'लफ़्ज' या 'वर्ड'(अंग्रेज़ी)।

५.३.१) **शब्द-परिभाषा :** शब्द की परिभाषाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई हैं। प्राचीनतम परिभाषा में आचार्य पतंजलि 'महाभाष्य' में लिखते हैं

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः।

प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः।।[४०]

अर्थात् कान से प्राप्य, बुद्धि से ग्राह्य और प्रयोग से प्रस्फुटित होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि 'शब्द' है। तात्पर्य यह है कि शब्द उच्चरित, श्रव्य, बुद्धिग्राह्य और अर्थबोधक होता है। एक अन्य स्थान पर आचार्य पतंजलि ने ही यह भी परिभाषा दी है-

प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः इत्युच्यते।।[४१]

व्यवहार में जिस ध्वनि के द्वारा पद के अर्थ की प्रतीती हो वह शब्द 'कहलाता' है।

जिसके उच्चारण से अर्थ की प्रतीति या अर्थ का बोध हो, उसे 'शब्द' कहते हैं।
'शब्दकल्पद्रुम' में शब्द की परिभाषा यह दी गई है-

श्रोत्रग्राह्यगुणापदार्थ विशेषः।।[४२]

हिन्दी के विद्वानों ने शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं, जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

डॉ.बदरीनाथ कपूर का कहना है कि "वाक्य की रचना जिन अर्थवान् ध्वनि-समूहों से होती है उन्हें 'शब्द' कहते हैं"।[४३]

राम राजा है।
मोहन घर गया।

राम, राजा, है, मोहन, घर, गया- सभी शब्द हैं।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा 'शब्द' की परिभाषा इस प्रकार देते हैं- "उच्चारण की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि है और सार्थकता की दृष्टि से शब्द।"[४४]

हिन्दी विश्वकोश में शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी गई है- "शब्द घञ् भावे यद्वा शप आक्रोशे। इति दन् पकारस्य वकार श्रोत्रग्राह्य गुणपदार्थविशेष"[४५] अर्थात् वायु में होने वाला कम्प जो किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न हो कर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है, उसे 'शब्द' कहते हैं।

हिन्दी के महान वैयाकरण पं.कामता प्रसाद गुरु अपनी व्याकरण-पुस्तक हिन्दी व्याकरण के शब्द-विचार शीर्षक के अन्तर्गत शब्द की परिभाषा करते हुए लिखते हैं- "एक या अधिक अक्षरों से बनी हुई स्वतंत्र सार्थक ध्वनि को 'शब्द' कहते हैं।"[४६]

डॉ.भोलानाथ तिवारी के अनुसार- "अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई शब्द है।"[४७]

भारतीय वैयाकरणों, भाषा वैज्ञानिकों एवम् भाषाविदों के अतिरिक्त पश्चिमी देशो में भी इस विषय पर बहुत विचार किया गया है जिनमें कुछ विद्वानों ने शब्द की परिभाषा निम्न प्रकार से दी हैं-

ब्लूमफिल्ड के अनुसार शब्द लघुतम मुक्त भाषिक इकाई है- "A minimum free form is a word."[४८]

उल्मैन की परिभाषा है- "The smallest significant unit of language."[४९] अर्थात् शब्द को भाषा की लघुतम महत्वपूर्ण इकाई कहते हैं।

मैलेट का शब्द के विषय में कथन है- "A word is the result of the association of a given meaning with a given combination of sound capable of a given grammatical use."[५०] अर्थात् 'शब्द' अर्थ और ध्वनि का वह योग है जिसका व्याकरणिक प्रयोग किया जा सके।

अंग्रेज़ी शब्दकोश में शब्द की परिभाषा यह है- "An utterance or declaration in the form of a phrace or sentence."[५१]

उपर्युक्त विवेचन से शब्द के सम्बन्ध में तीन बातें सामने आती हैं-

(१)वह वर्णों से मिलकर बनता है, (२) उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, (३) उसका कोई निश्चित अर्थ होता है। अत: इस आधार पर शब्द की परिभाषा होगी- दो या दो से अधिक वर्णों से मिलकर बनने वाली वह सार्थक ध्वनि, जिसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है, 'शब्द' कहलाता है।

५.३.२) **शब्द भण्डार : वर्गीकरण -** किसी वस्तु के विषय में मनुष्य की भावनाएँ जितने प्रकार की होती है, उन्हें सूचित करने के लिए शब्दों के उतने ही भेद होते हैं और उनके उतने ही रूपांतर भी होते हैं। भारतवर्ष में किए गए शब्दों के वर्गीकरणों में प्राचीनतम तथा वैज्ञानिक वर्गीकरण ई.पू.८वीं सदी में यास्क मुनि द्वारा किया गया है। यास्क मुनि ने अपने निरुक्त में शब्दों को चार वर्गों में विभक्त किया है-

चत्वारि पद-जातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च।[५२] (नि०१ अ० १ पा० १ खं)

यह वर्गीकरण व्याकरण या वाक्य में शब्दों के प्रयोग को दृष्टिगत कर किया गया है। इस प्रकार शब्दों के नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात चार वर्ग बनाए हैं। ई.पू. ५वीं सदी में पाणिनि ने शब्दों के प्रमुख दो वर्ग बनाए, वो हैं- सुबन्त तथा तिङन्त।[५३] नरेश मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी शब्द-समूह का विकास' में हिन्दी शब्द-समूह का वर्गीकरण[५४] इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

हिन्दी शब्द-समूह

अज्ञात व्युत्पत्तिक देशज ज्ञात व्युत्पत्तिक

नवागत परम्परागत

संस्कृत संस्कृतेत्तर

गृहीत नवनिर्मित

संकर पारिभाषिक अनुकरणात्मक

देशी	विदेशी
अन्य	अन्य
गुजराती	जर्मन
उड़िया	फ्रेंच
तेलुगु	लैटिन
तमिल	अंग्रेज़ी
पंजाबी	तुर्की
मराठी	अरबी
बंगला	फ़ारसी

हिन्दी ने संस्कृत से कुछ शब्द मूल रूप में ही ग्रहण किए हैं तो कुछ उनमें विकास या परिवर्तन लाकर ग्रहण किए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द उसने स्वयं बनाए हैं, तो दासता की लम्बी परम्परा के कारण कुछ शब्द विदेशी शासकों की भाषाओं से भी ग्रहण किए हैं। इस प्रकार हिन्दी में शब्दों का आगमन चार प्रकार से हुआ है। अत: उत्पत्ति की दृष्टि से शब्द चार ही प्रकार के हैं- १) तत्सम, २) तद्भव, ३) विदेशी, ४) देशज।

५.३.२.१) तत्सम :

"वे संस्कृत शब्द हैं, जो अपने असली स्वरूप में हिन्दी भाषा में प्रचलित हैं;"[५५] जैसे, राजा, पिता, कवि, आज्ञा, अग्नि, वायु, पुत्र, भवन, मित्र, पाप,

अर्थ, शिक्षा, इत्यादि। 'तत्सम' 'तत्' और 'सम' दो शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें 'तत्' का अर्थ है वह अर्थात् 'संस्कृत' और 'सम' का अर्थ है 'समान', अर्थात् 'संस्कृत के समान'।

५.३.२.२) तद्भव :

"वे शब्द हैं जो या तो सीधे प्राकृत से हिन्दी भाषा में आ गए हैं या प्राकृत के द्वारा संस्कृत से निकले हैं"[५६] जैसे, ओंठ(ओष्ठ), सूरज(सूर्य), दूध(दुग्ध), खेत(क्षेत्र), आग(अग्नि), चाँद(चन्द्र), हाथ(हस्त), आदि। 'तद्भव' शब्द में 'भव' का अर्थ है 'पैदा हुआ'। अर्थात् 'संस्कृत शब्दों से पैदा हुआ'।

तत्सम और तद्भव शब्द की व्यापक जानकारी के लिए यहाँ कुछ उदाहरण देना उपयुक्त ही होगा।

तत्सम		**तद्भव**	**तत्सम**		**तद्भव**
आम्र	-	आम	अक्षि	-	आँख
अद्य	-	आज	पुत्र	-	पूत
आश्चर्य	-	अचरज	प्रस्तर	-	पत्थर
कंकण	-	कंगन	श्रृंखला	-	साँकल
अंगुली	-	उंगली	यमुना	-	जमुना
अंगुष्ठ	-	अँगूठी	बिन्दु	-	बूँद
चंचु	-	चोंच	क्षीर	-	खीर
जिह्वा	-	जीभ	विवाह	-	ब्याह
वधू	-	बहु	स्वप्न	-	सपना
सप्त	-	सात	रूक्ष	-	रूखा
नव	-	नौ	किरण	-	किरन
उष्ट्र	-	ऊँट	श्वास	-	साँस
अन्त्र	-	आँत	आमलक	-	आँवला
गर्दभ	-	गधा	लक्ष	-	लाख
घृत	-	घी	कर्पूर	-	कपूर
ग्राम	-	गाँव	चैत्र	-	चैत
वाष्प	-	भाप	स्तन	-	थन
जंघा	-	जांघ	विभूति	-	बभूत

दुर्बल	-	दुबला	घोटक	-	घोड़ा
संध्या	-	सांझ	स्वर	-	सुर
कज्जल	-	काजल	ज्येष्ठ	-	जेठ
सौभाग्य	-	सुहाग	श्रृंग	-	सींग
श्रावण	-	सावन	वैर	-	बैर
पक्षी	-	पंछी	गोधूम	-	गेहूँ
स्फूर्ति	-	फुर्ती	दूर्वा	-	दूब
वार्ता	-	बात	चर्मकार	-	चमार
मिष्ट	-	मीठा	वैराग्य	-	बैराग
चर्म	-	चाम	वन्ध्या	-	बाँझ
शर्करा	-	शक्कर	सत्य	-	सच
स्कन्ध	-	कंधा	श्यामल	-	सांवला
शुष्क	-	सूखा	मस्तक	-	माथा
काक	-	काग	भक्त	-	भगत
मित्र	-	मीत	अर्ध	-	आधा
रिक्ष	-	रीछ	भिक्षा	-	भीख
दश	-	दस	हरिद्रा	-	हल्दी

५.३.२.३) विदेशी :

जो शब्द अरबी, फ़ारसी, अंग्रज़ी आदि विदेशी भाषाओं से आकर हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें 'विदेशी' शब्द कहते हैं। हिन्दी शब्द-भण्डार में विदेशी भाषा के शब्द तीन प्रकार से आते हैं-

अ) प्रथम प्रकार के वे शब्द हैं जो विदेशी भाषा में प्रयुक्त अपने रूप में बिना किसी परिवर्तन के यथावत् आ जाते हैं; जैसे- कॉलेज, फीस, आइसक्रीम, रेडियो, आदत, राह आदि। यह बात ध्यातव्य है कि हिन्दी भाषा में आकर इन शब्दों के उच्चारण में कुछ अन्तर हो सकता है, किन्तु उनका मूल रूप वही रहता है तथा उसके समझने में कठिनाई भी नहीं होती है।

आ) द्वितीय प्रकार वे विदेशी शब्द हैं जिनका प्रयोग हिन्दी भाषा में होता है किन्तु उनमें ध्वनि आदि व्यवस्था या आवश्यकता के कारण कुछ न कुछ परिवर्तन हो जाता है; यथा- बैरंग(वियरिंग), आर्दली(आर्डरली), तिजोरी(ट्रेजरी) आदि।

इ) तृतीय प्रकर के विदेशी शब्द का रूप अनूदित होकर भाषा में आता है; यथा- मनीआर्डर से धनादेश, सिलवर जुबली से रजत जयन्ती आदि।

हिन्दी में आगत विदेशी शब्दों में मुसलमानी प्रभाव से युक्त विदेशी भाषाओं के शब्द सबसे अधिक हैं। इसमें अरबी, फ़ारसी और तुर्की भाषाओं के शब्द सम्मिलित हैं। इनमें तुर्की भाषा के शब्द सबसे कम हैं। तीनों भाषाओं के बहुल-प्रयुक्त शब्दों की सूची नीचे दी जा रही है-

फ़ारसी		**अरबी**		**तुर्की**
अंगूर	चिराग	अमानत	तोहफ़ा	अरमान
अंजाम	जंग	दवा	अमीर	आक़ा
अंदाज़ा	जंजीर	दौलत	आम	कुरता
अगर	जबरदस्त	निकाह	इज़हार	कुली
अचार	जमींदार	नुकसान	इन्तज़ार	ख़ातून
आइना	जवानी	फ़कीर	इमारत	चाक
आगाह	तकिया	फ़ायदा	उमर	ज़रा
आज़ादी	तनहा	फौज	उसूल	तलाश
आज़माना	तबाही	बदला	एतबार	तुर्क
उस्ताद	दिल	बिलकुल	ऐश	तोप
कबूतर	दुकान	मालूम	औरत	नागा
कम	नमक	मुश्किल	कफ़न	नौकर
खानदान	नर्म	मेहनत	कस्बा	बहादुर
खामोश	निशाना	यतीम	कागज़	बेग़म
खुश	पहल	राहत	ख़राब	मुगल
खून	पर्दा	रिवाज	ख़्याल	लाश
गरमी	पलक	रौनक	गुलाम	लुच्चा
गिरफ़्तार	फकीर	लज्जत	गुस्सा	शेखी
गीदड़	बुखार	लिहाज़	ज़रूरत	सलूक
गुल्शन	बीमार	वर्दी	जासूस	सौगात
चमन	मज़दूर	वास्ता	जवाब	-
चादर	मेहमान	शिक़ायत	तबला	-
चापलूस	रंग	शुरू	तमाम	-

रुमाल	शहनाई	साबुन	हालत	-
वापस	सफ़ेदी	सुबह	हवा	-
वीरान	सितार	हराम	हवाई	-
शबनम	सेब	हल्का	हैरान	-
हारे		हुक्का		-

हिन्दी शब्द-समूह में यूरोपीय प्रभाव से युक्त विदेशी भाषाओं के शब्द भी पाए गए हैं। इनमें मूल-अंग्रज़ी शब्द, लैटिन, फ्रेंच, ग्रीक, जर्मन, इटेलियन, स्पैनिश, डच, नार्वेजियन, हंगेरियन, पुर्तगाली, यूनानी। अन्य प्रभाव में चीनी भाषा भी सम्मिलित की जा सकती है। "हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होने वाले लैटिन शब्दों की संख्या मूल अंग्रज़ी शब्दों से भी कई गुना है। लैटिन के अतिरिक्त फ्रेंच, ग्रीक, इटेलियन, जर्मन, स्पेनिश, डच, हंगैरियन, गैलिक तथा केल्टिक आदि भाषाओं के शब्द अंग्रेज़ी के माध्यम से ही हिन्दी में आए हैं। 'काफी' शब्द अरबी का है तो 'बनियाइन' शब्द गुजराती का है। इतना ही नहीं अंग्रेज़ी का 'इण्डिया' तथा 'ओवर' शब्द मूल रूप से संस्कृत के हैं। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार से दी जा सकती है-

सिन्धु(सं०), हिन्द(पर्सियन), इण्डस(ग्रीक), इण्डिया(अंग्रेज़ी),

उपरि(सं०), हूपर(ग्रीक), ओबर(जर्मन), ओवर(अंग्रेज़ी)।"[५७]

अंग्रज़ी- आगत मूल अंग्रज़ी शब्दों में से कुछ शब्द पुरानी अंग्रेज़ी के हैं, कुछ मध्य अंग्रज़ी के हैं तो कुछ ट्यूटोनिक के हैं। हिन्दी भाषा में प्रयुक्त इस प्रकार के शब्द निम्नलिखित हैं-

अमेरिकन	अरदली(आर्डली)	एण्ड	गर्ल	गोल	टाइम	टीम
डियर	ड्राइवर	ड्राप	ड्रिंक	थैंक	प्लेयर	फिल्म
फेल	फ्री	बुक	बादर	बेल	बोर्ड	ब्रिटिश
माई	मार्क	मिडिल	मैंन	मैच	यंग	यू
योर	रिस्ट	रूम	रोड	लव	लीडर	लेडी
वाइफ़	वाच	वाचर	वेल	शटल	शू	शेयर
स्टाम्प	स्ट्रेचर	स्प्रिंग	हाई	हाउस	हाफ	हाल
हेड	हैण्डिल					

लैटिन- लैटिन के ऐसे शब्द जो सीधे अंग्रज़ी के माध्यम से हिन्दी में आए, निम्न हैं-

अक्टूबर	आनरेरी	इन्स्पेक्टर	एसोशियेशन	कलेक्टर	कांग्रस
कैल्सियम	क्रास	डिसमिस	नामीनेशन	नार्मल	नोटिस
परमिशन	परसेन्ट	पाइप	प्रमोशन	प्राइवेट	प्रेसक्राइब
प्रोफेसर	फैमिली	वाक्स	मजिस्ट्रेट	मिक्श्चर	मिल
मैट्रिक	रजिस्टर	रिवाल्वर	रेफरी	लाइन	लाइब्रेरी
लेक्चर	लेबोरेटरी	वोट	सिरियस	सेक्रेटरी	सोडा
स्टूडैण्ट	स्ट्रीट				

वे लैटिन शब्द जो फैंच के माध्यम से हिन्दी में आ मिले, इस प्रकार हैं-

अप्रैल	अफसर	आनरेबल	आर्डर	इंचार्ज	इंजीनियर
इण्टर	इंट्रोडक्शन	एम्बुलैंस	एलबम	एसिस्टैंट	कंपाटमैंट
कप्तान	कमिश्नर	कांग्राच्यूलेशन	कांफ्रेंस	कांस्टेबल	कापी
कामन	कार	कारबन	कालम	केस	कोर्ट
कौंसिल	क्लास	ग्रेड	चान्स	जज	जनरल
जस्टिस	ट्युशन	ट्रंक	ट्रेन	डाक्टर	डायवोर्स
नम्बर	नोट	पब्लिक	पार्टी	प्रिंसिपल	प्लेग
पुलिस	पेंसिल	फीस	फैशन	बटन	बार
बोतल	मार्केट	मास्टर	मिनिट	मोटर	मेडिकल
यूनिवर्सिटी	रिपोर्ट	रेकार्ड	लेटर	साइंस	साइन
सिगनल	सूट	सोसायटी	स्टडी	स्टेज	स्पेशल

फैंच- फैंच शब्दों के विषय में बात ध्यातव्य है कि सारे फैंच शब्द सीधे अंग्रज़ी के माध्यम से हिन्दी में आए हैं। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा[५८] तथा डॉ.उदयनारायण तिवारी[५९] केवल तीन शब्दों- कारतूस, कूपन तथा अंग्रेज़- को ही फैंच मानते हैं। लेकिन नरेश मिश्र[६०] ने इसके शब्दों की सूची दी है जो इस प्रकार है-

अपील	अफ़ेयर	कंपनी	कमेटी	क्रिकेट	गार्ड
जाकेट	जेल	डिनर	पास	पेपर	प्लेटफार्म

बिस्कुट	बूट	मिसेज	मेम	म्युनिसपैलिटी	रिजर्व
रिटायर	रिमार्क	रेल	रैकिट	वार्डेन	स्टेशन
हार्मोनियम	होटेल	होस्टल			

पुर्तगाली- इस भाषा के शब्द या तो सीधे या फिर अंग्रज़ी के माध्यम से हिन्दी में आए हैं। ये शब्द निम्नलिखित हैं-

आलमारी	आलपिन	इस्पात	कमरा	गमला
गिरजा	तम्बाकू	नीलाम	पादरी	सन्तरा

उपर्युक्त शब्दों में कमरा शब्द मानक हिन्दी कोश के अनुसार लैटिन का माना गया है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा[६१] उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त निम्न शब्दों को भी पुर्तगाली का मानते हैं-

अनन्नास	अचार	आया	इस्त्री	कमीज़	कप्तान
कनिस्तर	काज	काफी	काजू	क्रिस्तान	गारद
गोभी	गोदाम	चाबी	तौलिया	तौला	पाउ(रोटी)
पिस्तौल	पीपा	फीता	फ्रांसीसी	बालटी	बिस्कुट
बुताम	बोतल	मिस्त्री	मेज़	लबादा	साया

ग्रीक- लैटिन तथा फैंच के बाद हिन्दी भाषा में अंग्रज़ी के माध्यम से आने वाले अन्य भाषाओं के शब्दों में ग्रीक का स्थान है। कुछ मूल ग्रीक शब्द इस तरह हैं-

गुड	ग्रामोफोन	जिमनास्टिक	टानिक
टेलीफोन	न्यूमोनिया	बायोलाजी	सिनेमा

कुछ ऐसे ग्रीक शब्द हैं जो लैटिन से फैंच, फैंच से अंग्रज़ी, अंग्रेज़ी से हिन्दी में पहुँचे हैं-

क्लर्क	चेयर	पेस्ट	प्रैक्टिकल	पालिसी
बाइबिल	मशीन	लालटेन	लैम्प	सीन

और, निम्न शब्द लैटिन-अंग्रेज़ी से होते हुए हिन्दी में आ मिले हैं-

इनर्जी	ड्रामा	थिओरी	थियेटर	स्कूल	हिस्ट्री

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला 'बम' शब्द भी ग्रीक का है जो लैटिन, स्पैनिश, फैंच तथा अंग्रेज़ी से होता हुआ हिन्दी में आ गया है।

यूनानी- हिन्दी भाषा में कुछ शब्द यूनानी भाषा के भी हैं, जो इस प्रकार हैं-

अफलातून अफीम कानून दाम तिलिस्म

जर्मन- इस भाषा के शब्द भी लैटिन, फैंच तथा ग्रीक भाषा के शब्दों समान हिन्दी में आए हैं। इसके प्रमुख शब्द हैं-

गेम तौलिया पार्क वेग लक

अन्य भाषाओं में इटेलियन, स्पैनिश, डच, नार्वेजियन, हंगेरियन तथा चीनी भाषाओं के शब्द भी हैं लेकिन जिनकी संख्या एक से पाँच तक ही है। वे इस प्रकार हैं-

इटेलियन	**स्पैनिश**	**डच**	**नार्वेजियन**	**चीनी**	**हंगेरियन**
गजट	डिस्पैच	बण्डल	ट्रस्ट	चाय(चा)	कोच(कोकस)
पतलून	सिगरेट	क्लास	डाउन	तूफान(ताई फू)	
पिस्तौल	बैरक			लीची(लीचू)	
बैलून					
बैंक					
सोडा					
बैरक					

उपर्युक्त रेखांकित शब्दों के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं कि ये शब्द इन्हीं भाषाओं के हैं। उदाहरण के लिए 'तूफान' शब्द के सम्बन्ध में कुछ विद्वान इसे अरबी का मानते हैं तो कुछ इसे चीनी का। 'बैरक' शब्द के बारे में भी यही बात है कि कुछ इसे इटेलियन भाषा में रखते हैं तो कुछ स्पैनिश में इसे स्थान देते हैं। इन विभिन्न मतों से हटकर हमारा उद्देश्य यहाँ केवल यही कहना है कि ऊपर उल्लेखित सारे शब्दों का व्यवहार हम हिन्दी भाषा एवं साहित्य के अन्तर्गत करते हैं।

५.३.२.४) देशज :

"जो शब्द तत्सम, तद्भव और विदेशी कुछ भी न होकर

देश में ही बने और प्रचलित हुए हैं, उन्हें 'देशज शब्द' कहते हैं।"[६२] जैसे- पेट, लोटा, चूहा, पगड़ी, अटकल, तेंदुआ, खिड़की, धूआ, ठेस इत्यादि। पं०कामता प्रसाद गुरु के अनुसार "देशज वे शब्द हैं जो किसी संस्कृत(या प्राकृत) मूल से निकले हुए नहीं जान पड़ते और जिनकी व्युत्पत्ति का पता नहीं लगता। ऐसे शब्दों की संख्या बहुत थोड़ी है।"[६३]

देशज शब्द देश की पुरानी बोलियों से आए या जनता द्वारा आवश्यकतानुसार बना लिए गए हैं। इसीलिए इनको 'लोक प्रसिद्ध' और 'प्रचलित' नाम भी दिया जाता है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा ने ऐसे शब्दों के लिए 'देशी' शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है कि 'प्राकृत वैयाकरण जिन प्राकृत शब्दों को संस्कृत शब्द-समूह में नहीं पाते थे, उन्हें देशी अर्थात् अनार्यभाषाओं से आये हुए शब्द मान लेते थे।"[६४] डॉ.रामविलास शर्मा 'देशी' शब्द पर आपत्ति जताते हुए कहते हैं कि "जो शब्द संस्कृत और प्राकृत से सिद्ध न हों, उन्हें देशी नाम देने से ऐसा बोध होता है कि स्वयं संस्कृत के शब्द परदेशी हैं। प्राचीन वैयाकरणों का यह आशय न था। देशी शब्द शिष्ट जनों से भिन्न साधारण जनों की भाषा के लिए प्रयुक्त होता था।"[६५] अतः भोलानाथ तिवारी ने ऐसे शब्दों के लिए ' अज्ञातव्युत्पत्तिक'[६६] शब्द का इस्तेमाल किया है।

	देशज शब्द
भोज्य पदार्थों के नाम-	जलेबी, मलाई, सुथनी
आभूषणों के नाम-	भोगली
लताओं-वृक्षों के नाम-	एला, बबूल
पशुओं के नाम-	खच्चर, तेंदुआ, चूहा
खेलों के नाम-	कबड्डी
मनुष्य-सम्बन्धित नाम-	बुआ, महरी
वस्तुओं के नाम-	पुआल, रुई, लट्टू
विशेषण-	ऊल-जलूल, लंठ
क्रिया-	लथेड़ना, ललकारना

इनके साथ खादी, गड़बड़, घपला, घूँट, चंपत, झंझट, टट्टू, ठेठ, ठेस, थोथा, धब्बा, पेठा, पेड़, भर्ता आदि देशज शब्दों की श्रेणी में आते हैं।

विदेशी शब्दों की तुलना में हिन्दी पर भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव कम दिखाई देता है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा कहते हैं- "बंगाली, मराठी, पंजाबी आदि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं से आए हुए शब्द हिन्दी में बहुत कम है, क्योंकि हिन्दी-भाषी लोगों ने संपर्क में आने पर भी इन भाषाओं को बोलने का कभी उद्योग नहीं किया। इन अन्य भाषाओं के शब्द-समूह पर हिन्दी की छाप अधिक गहरी है।"[६७] तेलुगू आदि द्राविड़ या मुँडा, कोल आदि अन्य अनार्यभाषाओं से आधुनिक काल में आए हुए शब्द हिन्दी में बहुत कम हैं। द्राविड़ भाषाओं में आए हुए शब्दों का प्रयोग हिन्दी में प्राय: बुरे अर्थों में होता है। द्राविड़ 'पिल्लै' शब्द का अर्थ पुत्र होता है, वही शब्द हिन्दी में 'पिल्ला' होकर कुत्ते के बच्चे के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

कई विद्वानों ने देशी व देशज दो भिन्न मानाकर उनकी अलग-अलग व्याख्या की है, जिसे देखने पर यह ज्ञात हो जाता है कि देशी व देशज एक ही वर्ग ही के नामकरण हैं। अत: किसी प्रकार का भ्रम न हो इसलिए यहाँ विद्वानों द्वारा की गई 'देशी' शब्द की व्याख्या दी जा रही है। डॉ.केशवदत्त रुवाली ने देशी शब्द की विवेचना इस प्रकार की है- "प्राकृत व्याकरणकारों ने तत्सम और तद्भव से भिन्न शब्दों को देशी कहा है। आज यह मत बहुत कुछ स्थिर हो गया है कि आर्य जाति भारत में मध्य एशिया से आई थी। संस्कृत भाषा भी उन्हीं के साथ यहाँ पहुँची। विद्वानों का कहना है कि संस्कृत इस देश की भाषा न होकर भारतीय वर्ग के आर्यों द्वारा अपने साथ लाई गई भाषा है, शायद इसलिए प्राकृत वैयाकरणों ने संस्कृत के शब्दों अथवा तद्भव शब्दों को देशी नहीं कहा। देशी से उनका मतलब यहाँ की आदिवासी जातियों की भाषा से संस्कृत में आगत शब्दों से है। कोल और द्रविड़ भारत के आदिवासी माने गए हैं, जिनकी भाषा से संस्कृत में ताम्बूल, कदली, पिंड. मयूर, कुंडल, चन्दन, कोण इत्यादि शब्द आ गए थे। हिंदी भाषाविज्ञान में देशी शब्द किंचित् भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। भारत देश की किसी भी प्राचीन अथवा आधुनिक भाषा से जो शब्द हिन्दी में आ गए हैं वे देशी हैं, जैसे- द्रविड़ से मुकुट, चंदन, चूड़ी, ऊखल; तमिल से खोपा; मराठी से चालू; बंगला से गल्प; पंजाबी से सिक्ख। ध्वनि के अनुकरण पर बने शब्द खटपट, झंकार, छलछल, खर्राटा, टपटप, टनटन, घर्घर, चरचर, चुटकी, सरसर, काँय-काँय, म्याउँ-म्याउँ इत्यादि भी देशी के अंतर्गत है।"[६८]

<u>अनुकरणवाचक शब्द</u> : पदार्थ की यर्थाथ कल्पित ध्वनि को ध्यान में रखकर जो शब्द बनाए गए हैं वे 'अनुकरणवाचक' शब्द कहलाते हैं; जैसे- खटखटाना, धड़ाम, चट आदि। ऐसे शब्द प्राय: ध्वनि के अनुकरण के आधार पर, दृश्य के अनुकरण के आधार

पर अथवा कभी-कभी वही शब्द वस्तु या व्यापार के द्योतन के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे- खनक, झनक, ठनक, भनक, कांय-कांय, टुटरूँ टूँ, यूँ-यूँ, खुसुर-फुसुर, बक-बक, भड़भड़, दहाड़, डकार, फटफटिया, धड़धड़िया, सीटी, भोंपू, डगमगाना, डुगडुगी, ढिंढोरा, बिदकना, धक्का, पुचकारना, खसखसा, खिलखिलाना, गुनगुनाना, घनन-घनन, चटपट, टुनटुनाता, धुकधुकी, पड़ापड़, फुफकारना, बरबराना, भभक, मचकना, रुनझुन, सटर-पटर, सन्-सन्, हकबकाना, हक्का-बक्का, हाहा, हिनहिनाना, आदि।

इनके अतिरिक्त कुछ विद्वान अन्य भाषाओं से निरन्तर बढ़ते सम्पर्क से हिन्दी भाषा में बनने वाले नए-नए शब्दों के आधार पर शब्द का एक और भेद स्वीकार करते हैं- **संकर शब्द**। जो शब्द दो अलग-अलग भाषाओं के शब्दों के मेल से बनकर प्रयोग में आते हैं, उन्हें 'संकर शब्द' कहा जाता है। जैसे-

खंडहर -	खंड + घर	(सं० + हि०)
दशहरा -	दश + हरा	(सं० + हि०)
सहेली -	सह + एली	(सं० + हि०(प्रत्यय)
रसेदार -	रस + दार	(सं० + फा०(प्रत्यय)
लुकदार -	लोक(चमकना) + दार	(सं० + फा०(प्रत्यय)
आवभगत -	आवना-आना + भक्ति	(हि० + सं०)
पैताना -	पांय + स्थान	(हि० + सं०)
कानाफूसी -	कान + फूसी	(हि० + अनु०(अनुकरणात्मक)
तिमंजिला -	तीन + मंजिल	(हि० + अ०)
फटेहाल -	फटना + हाल	(हि० + अ०)
अकड़बाज़ी -	अकड़ + बाज़ी	(हि० + फा०)
घूसखोर -	घूस + खोर	(हि० + फा०)
डंडाशाही -	डंडा + शाही	(हि० + फा०)
थकामांदा -	थका + मांदा	(हि० + फा०)
अजायबघर -	अजायब + घर	(अ० + हि०)
मस्खरापन -	मस्खरः + पन	(अ० + हि०(प्रत्यय)
शौकीन -	शौक + ईन	(अ० + ईन(प्रत्यय)
आदमज़ाद -	आदम + ज़ाद	(अ० + फा०)
कैदखाना -	कैद + खाना	(अ० + फा०)
ग़मग़ीन -	ग़म + ग़ीन	(अ० + फा०)
मिज़ाज़पुर्सी -	मिज़ाज़ + पुर्सी	(अ० + फा०)

संदूकची -	संदूक + ची	(अ० + त०(प्रत्यय)
बंदीगृह -	बंदी + गृह	(फा० + सं०)
दिलजला -	दिल + जलना	(फा० + हि०)
बेसमझी -	बे + समझी	(फा० + हि०)
कोहनूर -	कोह + नूर	(फा० + अ०)
नाकदरी -	ना + कद्र	(फा० + अ०)
बदहवास -	बद + हवास	(फा० + अ०)
रंजोग़म -	रंज + ग़म	(फा० + अ०)
संगमर्मर -	संग + मर्मर	(फा० + अ०)
नौकरी -	नौकर + ई	(तु० + हि०(प्रत्यय)
नौकरशाही -	नौकर + शाही	(तु० + फा०)
जेलखाना -	जेल + खाना	(अं० + फा०)
नम्बरदार -	नम्बर + दार	(अं० + फा०)
लेक्चरबाज़ी -	लेक्चर + बाज़ी	(अं० + फा०)
पुलिसवाला -	पुलिस + वाला	(अं० + हि०(प्रत्यय)
रेलगाड़ी -	रेल + गाड़ी	(अं० + हि०(प्रत्यय)
लीडरी -	लीडर + ई	(अं० + हि०(प्रत्यय)
ढकोसलेवाला -	ढंग + कौशल + वाला	(हि०+ सं०+ हि०)

इस देखते हुए डॉ.उदयनारायण तिवारी के शब्दों में अगर कहा जाए तो कोई गलत न होगा कि - "वर्तमान रूप में हिन्दी एक समन्वयात्मक भाषा है तथा इसके व्याकरण का ढाँचा बहुत कुछ वर्नाक्यूलर हिन्दोस्तानी अथवा खड़ी-बोली या नागरी-हिन्दी पर अवस्थित है।"[६९]

इस अध्ययन के बाद यह बात सामने आती है कि प्राचीन काल से ही शब्दों के वर्गीकरण पर विचार होता रहा है, किन्तु नवनिर्मित तथा विदेशी शब्दों के आगमन के कारण पहले के वर्गीकरण द्वारा हिन्दी के वर्तमान शब्द-समूह को वर्गीकृत करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव-सा हो गया है। हिन्दी शब्द-भण्डार को सर्वमान्य चार खण्डों- तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी- में ही विभाजित किया गया है। इनसे अलग अन्य खण्डों के निर्माण में मतभेद उभरते हैं।

जहाँ तत्सम शब्दों का सम्बन्ध है हिन्दी साहित्य संस्कृत तत्सम शब्दों का उपयोग हुआ है किन्तु उतना नहीं जितना तद्भव शब्दों का। रचनाकार सामान्य जनता तक पहुँचने के लिए सामान्य जन भाषा का प्रयोग करता है। परन्तु कुछ परम्परागत विद्वान तत्समता पर ज़ोर देते हैं।

विदेशी शब्दों को देखने पर लगता है कि आज हम दैनिक व्यवहार में जिनें हम अंग्रेज़ी शब्द समझते हैं वे अधिकांशतः लैटिन, फ़्रेंच, पर्तुगाली, ग्रीक आदि भाषाओं के शब्द हैं। हिन्दी या अंग्रेज़ी बोलते-लिखते समय हम इनके शब्दों का प्रयोग करते हैं।

अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग हम ध्वनियों या आवाज़ों को व्यक्त करने के लिए करते हैं।

संकर शब्दों का निर्माण दो या अधिक भाषा के शब्दों से मिलकर हुआ है। अतः इन्हें संकर शब्द कहना ही उचित है। यह भिन्न वर्ग ही है। संकर शब्दों का निर्माण हम जाने-अनजाने कर चुके हैं जो हिन्दी शब्द-भण्डार की वृद्धि का एक कारण है तथा हिन्दी में सशक्त अभिव्यक्ति का ज़रिया भी है।

देशज या देशी शब्दों के बारे में यही कहा जा सकता है कि इनका उद्भव चाहे जैसे भी हुआ हो यह सत्य है कि ये हिन्दी भाषा बोली एवं साहित्य में रच बस चुके हैं। अनुकरणात्मक और संकर शब्द की उत्पत्ति बोली में सरलता के कारण हुआ-सा लगता है।

५.४) वाक्यगत विशेषताएँ

५.४.१) वाक्य :

वाक्य की मीमांसा सरल नहीं है। एक भाषा समूह द्वारा प्रयुक्त वाक्यों की गिनती असंभव है। यही स्थिति एक साहित्यिक भाषा विशेष के सन्दर्भ में भी पायी जाती है। इसीलिए वाक्य मीमांसा की इति मिलती नहीं है। फिर भी भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों ने वाक्य को समझने और समझाने का प्रयत्न किया है। इन प्रयत्नों के बीच में वाक्य की परिभाषाएँ भी उभरी हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार-

वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।[७०]

महर्षि जैमिनी के अनुसार-

अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षंचेद्विभागे स्यात्।।२।१।४६।।[७१]

भारतीय आचार्यों में भर्तृहरी ही प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने वाक्यपदीय में वाक्य का विस्तृत विवेचन किया है। वाक्य के बारे में वे कहते हैं-

आख्यातशब्दः सङ्घातो जातिः सङ्घातवर्तिनी।
एकोऽनवयवः शब्दः क्रमो बुद्धयनुसंहृतिः ।।१।।
पदमाद्यं पृथक् सर्वं(सर्वपदं) साकाङ्क्षमित्यपि।
वाक्यं प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायवादिनाम् ।।२।।[७२]

अर्थात्

क्रिया पद को वाक्य कहते हैं
क्रिया-युक्त कारक आदि के समूह को वाक्य कहते हैं।
क्रिया एवं कारक आदि समूह में रहने वाली जाति वाक्य है।
क्रियादि समूह गत एक अखण्ड शब्द(स्फोट) वाक्य है।
क्रियादि-पदों के क्रम विशेष को वाक्य कहते हैं।
क्रियादि के बुद्धगत समन्वय को वाक्य कहते हैं।
साकाँक्ष प्रथम पद को वाक्य कहते हैं।

साकाँक्ष पृथक-पृथक सभी पदों को वाक्य कहते हैं।

पाश्चात्य भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य की जो परिभाषाएँ प्रस्तुत की है, उनमें वाक्य गठन, वाक्य के तत्व और उनकी विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। कुछ प्रमुख पाश्चात्य विद्वानों की वाक्य सम्बन्धी परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

ए.एच.गारडिनर के अनुसार- "A sentence is a word or set of words revealing an intelligible purpose"[७३] अर्थात् वाक्य एक पद अथवा पदों का समुच्चय है, जिसके माध्यम से उद्देश्य की अभिव्यक्ति होती है।

दीमशित्स का कहना है- "वाक्य वाक्-क्रिया की व्याकरणिक रूपों तथा अनुतान से युक्त न्यूनतम इकाई है।"[७४]

अरस्तु का मानना है- "A sentence is a composite significant sound of which certain parts of themselves signify themselves, for every sentences is composed from nouns and verbs but there may be sentence without verb"[७५] अर्थात वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है जिससे किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक वाक्य संज्ञा और क्रिया से बनता है, किन्तु क्रिया के बिना भी वाक्य रचना हो सकती है।

उक्त परिभाषाओं के आलोक में यह स्पष्ट है कि वाक्य न्यूनतम रूप में एकशब्दीय है तो महत्तर रूप में यह अनेक पदों, वाक्यांशों अथवा अन्य अव्यय रूपों के योग से संरचित बृहत्तर रूपीय भी है।

वाक्य की इस रूप सम्बन्धी व्यवस्था का अध्ययन ही वाक्य विवेचन के अन्तर्गत अभिप्रेत है। इस सम्बन्ध में बेकर का कथन उल्लेखनीय है- By the syntax of a language, we mean the body of rules that speakers of the language follow when they combine words into sentences."[७६]

मानक हिन्दी कोश में वाक्य-विन्यास की परिभाषा यह है- "वाक्यों, शब्दों या पदों को यथा-स्थान रखना।"[७७]

सिद्धान्त और प्रविधियों के साथ-साथ वाक्य रूपावलियों और वाक्य प्रकारों का भी अध्ययन इस विवेचन के अन्तर्गत समीकृत होता है। इस संदर्भ में हिन्दी के प्रमुख भाषा-वैज्ञानिक डॉ.भोलानाथ तिवारी का निम्न कथन भी उल्लेखनीय है-

"वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द होते हैं तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ठ संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है। साथ ही इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक क्रिया का भाव अवश्य होता है।"[७८]

इस प्रकार वाक्य विवेचन संपूर्ण वाक्य संरचना प्रविधियों, सिद्धान्तों और प्रकारों के अनुशीलन का एक महत्तर अनुसन्धान बन जाता है।

५.४.२) वाक्य के तत्व :

वाक्य के कुछ आवश्यक तत्व हैं। संस्कृत आचार्यों ने इन पर विस्तार से विचार किया है। तदनुसार प्रमुखता की दृष्टि से इनकी संख्या ६ है- अन्विति, सार्थकता, आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति एवं पदक्रम।

अ) **अन्विति :** वाक्य के पदों में लिंग, वचन, कारक आदि की दृष्टि से सम्बन्ध की स्थापना अन्विति है। अंग्रेज़ी में इसे congruence, concord, agreement कहते हैं।

आ) **सार्थकता :** पद तभी वाक्य बनते हैं जब वे सार्थक हों। शब्द का सार्थक प्रयोग ही सार्थकता है।

इ) **आकांक्षा :** आकांक्षा का अर्थ है- इच्छा। वाक्य में जब अर्थ की अपूर्णता की स्थिति होती है तब श्रोता का मन अर्थ की पूर्णता की आकांक्षा करता है। इसे जिज्ञासा भी कह सकते हैं।

ई) **योग्यता :** वाक्य में प्रयुक्त शब्दों में अपने भाव एवं विचारों को वहन करने की योग्यता होनी चाहिए। योग्यता से पदों में अन्वय जुड़ता है। उदा. आकाश उड़ता है- वाक्य में शब्द तो सार्थक हैं लेकिन आकाश उड़ नहीं सकता इसलिए शब्दों में परस्पर योग्यता की कमी है अत: यह

सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है। उलटबाँसी भले ही हो। पदों के अन्वय में दो प्रकार से बाधा पड़ती है i) अर्थमूलक, ii) व्याकरण मूलक।

उ) **आसत्ति :** इसे सन्निधि भी कहा जाता है यानी समीपता। वाक्य में जितने भी पदों का प्रयोग हो उनका उच्चारण लगातार तथा क्रमबद्ध रूप में हो। अर्थात् वाक्य शब्द, देश काल के अनुसार पास होना चाहिए। उदा. मुझे घर जाना है- वाक्य के प्रारम्भिक दो पद मुझे घर पहले दिन बोले गए तथा जाना अगले दिन या कुछ घण्टे बाद तथा है और भी बाद में बोला जाए तो वाक्य नहीं बनेगा और न इससे कोई अर्थ निकलेगा।

ऊ) **पदक्रम :** वाक्य में कर्ता, कर्म, समानाधिकरण, पूरक, क्रियाविशेषण, क्रिया, सहायक क्रिया आदि में निश्चित क्रम होता है। जैसे- 'वह कलम देता मुझे है'- वह मान्य पदक्रम नहीं है। बल्कि 'वह मुझे कलम देता है'- में जो पदक्रम है उसे अधिक व्यावहारिक मान्यता है।

वाक्य के तत्वों के साथ-साथ वाक्य के दो अंग माने जाते हैं- उद्देश्य(subject) और विधेय(predicate)। जिस वस्तु के विषय में कुछ कहा जाता है, उसे सूचिक करनेवाले शब्दों को 'उद्देश्य' कहते हैं; जैसे, 'आत्मा अमर है', 'घोड़ा दौड़ रहा है', इन वाक्यों में 'आत्मा', 'घोड़ा' उद्देश्य हैं, क्योंकि इनके विषय में कुछ कहा गया है अर्थात् विधान किया गया है। उद्देश्य के विषय में जो विधान किया जाता है, उसे सूचित करनेवाले शब्दों को 'विधेय' कहते हैं, जैसे उपर्युक्त वाक्यों में क्रमशः 'अमर है', 'दौड़ रहा है', ये विधान किए गए हैं; इसलिए इन्हें विधेय कहते हैं।

५.४.३) वाक्य के लक्षण :

वाक्य तत्व और वाक्य अंगों के अलावा वाक्य लक्षणों पर भी अनेक आचार्यों ने विचार किया है। रूद्रट के वाक्य लक्षणों के अनुसार-

अन्यूनाधिकवाचकसुक्रमपुष्टार्थशब्दचारुपदम्।

क्षोदक्षममक्षूणं सुमतिर्वाक्यं प्रचुञ्जीत ।। २-८ ।।[७९] -काव्यालङ्कार

अर्थात् वह वाक्य आदर्श है, जिसमें पद न न्यून हों और न अधिक; जिसमें पदक्रम सुन्दर हो; जिसमें पुष्टार्थ व्यक्त करनेवाले शब्द हों; जिसमें पदों की योजना हो; जो

प्रेष्णीयता में समर्थ हो तथा जो सर्वत: पूर्ण हो।

वाक्य विश्लेषण के लिए भाषा विज्ञान के क्षेत्र में अनेक पद्धतियों का आविष्कार बीसवीं शताब्दी के तृतीय और चतुर्थ दशक की देन है। प्रमुख रूप से तीन पद्धतियों का अधिक महत्व रहा है-

अ) संरचनात्मक विश्लेषण
आ) विपरिवर्तक व्याकरण रीति
इ) निष्पादक व्याकरण पद्धति

कुछ विचारकों ने निष्पादक व्याकरण और विपरिवर्तक व्याकरण की पद्धतियों के समन्वय से विपरिवर्तक निष्पादक व्याकरण पद्धति की स्थापना की है। इनके अतिरिक्त किसी भी वाक्य का विश्लेषण इन चारों स्तरों पर भी किया जा सकता है-

अ) संरचनापरक
आ) प्रकार्यपरक
इ) लौकिक अर्थपरक
ई) सूचनापरक

उक्त विश्लेषणों की अलग-अलग विशेषताएँ हैं। किसी भी एक पद्धति पर वाक्य का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रस्तुत विश्लेषण में एक समन्वित पद्धति के आधार पर अध्ययन सम्पन्न करने का प्रयास है।

अ) संरचनापरक विश्लेषण :- वाक्य के विभिन्न घटकों की संरचनात्मक कोटियों का निर्धारण किया जाता है, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि। उदा० 'राम स्कूल से अभी-अभी आया।'

राम = संज्ञा
स्कूल = संज्ञा
से = परसर्ग
अभी-अभी = क्रिया-विशेषण
आया = क्रिया

आ) प्रकार्यपरक विशेषण :- घटकों का निर्धारण वाक्य में उनकी व्याकरणिक भूमिकाओं के आधार पर किया जाता है, जैसे- कर्ता, कर्म, पूरक, क्रिया, क्रिया-विशेषण, क्रिया आदि ये एक प्रकार की कारक कोटियाँ हैं। इनका अस्तित्व केवल वाक्य के ही अन्तर्गत होता है। उदा०

'लोगों ने राम को अपना नेता चुना।'

लोगों ने = कर्ता
राम को = कर्म
अपना नेता = पूरक
चुना = क्रिया

इ) लौकिक अर्थपरक :- घटकों का निर्धारण वास्तविक जगत्कमें उनकी भूमिकाओं के आधार पर होता है, जैसे अभिकर्ता(सक्रिया कर्ता), अनुभव कर्ता या भोक्ता, लक्ष्य(कर्म), परिवेश(क्रिया-विशेषण आदि)। उदा०

i) राम को चोट लगी।

राम को = अनुभव कर्ता
चोट लगी = क्रिया

ii) राम फल खा रहा है।

राम = अभिकर्ता
फल = लक्ष्य
खा रहा है = क्रिया

ई) सूचनापरक विश्लेषण:- कुछ भाषा वैज्ञानिक text को या प्रकरण को भाषा की मूल इकाई मानते हैं। वक्ता वाक्य को संदेश के रूप में ग्रहित करता है। इसलिए यह कभी वाक्य के किसी घटक को वाक्य के पूर्व, मध्य, अंत में लगाता है। सूचना के स्तर पर दो घटकों की स्थिति मानी जाती है- ज्ञात सूचना और नई सूचना।

उदा० राम आज नहीं आएगा।

राम = ज्ञात सूचना
आज नहीं आएगा = नई सूचना

इस विश्लेषण के अन्तर्गत वाक्य के दो खण्ड माने जाते हैं- थीम और रीम।

उदा०   सीमा किताब पढ़ रही है।

थीम	रीम
सीमा	किताब पढ़ रही है।

वाक्य में प्रारंभ में जो भी घटक प्रस्तुत होता है वह 'थीम' कहलाता है और शेष अंश 'रीम' कहलाता है।

५.४.४) **वाक्य साँचे :**

सामान्यतया वाक्य दो प्रकार के होते हैं। एक तो मूल वाक्य और दूसरे उनके विपरिवर्तन से निष्पन्न वाक्य। बीजवाक्य, मूलवाक्य या आधार वाक्य के घटक पदबन्ध होते हैं, जो भाषा की वाक्य नामक इकाई में निहित इकाइयाँ हैं। इन पदबन्धों की रचना विखंडनहीन मुक्तरूप वाले सरल शब्दों तथा विखण्डनीय बद्धरूप वाले जटिल शब्दों से होती है।

मूलवाक्य के दो भाग या दो खण्ड होते हैं-

उद्देश्य भाग - इसे 'संज्ञा पदबन्ध' भी कहते हैं। उद्देश्य का कार्य करने वाला अंश ही रचना की दृष्टि से संज्ञापदबन्ध होता है।

विधेय भाग - उद्देश्य के विषय में विधान करनेवाला शब्द 'विधेय' कहलाता है।
उदा.- 'पानी गिरा।'

इस वाक्य में 'पानी' शब्द उद्देश्य और 'गिरा' विधेय है। जब वाक्य में दो ही शब्द रहते हैं, तब उद्देश्य में संज्ञा अथवा सर्वनाम और विधेय में क्रिया आती है। अत: विधेय को क्रियापदबन्ध भी कहते हैं, क्योंकि विधेय का कार्य करने वाला अंश ही रचना की दृष्टि से क्रियापदबन्ध कहलाता है, परन्तु इस में संज्ञापदबन्ध भी होता है, यद्यपि वह उद्देश्यवाले संज्ञापदबंध से भिन्न होता है। वाक्य में उद्देश्य और विधेय अंश संज्ञापदबंध और क्रियापदबंधों के योग से संपन्न होते हैं-

वाक्य = संज्ञापदबंध + क्रियापदबंध

इस योग में अन्य योजकों का भी महत्व रहता है। इस आधार पर आरेख प्रस्तुत हैं जो

वाक्य के विभिन्न पदबंधों के कार्य को स्पष्ट करती हैं-

१) रमा बगीचे में लेटी हुई किताब पढ़ रही है।
उद्देश्य विधेय
क्रिया विशेषण कर्म समापिका क्रिया

२) रमा बगीचे में लेटी हुई लड़की को नहीं जानती।
उद्देश्य विधेय
कर्म समापिका क्रिया
विशेषण विशेष्य

प्रथम आरेख में क्रियाविशेषण पदबंध विधेय का कार्य करनेवाले पदबंध का घटक है। दूसरे आरेख में विशेषण पदबंध पहले कर्म का कार्य करनेवाले संज्ञापदबंध का घटक है, तो उसके बाद कर्म के घटक के रूप में विधेय का कार्य करनेवाले पदबंध का घटक है। क्रियापद या विधेय भाग का विखण्डन करके क्रियापद, क्रियाविशेषण, निषेधवाचक, संज्ञापदबंध आदि उप-पदबंध निकाले जा सकते हैं। पदबंधों के बारे में यमुना काछु ने विस्तार से विवेचना की है। उन्होंने हिन्दी वाक्य संरचना की व्याख्या करते हुए पदबंध संरचना के नियमों को उल्लेखित किया है[८०],जिससे वाक्य के प्रजनन प्रक्रिया को जाना जा सकता है। यहाँ पदबंध की चर्चा इसलिए आवश्यक है कि वाक्य में पदबंध पदक्रम द्वारा वाक्य-साँचों के रूपों को समझने में मदद करते हैं। हिन्दी के मूल वाक्य संरचना को इस तरह समझा जा सकता है-

वाक्य

उद्देश्य, संज्ञापदबंध विधेय

संज्ञापदबंध क्रियापदबंध

क्रियाविशेषण क्रिया

मुख्य क्रिया सहायक क्रिया

वाक्य संरचना के विश्लेषण मूलक अध्ययन में मूलविस्तार, क्रम, सक्रियता, मैत्री, व्यवस्था, निकटस्थ अवयव तथा रूपान्तरण खण्डीय तत्व कहलाते हैं। इनमें क्रम का विशेष महत्व है। इससे हम वाक्य-साँचों के रूप को जान सकते हैं। हिन्दी भाषा वाक्य में सबसे अधिक स्थिर अंश क्रिया है। केवल अर्थमूलक पूर्णांशों का ही स्थानान्तरण संभव है। उद्देश्य और विधेयांश लेखक के मन्तव्यानुरूप एक दूसरे का स्थान लेने में सक्षम होते हैं। सामान्यतया क्रम व स्थानान्तरण इस प्रकार होते हैं-

साधारण वाक्य :

बीजवाक्य-	i) कर्ता + क्रिया	:	बालक सोता है।
	कर्ताविस्तार	:	छोटा बालक सोता है।, आदि
	क्रियाविस्तार	:	बालक सोता ही है।, आदि

किसी भी भाषा में अगठित वाक्यों की रचना संभव है, लेकिन वाक्य-विश्लेषण के किसी एक आधार पर इन वाक्यों को कुछ खास कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि वाक्य-विश्लेषण के पहले बताए चारों आधारों पर यह वर्गीकरण संभव है। परंपरागत रूप से वाक्यों को अकर्मक, सकर्मक, द्विकर्मक, कर्तृपरक आदि वर्गों में विभाजित करने की पद्धति व्याकरणिक प्रकार्यों पर आधारित है। प्रकार्य के आधार पर वाक्य-कोटियाँ इस प्रकार दर्शायी जातीं हैं-

i) कर्ता + क्रिया - रमेश हँसता है।

ii) कर्ता + कर्म + क्रिया - रमेश फल खाता है।

iii) कर्ता + कर्म ^{२} + कर्म ^{१} + क्रिया - रमेश राधा को किताब देता है।

(कर्म ^{२} को प्राप्तिकर्ता भी कहा जाता है।)

वाक्य के इस प्रकार के प्रकार्यात्मक ढाँचे को 'वाक्य-साँचा' कहते हैं। भाषा में वास्तविक वाक्यों की संख्या अगणित हो सकती है, लेकिन वाक्य-साँचों की संख्या सीमित और निश्चित होती है। इसी सिलसिले में वाक्य और वाक्य-साँचे के बीच अन्तर को जानना अनावश्यक न होगा-

वाक्य	वाक्य-साँचा
वाक्य विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है।	वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा है, जिसमें उपयुक्त शब्दों को आरोपित कर अगणित वाक्य बनाए जा सकते हैं।
वाक्य का एक मूर्त और निश्चित अस्तित्व होता है।	वाक्य-साँचा उसका एक अमूर्त और प्रतीकात्मक ढाँचा होता है।
वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संख्या सीमित होती है।	इसके विभिन्न घटकों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले संभावित शब्दों की संख्या असीमित हो सकती है।

५.४.४.१) वाक्य-साँचों की आन्तरिक संरचना के प्रमुख नियम :

अ) प्रकार्य स्थान : वाक्य-साँचे में प्रत्येक घटक के प्रयोग का एक निश्चित स्थान होता है जिसे 'प्रकार्य-स्थान' कहते हैं। प्रत्येक प्रकार्य-स्थान पदबंध स्तरीय होता है और एक पदबंध का प्रतिनिधित्व करता है। वाक्य-साँचे के निर्धारण में पदबंध से नीचे की किसी अन्य कोटि को नहीं लिया जाता। प्रकार्य-स्थान संज्ञा पदबंध का भी हो सकता है, जैसे 'राम का बड़ा भाई', क्रिया-विशेषण पदबंध का भी जैसे 'कमरे में', क्रिया पदबंध का भी जैसे, 'खा रहा है' हो सकता है। स्वतंत्र विशेषण पदबंध का भी जैसे 'मोहन बहुत बीमार है', लेकिन संज्ञा पदबंध में जुड़े विशेषण पदबंध का नहीं जैसे 'काला घोड़ा' में काला।

आ) वाक्य-विन्यासात्मक संबंध : प्रत्येक वाक्य-साँचे की एक निश्चित वितरण-व्यवस्था होती है और उसमें विभिन्न घटक एक दूसरे से व्याकरणिक संबंधों के ज़रिए जुड़े रहते हैं अर्थात् उनमें एक प्रकार का कारकीय संबंध होता है और घटक वाक्य में एक के बाद एक क्रम से आते हैं। इस प्रकार के संबंध को 'रेखीय' या 'वाक्य-विन्यासात्मक संबंध' कहते हैं, जैसे वाक्य में कर्ता-कर्म-क्रियाविशेषण-क्रिया के बीच संबंध। वाक्य-साँचों के घटकों में एक व्यावहारिक सीमा तक रेखीय विस्तार संभव है-

लड़की /पत्र /लिख रही है।

विस्तार- आज /लड़की /सुबह में /कमरे में /पत्र लिख रही है।

इ) रूपावली संबंध : वाक्य-साँचे का प्रत्येक घटक अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से भी जुड़ा रहता है। प्रत्येक घटक के प्रकार्य-स्थान पर उस वर्ग के अन्य शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं, जैसे 'लोग आते हैं' वाक्य में 'लोग' के स्थान पर 'हम लोग','सभी लोग' और क्रिया-पदबंध के स्थान पर 'आते हैं', 'रहते हैं' आदि। एक ही वर्ग के इन शब्दों के बीच रूपावली संबंध होता है।

एक प्रकार्य-स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले ऐसे शब्दों को 'शब्द-वर्ग' कहा जाता है। इनके कई संरचनात्मक वर्ग संभव हैं, जैसे संज्ञा शब्द वर्ग, विशेषण शब्द वर्ग, क्रिया-विशेषण शब्द वर्ग, क्रिया शब्द वर्ग आदि। शब्द वर्ग के शब्दों की संख्या असीमित होने के कारण एक ही वाक्य-साँचे से असीमित संख्या में वाक्य बनाए जा सकते हैं।

वाक्य-विन्यासात्मक तथा रूपावली संबंधों के आयाम

कर्ता	क्रि.वि.	कर्म	क्रिया
लड़के	होटल में	खाना	खाते हैं
हम	घर में	अख़बार	पढ़ते हैं
मैं	यहाँ	काम	करता हूँ

ई) अनिवार्य तथा ऐच्छिक घटक :

वाक्य-साँचों के पदबंध घटक दो प्रकार के होते हैं- अनिवार्य तथा ऐच्छिक।

अनिवार्य घटक वे हैं जिन्हें वाक्य से निकाल देने पर वाक्य मूल अर्थ की दृष्टि से दूर हो जाता है, जैसे 'मैं आज खाना नहीं खाऊँगा।' वाक्य में से 'मैं' और 'खाऊँगा' दो अनिवार्य घटक हैं। इसके विपरित 'आज' एक ऐच्छिक घटक है

जिसे हटा देने पर भी वाक्य मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण रहता है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार की अतिरिक्त सूचनाएँ प्राय: क्रिया-विशेषण पदबंधों द्वारा दी जाती हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि क्रिया-विशेषण सदैव ऐच्छिक घटक होते हैं। कुछ वाक्यों में क्रिया-विशेषण अनिवार्य घटक भी होते हैं जैसे, 'राम घर में है' से 'घर में' को वाक्य से नहीं हटा सकते।

५.४.४.२) आधारभूत वाक्य - किसी भी भाषा-व्यवस्था की यह विशिष्टता है कि वाक्य चाहे जितना बड़ा, छोटा या जटिल हो उसमें एक आधारभूत वाक्य की सत्ता अवश्य रहती है। यह आधारभूत वाक्य एक प्रकार का बीज वाक्य है जिससे भाषा के अनेक वास्तविक वाक्य जनित होते हैं-

वास्तविक वाक्य- इस कक्षा के सभी छात्र आजकल रोज़ हिन्दी का समाचार पत्र पढ़ते हैं।

बीज वाक्य- छात्र समाचार पत्र पढ़ते हैं।

ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक अनिवार्य हों 'आधारभूत वाक्य' कहलाते हैं। इनके साँचे 'आधारभूत वाक्य-साँचे' कहे जाते हैं। इन वाक्य-साँचों में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के वाक्य व्युत्पन्न करने की क्षमता निहित रहती है।

५.४.४.२.१) आधारभूत वाक्य-साँचों के तीन लक्षण हैं-

अ) अनिवार्य घटक : आधारभूत वाक्य साँचों में केवल अनिवार्य घटकों को ही स्थान दिया जाता है, ऐच्छिक घटकों को नहीं। 'सतीश चाय पीता है' आधारभूत वाक्य है, क्योंकि इसके तीनों घटक अनिवार्य हैं। 'सतीश कभी-कभी चाय पीता है', वाक्य में 'कभी-कभी' एक ऐच्छिक घटक है, क्योंकि इसके बिना भी वाक्य व्याकरण और मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण है। ऐच्छिक घटक आधारभूत वाक्य का घटक नहीं होता।

आ) कथनात्मक वाक्य : आधारभूत वाक्य-साँचों में हमेशा सरल कथनात्मक वाक्यों को ही रखा जाता है, संयुक्त, मिश्र या अल्पांग वाक्यों को नहीं। इसी प्रकार प्रश्नार्थक, नकारात्मक, आज्ञार्थक आदि संदर्भ-विशिष्ट वाक्यों को आधारभूत वाक्यों में शामिल नहीं किया जाता, क्योंकि ऐसे सभी वाक्य आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न या transform किए जा सकते हैं।

इ) नियंत्रक-तत्व क्रिया : आधारभूत वाक्य-साँचों के निर्धारण में सामान्यत: क्रिया को ही आधार भाग माना जाता है क्योंकि क्रिया की प्रकृति और माँग के अनुसार ही वाक्य की रचना निर्धारित होती है तथा वाक्य में आने वाले पात्रों(कर्ता, कर्म आदि) की संख्या नियन्त्रित होती है। उदाहरणार्थ- 'हँसना' क्रिया(अकर्मक) एक पात्र(कर्ता) की अपेक्षा करती है। 'पीना'(सकर्मक) क्रिया दो पात्रों(कर्ता-कर्म) तथा 'देना' क्रिया तीन पात्रों(कर्ता-कर्म-संप्रदान) की अपेक्षा करती है। ये तीनों क्रियायें अलग-अलग आधारभूत साँचों का निर्माण करतीं हैं। कुछ वाक्यों में विधेय अंश वाक्य की नियन्त्रित करता है जैसे 'रमेश को खाँसी है', तथा 'मोहन लेखक है' में 'खाँसी' और 'लेखक' वाक्य नियन्त्रक तत्व हैं।

५.४.४.३) वाक्य-साँचों का संरचनात्मक आधार पर वर्गीकरण :

हिन्दी वाक्य-साँचों को संरचनात्मक आधार पर मोटे रूप से तीन प्रमुख वर्गों में रखा जा सकता है- कोप्यूला वाक्य साँचे, को-वाक्य साँचे तथा क्रियाप्रधान वाक्य साँचे। इनके अन्तर्गत हिन्दी के १४ बीज या आधारभूत वाक्य-साँचे बनते हैं जो इस प्रकार हैं -

५.४.४.३.१) कोप्यूला वाक्य :

i) संज्ञात्मक कोप्यूला वाक्य : संप. + संप. + योजक क्रिया
मोहन अध्यापक है।

ii) विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य : संप. + विप. + योजक क्रिया
राधा सुंदर है।

iii) क्रिया-विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य : संप. + क्रि.वि. + योजक क्रिया
सतीश घर में है।

'कोप्यूला वाक्य' वे वाक्य हैं जिनमें कर्ता और पूरक किसी योजक-क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं, जैसे उपर्युक्त उदाहरण 'मोहन अध्यापक है', वाक्य में 'मोहन' और 'अध्यापक' एक ही व्यक्ति का बोध कराते हैं। यहाँ दोनों के बीच अभिनिर्धारित और अभिनिर्धारक का संबंध है। अर्थात् 'अध्यापक' 'मोहन' की पहचान बताता है, जैसे ' मोहन कौन है ?' 'मोहन अध्यापक है।' इसी प्रकार 'राधा सुंदर है' वाक्य में कर्ता और पूरक के बीच विशेष्य-विशेषण का संबंध है। उसी प्रकार क्रिया-विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य में जैसे 'सतीश घर में है', पूरक कर्ता की उपस्थिति सूचित करता है। कोप्यूला

वाक्यों में क्रिया के प्रकार्य-स्थान पर योजक-क्रिया का प्रयोग होता है। इसी को अंग्रेजी में 'कोप्यूला वर्ब' भी कहते हैं। कोप्यूला का अर्थ है 'जोड़ना'। प्रमुख योजक-क्रियाएँ हैं- है, था, थी, होता तथा इनके समानधर्मा रूप। अन्य सामान्य क्रियाओं पीना, देखना, जाना आदि की भाँति योजक-क्रियाएँ अपना कोशीय अर्थ नहीं व्यक्त करतीं। यहाँ पर इनका प्रकार्य केवल दो अस्तित्वों के बीच संबंध उद्घाटित करना होता है। इन वाक्यों के कर्ता के बाद किसी परसर्ग(को, के, में) आदि का प्रयोग नहीं होता। इन वाक्यों के पूरक संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण में से कोई भी हो सकता है, जैसे ऊपर के वाक्यों में 'अध्यापक', 'सुंदर' और 'घर में'।

वाक्य-साँचों के रूप में देखें तो कोप्यूला वाक्य तीन घटकों से बनी रचना होती है, जिसका प्रत्येक घटक अनिवार्य घटक होता है। वाक्य में क्रिया-विशेषण सामान्यत: ऐच्छिक घटक माना जाता है, लेकिन इस कोटि के कोप्यूला वाक्यों में क्रिया-विशेषण भी अनिवार्य घटक के रूप में आते हैं;

जैसे-

रमेश कमरे में है। (कमरे में, अनिवार्य घटक)
रमेश कमरे में पढ़ रहा है। (कमरे में, ऐच्छिक घटक)

५.४.४.३.२) <u>को- वाक्य</u> :

iv)	पूरकप्रधान को-वाक्य	:	संप. + को + संप.(पूरक) + को-क्रियाकर सतीश को बुखार है।
v)	कर्मप्रधान को-वाक्य	:	संप. + को + संप.(कर्म) + को-क्रिया सीता को सामान चाहिए।
vi)	कर्मपूरक प्रधान को-वाक्य	:	संप.+ को + संप.(कर्म) + पूरक + को-क्रिया राधा को नौकर चोर लगता है।
vii)	स्वामित्ववाची वाक्य	:	संप. + के पास + संप. + हो-क्रिया मोहन के पास तीन रुपए हैं।

ऐसे सभी वाक्यों को जिनके कर्ता के साथ को परसर्ग का प्रयोग होता है 'को-वाक्य' कहते हैं। कर्ता के साथ को का प्रयोग विधेय पूरक(संज्ञा) या कुछ विशिष्ट क्रियाओं की आकांक्षा के कारण होता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों में पूरक शब्द(बुखार, भूख, खुशी) कर्ता के बाद को परसर्ग की आकांक्षा करते हैं-

सुधीर को बुखार है।
बच्चे को भूख लगी है।

ध्यान रहे कि संज्ञा के बाद 'को' का प्रयोग प्राय: कर्म के बाद भी होता है, जैसे 'मैंने राम को बुलाया', 'सरला ने राधा को तीन सौ रुपए दिए' आदि वाक्य 'को-वाक्यों' में नहीं आते क्योंकि इन वाक्यों में 'को' का प्रयोग कोशीय क्रिया(मिलना, आना, चाहिए) की आकांक्षा के कारण हुआ है :

उदा.	श्री राजू को हिन्दी आती है।	आपको कितने रुपए मिलते हैं।
	चाचा जी को एक चाय चाहिए।	मुझे(मुझको) वह नौकर मूर्ख लगता है।

इन वाक्यों में प्रयुक्त क्रियाओं का सुविधा के लिए 'को-क्रियाएँ' कहते हैं, अर्थात् ये वे क्रियाएँ हैं जो को-वाक्य की आकांक्षा करतीं हैं। ध्यान रहे कि ये क्रियाएँ कर्म की अपेक्षा करतीं हैं, पूरक की नहीं। अंतिम वाक्य की कोटि की क्रियाएँ कर्म तथा कर्मपूरक दोनों की अपेक्षा करतीं हैं। इसमें 'नौकर' कर्म है तथा 'मूर्ख' कर्मपूरक।

कर्ता के बाद को की आकांक्षा करने वाले वाक्यों की एक और कोटि है जो उपर्युक्त वाक्यों से इस रूप में भिन्न है कि इनमें कर्ता-को की अपेक्षा न पूरक के कारण होती है और न क्रिया के कारण, बल्कि क्रिया रूप- 'ना है', 'ना पड़ा' और 'ना चाहिए'- के कारण है;

जैसे
- राम को डाक्टर के पास जाना है।
- कल रमेश को देर तक दफ्तर में रुकना पड़ा।
- आपको शराब नहीं पीनी चाहिए।

ये वाक्य 'को-वाक्य' अवश्य हैं लेकिन इन्हें आधारभूत वाक्यों में नहीं शामिल किया जाता। ये रूपांतरण प्रक्रिया से प्राप्त किए जाते हैं; जैसे-

'राम डाक्टर के पास जाता है':
- राम को डाक्टर के पास जाना है।
- राम को डाक्टर के पास जाना पड़ा।
- राम को डाक्टर के पास जाना चाहिए।

को-वाक्य साँचों की कुछ विशेषताएँ :

- को-कर्ता सामान्यत चेतन होता है क्योंकि को-वाक्य द्वारा अभिव्यक्त मनोभाव या अनुभूति को ग्रहण करनेवाला कर्ता प्राणिवाचक संज्ञा ही हो सकता है।

- को-कर्ता में स्वेच्छा का अभाव होता है। वह स्वयं कोई कार्य निष्पादित नहीं करता, बल्कि स्वयं कार्य-व्यापार का भोक्ता या अनुभवकर्ता होता है। इन कार्य-व्यापारों पर कर्ता का कोई नियन्त्रण नहीं होता।

- को-वाक्यों द्वारा अभिव्यक्त भावों को पाँच कोटियों में रखा जा सकता है-

शारीरिक अनुभूति -	बुखार, प्यास, नींद, खाँसी, आराम।
बौद्धिक अनुभूति -	मालूम होना, पता होना, ज्ञान होना।
मनोभाव -	प्यार, घृणा आदि।
पसंद, आदत -	रुचि, शौक़।
विशिष्ट मानवीय व्यवहार -	लाभ-हानि।

५.४.४.३.३) क्रियाप्रधान वाक्य :

viii) सामान्य अकर्मक(अक.) : संप(कर्ता) + क्रिया(अक.)
ईश्वर है। (अस्तित्ववाची)
राधा नाच रही है। (सक्रिय कर्तापरक)

ix) सह-अव्ययात्मक अकर्मक : संप(कर्ता) + अप(सहअ.) + क्रिया
प्रताप गाँधीनगर में रहता है। (अधिकरण)

x) सहपात्रीय अकर्मक : संप(कर्ता) + संप(सहपात्र) + क्रिया
गोपाल राधा से लड़ता है।

xi) सामान्य सकर्मक(सक.) : संप(कर्ता) + संप(कर्म) + क्रिया(सक.)
हरी पानी पीता है। (कर्म + ०)

xii) सह-अव्ययात्मक सकर्मक : संप(कर्ता) + संप(कर्म) + अप(सहअ.)+ क्रिया
मोहन गाड़ी गैरेज में रखता है।

xiii) सहपात्रीय सकर्मक : संप.कर्ता)+संप(संप्र.)+संप(कर्म) +क्रिया(द्विक.)
सेठ जी ने नौकर को पैसे दिए।

xiv) कर्मपूरक वाक्य : संप.(कर्ता) + संप(कर्म) + संप(कर्मपूरक) + क्रिया
मैं चंपा को नर्स समझता था।

क्रियाप्रधान वाक्यों में क्रिया ही वाक्य का मुख्य नियंत्रक-तत्व होता है अर्थात् क्रिया की आकांक्षा के अनुसार ही वाक्य के अनिवार्य घटकों की संख्या तथा स्वरूप का निर्धारण होता है। क्रियाओं की आकांक्षाओं के अनुसार अनिवार्य घटकों के विवरण पर गौर करें तो कम से कम दो ऐसे घटक मिलेंगे जो कर्म न होते हुए भी वाक्य के अनिवार्य घटक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये हैं- सह-अव्यय और सहपात्र। सह-अव्यय सामान्यत: क्रिया-विशेषण होते हैं। सहपात्र सामान्यत: सम्प्रदान, अपादान, करण आदि भी हो सकते हैं, लेकिन सह-अव्यय और सहपात्र दोनों के साथ केवल एक शर्त यह है कि इनका प्रयोग अनिवार्य घटक के रूप में होना चाहिए, न कि ऐच्छिक घटक के रूप में।

उदा०- रमेश हँसा।(शुद्ध)
रमेश रहता है।(अशुद्ध)
रमेश गाँव में रहता है।(सहअव्यय)

'हँसना' और 'रहना' दोनों अकर्मक क्रियाएँ हैं, लेकिन जहाँ पहले वाक्य में 'हँसना' क्रिया के साथ किसी अन्य घटक की आवश्यकता नहीं है, वहीं दूसरे वाक्य में बिना सह- अव्यय(गाँव में) के 'रहना' क्रिया का प्रयोग अशुद्ध है।

कुछ सकर्मक क्रियाएँ भी ऐसी होती हैं जहाँ सह-अव्यय की आकांक्षा रहती है-
ड्राइवर ने गाड़ी रखी। (अशुद्ध)
ड्राइवर ने गाड़ी गैरेज में रखी। (सह-अव्यय)

कुछ क्रियाएँ अर्थ पूर्ति के लिए अन्य पात्र की आकांक्षा करतीं हैं-
'शेखर अपनी पत्नी से लड़ता है।'

इस वाक्य में अपनी पत्नी कर्म नहीं, सहपात्र है।

५.४.४.४) व्युत्पन्न वाक्य-साँचे :

भाषावैज्ञानिक मानते हैं कि वास्तविक भाषा-व्यवहार में हम जितने भी प्रकार के छोटे-बड़े वाक्यों का प्रयोग करते हैं उन सबका स्रोत आधारभूत या बीज वाक्य ही हैं। भाषा के सभी वाक्य किसी न किसी रूप में इन्ही साँचों में व्युत्पन्न होते हैं। हम कुछ विशेष भाषिक युक्तियों का इस्तेमाल कर सभी आधारभूत वाक्यों का इस्तेमाल करते हैं, कभी उनमें नए अर्थ, शब्द-पदबंध, उपवाक्य जोड़ते हैं। कुछ अंशों का रूपांतरण करते हैं और कुछ का लोप। इस प्रकार अनंत वाक्यों का निर्माण करते हैं। वाक्य व्युत्पन्न करने की चार प्रमुख क्रियाएँ-

पदबंधों के विस्तार द्वारा : पदबंधों में विशेषण या अन्य शब्द जोड़कर।

उदा० लड़का अध्यापक को ढूँढ़ रहा है।

- आपका लड़का अंग्रेज़ी के अध्यापक को ढूँढ़ रहा है।
- आपका छोटा वाला लड़का अंग्रेज़ी के नए अध्यापक को ढूँढ़ रहा है।

ऐच्छिक घटकों के योग द्वारा :

उदा० रमेश अख़बार पढ़ रहा है।

- रमेश कुर्सी पर बैठे हुए अख़बार पढ़ रहा है।
- रमेश चार बजे से कुर्सी पर बैठे हुए अख़बार पढ़ रहा है।

लोप प्रक्रिया द्वारा :

उदा० मैं आपको जानता हूँ। मैं आपके भाई को नहीं जानता हूँ।

- मैं आपको जानता हूँ आपके भाई को नहीं।

रूपांतरण प्रक्रिया द्वारा :

उदा० सुरेश अंग्रेज़ी समझता है।

प्रश्नात्मक रूपांतरण -	क्या सुरेश अंग्रेज़ी समझता है ?
नकारात्मक रूपांतरण -	सुरेश अंग्रेज़ी नहीं समझता।
सक रूपांतरण -	सुरेश अंग्रेज़ी समझता सकता है।
आज्ञार्थक रूपांतरण -	सुरेश को अंग्रजी समझना होगा।

संभावयर्थक रूपांतरण -   सुरेश अंग्रेज़ी समझता होगा।

भाषा बोलते समय वाक्य का प्रयोग जितना सरल है उसकी व्याख्या उतनी जटिल। सम्पूर्ण विश्लेषण एवं विवेचन के पश्चात् यह तथ्य उभरता है कि वाक्य अपने आप में एक पूर्ण इकाई है, जिसके अन्तर्गत विभिन्न घटक काम करते हैं, जो वाक्य को सार्थक बनाते हैं। इसी कारण शायद वाक्य की परिभाषा आसान नहीं है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने वाक्य के सारे लक्षणों को गिनाकर वाक्य की व्याख्या करने की कोशिश अवश्य की है। इसी तरह वाक्य के विश्लेषण के लिए अनेक पद्धतियों की जैसे खोज की गई है ताकि वाक्य को बहतर से बहतर तरीके से समझा और समझाया जा सके। किसी पद्धति में वाक्य की संरचनात्मक कोटियों पर महत्व दिया गया है तो किसी में वाक्य के अर्थ-संप्रेषण पर। इन सब में महत्वपूर्ण बात यह है कि वाक्य-साँचों का विवेचन किसी भी भाषा को जानने और सीखने की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसके लिए नियमों को जानना आवश्यक है। प्रत्येक भाषा के अपने वाक्य में निश्चित पदक्रम होते हैं जिनसे हटकर वाक्य अशुद्ध हो सकता है। इन पदक्रमों को बाँधने वाले पदबंध होते हैं जिनमें कारकों का योग वाक्य को अर्थसंगत बनाता है। मौटे तौर पर कहा जा तो इतनी-सी बात है कि सब की अपनी अनिवार्य भूमिका है। एक के बग़ैर दूसरे का काम नहीं चल सकता है। जिस तरह सूई का काम तलवार और तलवार का काम सूई नहीं कर सकती उसी तरह वाक्य के सभी तत्व व घटक अपने आप में महत्वपूर्ण हैं जिनके विश्लेषण एवं व्याख्या के लिए भिन्न-भिन्न पद्धतियों का सहारा लिया जा सकता है।

१ हिन्दी भाषा - डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.१००

२ भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र - डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, पृ.२२२

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,पृ.१०२

४ हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण - डॉ.भोलानाथ तिवारी, पृ.४३

५ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,पृ.१०८

६ हिन्दी भाषा - भोलानाथ तिवारी,पृ.११६

७ भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र - डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, पृ.१८०

८ वही,पृ १८०

९ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,पृ.११९-१२०

१० भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र- डॉ.कपिलदेव द्विवेदी,पृ.१८१

११ हिन्दी भाषा- डॉ.भोलानाथ तिवारी,पृ.१२१

१२ भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र - डॉ.कपिलदेव द्विवेदी,पृ.१८२

१३ वही,पृ.१७७

१४ हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,पृ.१०३

१५ मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण- माताबदल जायसवाल ,पृ.८

१६ वही,पृ.२२

१७ भाषा विज्ञान - भोलानाथ तिवारी,पृ.३५७

१८ हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,पृ.२५०

१९ हिन्दी व्याकरण - पं०कामता प्रसाद गुरु,पृ.१७९

२० हिन्दी रूप-रचना(भाग-१) - आचार्य जयेन्द्र त्रिवेदी(प्रधान संपादक); पृ.८५

२१ हिन्दी व्याकरण- पं०कामता प्रसाद गुरु,पृ.१६२

२२ वही, पृ.१६२

२३ देखिए हिन्दी व्याकरण - पं०कामता प्रसाद गुरु,पृ.१६४

२४ हिन्दी शब्दानुशासन - किशोरीदास वाजपेयी; पृ.४०१

२५ हिन्दी व्याकरण - प०कामता प्रसाद गुरु; पृ.३०२

२६ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा,पृ.२२६

२७ नालन्दा विशाल शब्दसागर - (संपादक) श्री नवल, पृ.१६०

२८ वही, पृ.१४१६

२९ पाणिनी : अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ, संपादक - आचार्य पं०सत्यनारायण शास्त्री खण्डूड़ी; पृ.२९

३० सामान्य भाषा विज्ञान - डॉ.बाबूराम सक्सेना; पृ.१३९

३१ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी; पृ.४१८

३२ हिन्दी व्याकरण - पं०कामता प्रसाद गुरु; पृ.६५

३३ हिन्दी :उद्भव,विकास और रूप - डॉ.हरदेव बाहरी; पृ.१६८-१६९

३४ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी;पृ .४४५

३५ हिन्दी भाषा का इतिहास - धीरेन्द्र वर्मा; पृ.२८५

३६ हिन्दी व्याकरण- डॉ.जाल्मन दीमशित्स; पृ१२९

३७ हिन्दी व्याकरण - प०कामता प्रसाद गुरु; पृ.८९

३८ उद्धृत- उपोद्धात, अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, वृत्तिकार - श्रीनारायण मिश्र

३९ कबीर ग्रंथावली,संपादक - डॉ.श्यामसुन्दर दास

४० व्याकरण दर्शन पीठिका - Sri Ramajna Pandeya,vol.xii; pg.60.

४१ व्याकरण महाभाष्यम् - महर्षि पतंजलि; पृ.७

४२ शब्दकल्पद्रुम(खण्ड-५) - राजा राधाकान्त देव; पृ.२१

४३ परिष्कृत हिन्दी व्याकरण - डॉ.बदरीनाथ कपूर; पृ.५

४४ भाषा-विज्ञान की भूमिका - देवेन्द्रनाथ शर्मा; पृ.२३२

४५ The Encyclopaedia Indica,vol-xxii,edited by Nagendranath Vasu; pg-601

४६ हिन्दी व्याकरण - प०कामता प्रसाद गुरु,पृ.४७

४७ भाषा-विज्ञान कोश - डॉ.भोलानाथ तिवारी; पृ.६३५

४८ English Words- Francis Katamba;2nd edition 2005; pg-11

४९ हिन्दी शब्द-समूह का विकास: नरेश मिश्र; पृ.१०

५० हिन्दी भाषादर्श- डॉ.भगीरथ मिश्र एवं डॉ.शुभकार कपूर; पृ.१०

५१ The Oxford English Dictionary-2nd edition;vol-xx,prepared by J.A. Simrson and E.S.C. Weiner; pg-527

५२ निरुक्त - यास्क मुनि,भाग-१; पृ.६

५३ अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ - पाणिनी, पं०सत्यनारायण शास्त्री खण्डूड़ी,पृ०२४

५४ हिन्दी शब्द-समूह का विकास- नरेश मिश्र,पृ.३०

५५ हिन्दी व्याकरण - पं०कामता प्रसाद गुरु; पृ.२१

५६ वही,पृ.२१

५७ हिन्दी शब्द-समूह का विकास - नरेश मिश्र,पृ.२२४

५८ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.७५

५९ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी,पृ.२१६

६० हिन्दी शब्द-समूह का विकास - नरेश मिश्र; पृ.२२७

६१ हिन्दी भाषा का इतिहास- धीरेन्द्र वर्मा; पृ.७५

६२ हिन्दी व्याकरण:नव मूल्यांकन - ओम प्रकाश शर्मा; पृ.३९०

६३ हिन्दी व्याकरण - पं०कामता प्रसाद गुरु; पृ.२२

६४ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा; पृ.७०

६५ भाषा और समाज - डॉ.रामविलास शर्मा; पृ.२०६

६६ हिन्दी भाषादर्श - भगीरथ मिश्र और शुभांकर कपूर; पृ.३२

६७ हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.७०

६८ हिन्दी भाषा और व्याकरण - केशवदत्त रूवाली; पृ.१०५

६९ हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी; पृ.२१९

७० श्री विश्वनाथ कविराज कृत- साहित्यदर्पण,द्वितीय परिच्छेद; पृ.२४

७१ पूर्व मीमांसा(mimansa sutras of Jaimini); पृ.५४;

७२ The vakyapadiya of Bhartrhari,khand-2;pg-1

७३ हिन्दी वाक्य-विन्यास - सुधा कालरा; उपस्थापन-पृ.xiv

७४ हिन्दी व्याकरण- डा.ज़ाल्मन दीमशित्स; पृ.५४०

७५ भाषा और भाषा-विज्ञान- गरिमा श्रीवास्तव; पृ.१२०

७६ English Syntax- C.L. Baker; pg.3

७७ (प्रधान संपादक) रामचन्द्र वर्म्मा; पृ.२९

७८ भाषाविज्ञान - डॉ.भोलानाथ तिवारी; पृ.१५८

७९ काव्यालङ्कार - रुद्रट; अनुवादक - डॉ.सत्यदेव चौधरी; पृ.२५

८० हिन्दी का समसामयिक व्याकरण - यमुना काचरू; पृ.८

प्रास्ताविक :

सामान्तय: भाषा की सार्थक ध्वनियों का निरूपण जनसामान्य में व्यवहृत भाषा की ध्वनियों के विश्लेषण के पश्चात् ही होता है। इसके लिए उस भाषा क्षेत्र में जाकर भाषा बोलने वालों से सामग्री का चयन करना जरूरी है। इस पद्धति से पहले सार्थक ध्वनियों का निरूपण होता है। इसकी पुष्टि लिखित सामग्री करती है। लिखित सामग्री के माध्यम से जिस ध्वनि व्यवस्था का निरूपण होता है, वह क्षेत्र कार्य से प्राप्त निष्कर्षों की समता नहीं कर सकता है, फिर भी जो भाषा क्षेत्र कार्य की परिसीमा से बाहर है उसकी ध्वनि व्यवस्था का निरूपण मात्र साहित्यिक कृतियों के आधार पर ही संभव है। दक्खिनी हिन्दी के जो नमूने साहित्यिक कृतियों द्वारा प्राप्त होते हैं, ये इतने आकर्षक है कि उनके आधार पर भी दक्खिनी ध्वनि व्यवस्था की जानकारी अत्यन्त रोचक सिद्ध हो सकती। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की भाषा तात्विक आकलन के लिए प्रस्तुत अध्याय में साहित्यिक दक्खिनी में प्राप्त सभी ध्वनियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

जहाँ तक ध्वनिग्रामों के निरूपण का सम्बन्ध है, इस अध्ययन में साहित्यिक कृतियों में प्रयुक्त उन सभी शब्दों का आकलन किया गया है जो ध्वनि प्रयोग की विभिन्न स्थितियों (आरम्भिक, मध्य और अन्य) से युक्त है। इसके अतिरिक्त ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न स्थितियों का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

व्याकरणिक विशेषताओं में संज्ञा, सर्वनाम, प्रत्यय, कारक, विशेषण, उपसर्ग, अव्यय आदि पद रूपों का विवेचन किया गया है। संज्ञा विवेचन में वचन व्यवस्था के मूल रूप, तिर्यक रूप उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है। अरबी-फ़ारसी

वचन व्यवस्था पर भी सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साहित्यिक दक्खिनी में प्रयुक्त लिंग व्यवस्था तथा लिंगगत अव्यवस्था पर भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। संरचनात्मक प्रत्यय और उपसर्ग में संस्कृत के तत्सम, तद्भव, अरबी-फ़ारसी के प्रत्ययों और उपसर्गों का विवरण प्रस्तुत है। कारकीय व्यवस्था में कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अधिकरण, अपादान, सम्बन्ध कारक और सम्बोधन पर सोदाहरण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। सार्वनामिक व्यवस्था में मूल रूप तथा कारकीय तिर्यक रूपों का सोदाहरण तथा वर्गीकृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। विवेच्य कृतियों में प्रयुक्त संस्कृत तत्सम, तद्भव विशेषण, अरबी-फ़ारसी विशेषण आदि के साथ विशेषण व्यवस्था को भी विशेषण शीर्षक के अन्तर्गत विवेचन प्रस्तुत है। अव्यय में क्रिया विशेषण वाची अव्यय, अवधिसूचक अव्यय, परिणामवाचक, निषेधवाचक, सम्बन्द सूचक, संकेतसूचक, समुच्चयबोधक, विस्मयबोधक, अवधारणवाचक अव्यय आदि रूपों पर सम्यक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

साहित्यिक भाषा में शब्द प्रयोग का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहता है। शब्द प्रयोग अपनी अर्थवत्ता के साथ किसी भी साहित्यिक भाषा का निर्णायक अंश होता है। शब्दों के चयन और नियोजन से ही साहित्यिक कृति का आकर्षक रूप निखरता है। वही भाषा समृद्ध होती है जो दूसरी भाषा के शब्दों को आत्मसात कर आवश्यकतानुसार उनको अर्थ प्रदान करने की क्षमता रखती है। अगर भाषा अन्य भाषा स्रोतों से शब्द ग्रहण तेजी से करती है तो तेजी से ही समृद्ध और विकसित होती है।

अंतिम उप-अध्याय में दक्खिनी हिन्दी भाषा के वाक्य विन्यास की चर्चा की जाएगी। वाक्य के सम्बन्ध में प्रारम्भिक जानकारी पांचवे अध्याय के हिन्दी वाक्य-विवेचन में दी जा चुकी है। अतः यहाँ सीधे दक्खिनी हिन्दी के वाक्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाएगा। प्रस्तुत अध्याय में साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त वाक्यों का विवेचन अभिप्रेत है। इसमें दक्खिनी हिन्दी की पदबन्ध व्यवस्था पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् वाक्य के प्रकारों का दो आधारों पर- व्याकरणिक और प्रयोगार्थ केन्द्रित -वाक्य प्रकारों को दृष्टि में रखकर विश्लेषण तक वाक्य विवेचन को इस अध्याय में सीमित रखा गया है। अंत में क्षेत्रीय प्रभाव से संरचित वाक्यों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है।

६.१ ध्वनिगत विशेषताएँ

६.१.१ दक्खिनी हिन्दी स्वनिम - परिचय

स्वर : अ, आ, इ, इ., ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऍ, ऐ, ओ, ओॅ, औ

व्यंजन :

स्पर्श -	क़्, क्, ख्, ग्, घ्
	च्, छ्, ज्, झ्
	ट, ठ, ड्, ढ*
	त्, थ्, द्, ध्
	प्, फ्, ब्, भ्
संघर्षी -	ह्, ख़्, ग़्, श्, ष्, स्, ज़्, फ़्, व्
अनुनासिक -	ङ्, ण्, न्, न्ह्, म्, म्ह्
पार्श्विक -	ल्
लुंठित -	र्
उत्क्षिप्त -	ड़्, ढ़्
अर्ध-स्वर -	य्, हमज़ा

*(इन ध्वनियों के बारे में अतिरिक्त जानकारी सातवें अध्याय के प्रथम उप-अध्याय 'ध्वनिगत विवेचन' के अन्तर्गत दी गई है।)

ध्वनि-विवरण

/अ / यह अर्द्धविवृत निम्न मध्य ह्रस्व स्वर है। इस ध्वनि का अस्तित्व संस्कृत के तत्समों, प्रान्तीय भाषाओं (तेलुगु, मराठी प्रमुखतः) से आगत शब्दों, विदेशी शब्दों में पाया जाता है। कारण स्पष्ट है कि साहित्यिक स्रोतों में इन सभी भाषाओं की शब्दावली प्रान्तीय है। अतः यह कहा जा सकता है कि इन भाषाओं में इस ध्वनि के उच्चरित रूप

का प्रभाव चाहे न रहा हो लेकिन प्रान्तीय उन भाषाओं का प्रभाव अवश्य है जिनका संपर्क स्थानीय रूप से प्राप्त हुआ है। इस ध्वनि का स्वतंत्र प्रयोग शब्द की आदि में है और मध्य में अरबी, फ़ारसी शब्दों में ही है। शब्द के मध्य और अन्त्य में यह ध्वनि संयुक्त व्यंजनों के साथ भी प्रयुक्त है।

आदि	मध्य	अन्त्य
अवतार १०१-१ ।सै।	साअत ३५-५० ।फूल।	सट ४८-९ ।सब।
अव्वल १७-१ ।फूल।	शफाअत ९५-१द ।सै।	कठिन १३-२ ।मन।
अचपल ७-९ ।मन।	खिलअत ६८-२ ।सै।	बाट ११-३ ।सब।

/आ / यह अर्द्धविवृत, निम्न, पश्च, दीर्घ स्वर है। इस ध्वनि का स्वतंत्र प्रयोग शब्द के आदि में है और मध्य में अरबी, फ़ारसी शब्दों में ही है। मध्य और अन्त्य में यह ध्वनि संयुक्त और असंयुक्त व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है।

आधार ८-९ ।कु।	मुआफिक ७८-३ ।हि.ना।	राजा १५१-२ ।हि.ना।
आराम १-६ ।मन।	पाया १४५-१८ ।सै।	डुब्या १५७-२१ ।सै।

/इ / यह संवृत, उच्च, अग्र, ह्रस्व स्वर है। यह ध्वनि शब्द के आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है। मध्य में अरबी, फ़ारसी शब्दों में ही प्राप्त है। अन्य शब्दों में मध्य और अन्त्य स्थिति में संयुक्त और असंयुक्त व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है।

इच्छा १५४-२ ।हि.ना।	काइदा १३८-२ ।सब।	शक्ति १६-४ ।मन।
इबादत १२-२३ ।कु।	मुस्तइद ९४-१८ ।सै।	सन्निधि २५४-१० ।हि.ना।
इशरात ३२-३७ ।फूल।	दुस्थिति १०६ ।हि.ना।	शुद्धि १२७-१ ।हि.ना।

/इ / यह संवृत, निम्न, अग्र, ह्रस्व स्वर ध्वनि है। यह ध्वनि सिर्फ शब्द के अन्त्य में प्राप्त है।

अन्त्य

काइ ६०-१२ ।कु।, ४-१४ ।मन।

कइ १११-१३ ।कु।

लइ ११४-२० ।सब।

/ई / यह संवृत, उच्च-अग्र दीर्घ स्वर है। यह आदि, मध्य और अंत्य में स्वतंत्र रूप से अरबी, फ़ारसी तथा तेलुगु शब्दों में प्रयुक्त है। मध्य और अंत्य में संयुक्त और असंयुक्त व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है।

ईमान ४९-१ ।से।	भीक ३४-१२ ।हि.ना।	बारग़ी ३४-७ ।फूल।
	रईस १०६-२ ।से।	जुदाई ८८-१ ।सब।

/उ / यह संवृत, पश्च, उच्च ह्रस्व स्वर ध्वनि है। यह ध्वनि आदि और मध्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है। लेकिन मध्य में मराठी, अरबी शब्दों में प्रयुक्त है। अंत्य में स्वतंत्र रूप से संस्कृत तद्‌भव शब्दों में इसका प्रयोग हुआ है। मध्य और अंत्य में व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है।

उछल २६-१६ ।कु।	दुर्जन २९१-१ ।हि.ना।	गुरु १४-१६ ।मन।
उड्या ४३-२१ ।फूल।	बदीउल १६२-२१ ।सै।	जिउ १०-८ ।मन।
उकार ५-८ ।मन।	जिउडा ६६-४ ।सै।	देउ १४-७ ।मन।

/ऊ / यह संवृत, पश्च, उच्च, दीर्घ स्वर ध्वनि है। यह स्वतंत्र रूप से शब्द की आदि में प्रयुक्त है। स्वतंत्र रूप से मध्य में अरबी, फ़ारसी शब्दों में प्रयुक्त है। मध्य और अंत्य में व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है।

ऊद ३८-५५ ।सै।	खूब ६५-२४ ।कु।	आबरू ४३-६१ ।फूल।
ऊथल १०३-१६ ।सब।	दाऊद ४६-१५ ।सब।	जोरू १२-१३ ।मन।

/ऋ / हिन्दी भाषा क्षेत्र में ऋ का उच्चारण रि के रूप में होता है। लेकिन दक्खिनी हिन्दी में अर, अरी, रु, रो के रूपों में परिवर्तित हुई मिलती है। इसलिए इस ध्वनि के उच्चारण के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। जहाँ स्वर

ध्वनि के रूप में प्रयुक्त है वहाँ सिर्फ ध्वनि संकेत का ही प्रयोग हुआ माना जा सकता है। उच्चारण की दृष्टि से इस ध्वनि के उक्त चार रूप मिलते हैं। जो उदाहरण प्राप्त हैं वे सिर्फ संस्कृत तद्भव और तत्सम शब्द ही हैं। संस्कृत तद्भव शब्दों में यह ध्वनि आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है जिसके भी दो रूप हैं- ऋ और रु। तत्सम शब्दों में ऋ का उच्चारण र, रि और रो के रूप है:

आदि	मध्य
ऋषभ १९४-४ ।हि.ना।	अमरुत १४८-१९ ।कु।
ऋतु १९४-२४ ।हि.ना।	अमरीत ६२-९ ।कु।, अमृत ७८-७ ।फूल।
रुत १५९-६ ।सब।	अमरोत ३८-१० ।कु।

/ए / यह अर्द्धसंवृत, उच्च, अग्र, दीर्घ स्वर है। शब्द के आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है तथा शब्द के मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है।

एक १०५-५ ।कु।	हरेक ४२-१७ ।कु।	फिरे २०७-५ ।कु।
एकस ३-४ ।सब।	देखी ४५-१ ।सब।	मेरे ६३-६ ।हि.ना।
	मिलेच १७-९ ।कु।	

/ऍ/ यह अर्द्धविवृत, अग्र उच्च-निम्न ह्रस्व स्वर है। शब्द के आदि मे स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है। वैसे तो भारतीय आर्य भाषा और द्रविड़ भाषाओं में यह ध्वनि विद्यमान है, लेकिन इस ध्वनि की प्रयुक्ति अरबी, फ़ारसी शब्द के साथ हुई है। जो उदाहरण प्राप्त है वे इस प्रकार है-

आदि

ऍतमाद १७७-१२ ।सै।

ऍत्तेला १३८-१५ ।हि.ना।

ऍतबार १२७-२३ ।सै।

/ऐ / यह अर्द्धसंवृत, अग्र दीर्घ स्वर है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में यह स्वर मूलस्वर के रूप में प्रयुक्त है। यह प्रयोग प्राय अरबी, फ़ारसी भाषाओं के शब्दों में पाया

जाता है। अन्यत्र संयुक्त स्वर ही माना जा सकता है। यह शब्द के आदि और मध्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है, लेकिन इसके उदाहरण अरबी - फ़ारसी के ही है। मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है।

ऐसा ५६-१७ ।सै।	सैर १५०-१६ ।सै।	तै (अ+इ)५९-११ ।हि.ना।
ऐश १८-२ ।कु।	बेऐब ८४-२ ।सब।	अहैं १०७-३ ।कु।
ऐज़ाज ९-१८ ।सब।		हैं ८७-२ ।हि.ना।

/ओ / यह अर्द्धस्वर, उच्च, पश्च, दीर्घ है। यह शब्द के आदि और अंत्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है। मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है।

ओकल ६९-२४ ।कु।	चोर ६५-७ ।हि.ना।	दो ४२-६ ।सै।
ओच ३५-१ ।मन।	कोई ९-३ ।सब।	सो २३-१३ ।सब।
	मोती १८-३ ।सै।	दोओ ४६-१२ ।मन।

/ओ / यह अर्द्धसंवृत, पश्च, ह्रस्व स्वर है। यह ध्वनि द्रविड़ भाषा ध्वनि से प्रभावित है। यह ध्वनि तेलुगु भाषा से आगत एक शब्द में प्रयुक्त है। प्राप्त उदाहरण में यह ध्वनि शब्द के मध्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है।

मध्य

दोरा १९२-२ ।कु।

/औ / यह अर्द्धसंवृत, उच्चतर मध्य, दीर्घस्वर है। दक्खिनी हिन्दी में औ स्वतंत्र तथा मूल स्वर के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह नव्य द्रविड़ भाषाओं में औ ध्वनि विद्यमान है। यह संस्कृत तथा भारतीय आर्य भाषाओं में संयुक्त स्वर माना जाता है। शब्द के आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है। मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है।

और १६-१८ ।सै।	हौर ४६-३ ।मन।	सौ २६-१० ।सै।
औरत ९-१ ।सब।	कौन ४१-३ ।हि.ना।	
गौहरां ३५-२७ ।फूल।	फौजां २१-११ ।सै।	

सानुनासिक स्वर :

दक्खिनी ध्वनि व्यवस्था में सानुनासिक स्वर की स्थिति प्रमुख रूप से देखी जा सकती है। समस्त स्वर सानुनासिक स्थिति में भी पाये जाते हैं। सानुनासिक स्वर की स्थिति भी शब्द के आदि मध्य और अंत्य में पायी जाती है। इनके उदाहरण इस प्रकार है।

	आदि	**मध्य**	**अंत**
/अँ,अं/			
	अँदाजा १३-२० |कु|	रंग ५४-१० |सब|	ठावँ १०३-१६ |सै|
	गंज ९१-१८ |फूल|	सँवारन १७-८ |कु|	नाँवँ १०७-७ |कु|
	अंगे ७-११ |सब|	नंगे १०३-११ |सै|	हूं ९१-२६ |फूल|
/आँ,आं/			
	आँख्याँ ४८-२ |सै|	नाफाँक १३१-१२ |सै|	अजाँ ९१-१ |सब|
	आँक १३१-११ |सै|	माँदगी ७४-९ |कु|	बालां १०१-५ |फूल|
	आँगन ५५-१५ |सब|	पाँव ३४-१२ |कु|	निशाँ ७०-१६ |सै|
/इं /			
	-	लेइंगे १३९-२ |हि.ना|	नइं ४९-९ |मन|
		आइंदा १४२-१८ |हि.ना|	तइं ३८-३ |मन|
		खिंग १९-५ |कु|	
/ईं /			
	-	नींद १०३-४ |सै|	नईं ९०-४ |सब|
			नहीं २९-५ |मन|
			ज़मीं १००-१३ |फूल|
/उं,उँ/			
	-	देउंगी १२६-६ |सै|	ठहरुँ ४९-२६ |हि.ना|
		मुंजे १३१-२० |कु|	जाउं ४२-२९ |फूल|

सुंबुलाँ १६०-८ |सै|

/ऊँ,ऊं/

ऊँचा ७८-५ |सै|	देऊँगा ५८-२३ |सब|	करूँ १४२-२० |सै|
ऊँछ २३०-१७ |हि.ना|	डूँगर १२४-१२ |सब|	पाऊं ४२-३५ |फूल|

/एँ,एं/

-	आएँगे १००-३ |सब|	पीछें ७३-१६ |सब|
	चौफेंर २२५-१९ |कु|	देखें १०१-१३ |सब|

/ऐं/

-	खैंच ९७-१४ |सै|	कैं १०१-२२ |हि.ना|
		अपैं १६-१० |कु|

/ओं/

-	वोंच १००-१ |कु|	क्यों ८-२२ |कु|
		दोनों ५९-६ |हि.ना|

/औं/

-	चौंधीर ६६-७ |सै|	तकलीफौं ६३-२१ |हि.ना|

प्रस्तुत तालिका के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सानुनासिक स्वरों की व्यवस्था में अँ, आँ, ऊँ ऐसे स्वर हैं जिनकी स्थिति शब्द की तीनों अवस्थाओं में मिलती है। इं, ईं, ए,एं, ऐं,ओं और औं की स्थिति शब्द के मध्य और अंत्य में है। ऊं की स्थिति सिर्फ मध्य में पायी जाती है।

व्यंजन :

/क्/ यह स्पर्श कंठ्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। इसकी स्थिति शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में पायी जाती है।

आदि	मध्य	अंत्य
काम ६८-३२ |फूल|	भीकर १५६-१५ |हि.ना|	मुलुक १४२-२१ |सै|

करम ८-२ |कु|	पुकार्या ७२-१६ |सब|	झड़क ८१-१४ |कु|
कहानी ५२-५ |सब|	दकन ९-१४ |मन|	मानिक ८-५९ |सब|

/क़्/ यह स्पर्श संघर्षी अलिजिह्वीय अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त यह ध्वनि सिर्फ अरबी तत्सम शब्दों में पायी जाती है। यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त है। यह अरबी-फ़ारसी ध्वनि से आगत ध्वनि है।

क़ल्ब १०-८ |कु|	हक़ीक़त ३४-४३ |फूल|	हक़ १०-१ |सब|
क़हार २-१४ |मन|	आक़िल ४-९ |सब|	इश्क़ १३७-१ |सब|
क़सम १०-१ |सै|	बक़शीश ८-२० |कु|	आशिक़ १००-२१ |कु|

/ख्/ यह स्पर्श कंठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। इसका सम्बन्ध संस्कृत, भारतीय आर्य भाषा स्त्रोतों में देखा जा सकता है। शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में यह ध्वनि पायी जाती है।

खान १७-१८ |सै|	अखंड १७५-१५ |सै|	दुख ७३-१४ |कु|
खड्ग २१-२१ |कु|	दखिनी २९-१३ |कु|	देख ११-७ |मन|
खुश ३५-५३ |फूल|	अखुल १२४-१७ |सब|	मुख ११४-२ |हि.ना|

/ख़्/ यह संघर्षी जिह्वामूलीय महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह अरबी, फ़ारसी भाषा ध्वनियों से आगत ध्वनि है। यह ध्वनि सिर्फ अरबी-फ़ारसी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त है। इसकी स्थिति शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में पायी जाती है।

ख़ाक़ ६९-३२ |फूल|	बेख़बर १७५-१५ |सै|	सुर्ख़ १८१-१८ |सै|
ख़बीर १-१८ |कु|	मख़फी २०-१७ |सब|	दोजख़ १२०-२४ |कु|

/ग्/ यह स्पर्श कंठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

गगन ८८-१८ ।कु।	मंगाय ३६-४ ।कु।	आग २८-१५ ।सब।
गुल ६९-११ ।फूल।	नगर ९-१ ।मन।	काग ५-४ ।कु।
गरज ९१-१६ ।सै।	संगत ३-७ ।मन।	

/ग़्/ यह संघर्षी, जिह्वामूलीय, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि अरबी, फ़ारसी भाषाओं से आगत ध्वनि है। अब सिर्फ अरबी, फ़ारसी शब्दों में यह ध्वनि प्रयुक्त है। शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में इसकी स्थिति पायी जाती है।

ग़ोता ११-१३ ।सब।	बलाग़त २०-१४ ।सै।	बाग़ १०६-२४ ।कु।
ग़दरा ६९-१७ ।फूल।	पैग़ंबर ११-५ ।सब।	फारिग़ ७८-१५ ।सै।
ग़ैब ११५-१३ ।सै।	मग़ज़ १९३-२ ।सै।	दाग़ ८३-६ ।कु।

/घ्/ यह स्पर्श कंठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य में प्रयुक्त हुई है।

घड़ी ४१-१९ ।सै।	घूँघट १६१-३ ।सै।	-
घुट १२-१७ ।सब।	उल्लंघन १६-१५ ।हि.ना।	
घर १०२-२५ ।फूल।		

/ङ्/ यह अनुनासिक कंठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि सिर्फ शब्द के मध्य में प्रयुक्त हुई है। जो शब्द मिला है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह संस्कृत अनुनासिक संधि के पर्यवसान में ही मिलती है।

	मध्य	
-	वाङ्गधुर्य ७५-२५ ।हि.ना।	-

/च्/ यह स्पर्श-संघर्षी दंत्यतालव्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

चली १०३-२५ ।फूल।	चंचल ५८-१ ।सब।	चोंच १०५-६ ।कु।
चीज ७८-१७ ।हि.ना।	उचाट ६२-२२ ।सै।	कुच १७१-१ ।सै।
चेला ४९-१६ ।मन।		इच ७८-७ ।हि.ना।

/छ्/ यह स्पर्श-संघर्षी, दंत्यतालव्य, महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

छतर १०२-२९ ।फूल।	अछडयां १००-२ ।फूल।	कुछ १७-३ ।कु।
छबीली १५६-३ ।सै।	पछाना १२-१४ ।कु।	अछ १४४-२ ।सब।
छोड़ १५-१ ।मन।	स्वेच्छा ८१-५ ।हि.ना।	ऊँछ २३०-१७ ।हि.ना।

/ज्/ यह स्पर्श संघर्षी दंत्यतालव्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

जावे ८१-१० ।हि.ना।	नजर ८४-११ ।हि.ना।	ताज १०३-५ ।फूल।
जवान २३-२२ ।सै।	विराजित २०४-१ ।हि.ना।	आज ८१-१० ।कु।
जाय ८१-४ ।हि.ना।	अजल १०३-२० ।कु।	ताज १०५-१२ ।सै।

/ज़्/ यह वर्त्स्य संघर्षी अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि केवल अरबी-फ़ारसी तत्सम शब्दों में ही प्रयुक्त हुई है। यह ध्वनि अरबी-फ़ारसी भाषा ध्वनियों से आगत ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में आती है।

ज़फर २०-२२ ।सै।	शाहज़ादा ८५-१८ ।कु।	सोज़ ३५-५६ ।फूल।
ज़ब्बार १-७ ।कु।	अज़रा १०१-३१ ।फूल।	अज़ीज़ ४५-१२ ।सै।
ज़बान ९५-१ ।सब।	फ़र्ज़न्द ८५-१९ ।कु।	मुमताज़ २३-४ ।सब।

/झ्/ यह स्पर्श संघर्षी दंत्यतालव्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

झंकार २१३-१० |हि.ना|	निझाई १५७-१ |सै|	समझ १७९-१३ |सै|
झूट ४-१३ |मन|	समझा ४-१५ |मन|	तुझ ११७-३ |सब|
झाड़ ९१-१० |सब|	अझूँ २७-१६ |कु|	मुझ ३८-४८ |फूल|

/ट्/ यह स्पर्श मूर्द्धन्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में आई है।

टूक २२-१० |कु|	संघटन १३९-२४ |हि.ना|	राजवट १०३-५ |सब|
टूट १५२-२० |सै|	सटे ७९-२९ |फूल|	झूट ७४-१ |कु|
	फूटी १०६-५ |सै|	दाट ७९-२९ |फूल|

/ठ्/ यह स्पर्श मूर्द्धन्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

ठार ९८-२३ |फूल|	मिठाई ६६-२० |फूल|	उठ ९६-११ |सब|
ठेल २२-११ |कु|	उठ्या १०३-३ |कु|	पीठ ९८-२० |सै|
ठारता ९-७ |मन|	कोठरी ४७-११ |सै|	झूठ ७९-५ |हि.ना|

/ड्/ यह स्पर्श मूर्द्धन्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

डेरे १५८-१४ |सै|	पड्या २१-३ |सब|	खण्ड ३५-२० |कु|
डंक ३८-४२ |फूल|	मंडल १०७-११ |सै|	ब्रह्माण्ड ५-१० |मन|
डाली ९१-१० |सब|	ढूँडन ९०-११ |सब|	ढूंड ३४-३६ |फूल|

/ड़्/ यह मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। वैसे ड़् मूर्द्धन्य ध्वनि है लेकिन द्रविड़ भाषाओं में ड़् उत्क्षिप्त ध्वनि बन गयी है। अत यह ध्वनि द्रविड़ भाषाओं से प्रभावित है। यह शब्द के मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

	मध्य	अंत्य
-	लड़ना ९१-२८ |सब|	उझाड़ १६-९ |हि.ना|
	तड़पता ९-८ |मन|	जड़ ५१-१९ |सब|
	अपड़ाये ४३-४५ |फूल|	पकड़ ७४-१५ |सै|

/द्/ यह स्पर्श मूर्द्धन्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

ढलना १४-७ |सब|	निढाल ११३-२ |से|	ढूँढ १८३-१ |सै|
ढूँढते १८४-६ |सै|		
ढंग १०-९ |कु|		

/द्/ यह मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। हिन्दी की बोलियों में यह ध्वनि विद्यमान है। यह ध्वनि शब्द के मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

-	गढ़ाँ १-५ |सै|	चढ़ ४२-६ |सब|
	काढ़ता २-७ |सै|	गढ़ १-३ |सै|
	पढ़े १-८ |सब|	

/ण्/ यह अनुनासिक, मूर्द्धन्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि संस्कृत और हिन्दी भाषा में विद्यमान है। द्रविड़ भाषाओं में भी यह ध्वनि है। अरबी-फ़ारसी भाषाओं में यह ध्वनि नहीं है। ण के स्थान पर न का प्रयोग दक्खिनी में होता है। फिर भी ण ध्वनि का प्रयोग दक्खिनी हिन्दी में मिलता है। शब्द के मध्य और अंत्य में इस ध्वनि की स्थिति पायी जाती है।

-	कुण्डलाँ १६०-७ |सै|	स्फुरण १३९-१४ |हि.ना|
	कण्ठ १६-४ |मन|	रक्षण १७९-१ |हि.ना|
	बाणी ७९-६ |हि.ना|	कल्याण २०१-२४ |हि.ना|

/त्/ यह स्पर्श दंत्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

तुम्हारा ४७-२४ |हि.ना|	पुरषोत्तम ४७-१ |हि.ना|	हात ४४-११ |कु|
तब ६-१० |मन|	अवतार १०१-१ |सै|	घात ६७-१९ |फूल|
तूफान २१-११ |सब|	धरते ४४-१९ |कु|	हिम्मत ३४-३ |सब|

/थ्/ यह स्पर्श दंत्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

थरथर १०२-६ |सै|	अस्थान १६-४ |मन|	जगन्नाथ १७९-३ |हि.ना|
थण्ड ७४-२ |कु|	तथा १४६-१५ |हि.ना|	पथ १७५-२ |हि.ना|
थुडूडी ४२-२३ |फूल|	उथल १०३-१६ |सब|	साथ १४६-१५ |हि.ना|

/द्/ यह स्पर्श दंत्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

दहन ७५-३ |सब|	बदल ५२-१३ |फूल|	मर्द १६१-७ |सै|
दल ६८-११ |सै|	उदासा १५-१ |मन|	बुलन्द ५२-१० |फूल|
दखन २९-१३ |कु|	जुदाई २१-६ |सब|	चंद २३१-१३ |हि.ना|

/ध्/ यह स्पर्श दंत्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह संस्कृत के तत्सम, तद्भव और हिन्दी शब्दों में ही प्रयुक्त हुई है।

ध्यान ७६-१६ |सब|	किधर ७०-२२ |सै|	बुध ४३-१५ |मन|
धन १६२-२१ |सै|	इधर ६-४ |मन|	बेसुध ७३-८ |सै|
धात ३८-१९ |फूल|	जिधर २३-१२ |सब|	

/न्/ यह वर्त्स्य, अनुनासिक अल्पप्राण, सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में पायी जाती है।

नींद ८५-२० ।सै।	हुनर ६-१ ।मन।	दिन ७-४ ।मन।
नाफ़ ५१-२ ।फूल।	पुनम ४०-४ ।कु।	खून ११-८ ।सब।
नज़र १०२-५ ।सब।	अस्नान १०८-२१ ।हि.ना।	हिरन ५०-२९ ।फूल।

/न्ह्/ यह अनुनासिक महाप्राण ध्वनि कही जा सकती है। हिन्दी में यह एक स्वनिम ध्वनि मानी गयी है। इसकी स्थिति आदि और मध्य में पायी जाती है।

न्हाट १९७-२ ।सै।	तन्हाई ५४-१२ ।कु।	–
न्हासने ९४-७ ।कु।	पिन्हाँ ३३-४ ।सब।	

/प्/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि शब्द की सभी स्थितियों में पायी जाती है।

पाप ९-१३ ।कु।	कृपा ११०-१६ ।हि.ना।	शाप ११०-२० ।हि.ना।
पहचान २०-५ ।सै।	उपर १८८-३ ।कु।	बाप २८-२० ।फूल।
परवाना २१-१६ ।फूल।	तिरपती १४-१३ ।म।	चुप ११६-९ ।सब।

/फ्/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में यह ध्वनि प्रयुक्त है।

फिर ३५-२ ।फूल।	सिफत १७-१ ।कु।	माफ ५९-२५ ।हि.ना।
फुसला १७१-१ ।सब।	मुआफिक १७३-४ ।हि.ना।	अलिफ ३७-३ ।कु।
फूल १५४-१४ ।सै।	गिरफ्तार १८१-१४ ।हि.ना।	

/फ़्/ यह संघर्षी द्वयोष्ठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह अरबी के तत्सम

शब्दों में ही प्रयुक्त है। यह अरबी भाषा से आगत ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है।

फ़कीर १६२-७ ।सब।	मारिफ़त ३५-५८ ।फूल।	इन्साफ़ ३१-८ ।कु।
फ़ाम १०-१७ ।सै।	हाफ़िज़ २-१ ।कु।	हैफ़ ८३-१२ ।सब।
फ़रिश्ते ८५-२४ ।कु।	सफ़ाई १३-११ ।सब।	वाक़िफ़ ६९-४ ।सै।

/ब्/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

बात ३५-५९ ।फूल।	हबश ७२-४ ।सै।	सब १९३-२३ ।हि.ना।
बन ६६-२२ ।कु।	ख़बर ४२-१२ ।कु।	खूब ३५-१७ ।फूल।
बहुत १९३-१३ ।सै।	दरबार १४६-५ ।सब।	ख़राब ५४-८ ।सब।

/भ्/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

भेजिया १८७-३ ।सै।	गर्भिणी १९४-२२ ।हि.ना।	शुभ २०४-३ ।हि.ना।
भाता १४-१० ।मन।	गंभीर ५०-१५ ।सै।	ऋषभ १९४-४ ।हि.ना।
भोजन १२१-२३ ।सब।	सम्भाल ७८-१० ।कु।	

/म्/ यह अनुनासिक द्वयोष्ठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में आई है।

मगर ३८-४७ ।फूल।	सलामत ११५-१४ ।सै।	जन्म २०१-१३ ।हि.ना।
मतलब ६-८ ।मन।	कमल ५३-८ ।कु।	अंजाम २-११ ।मन।
मस्ती ८६-१ ।सब।	प्रमाण २३१-२९ ।हि.ना।	काम ४०-५५ ।फूल।

/म्ह्/ यह अनुनासिक महाप्राण ध्वनि कही जाती है, लेकिन स्वनिम नहीं मानी जा सकती है। यह शब्द की आरम्भिक म ध्वनि पर प्राण का बलाघात है। अस्तित्व की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण नहीं है। फिर भी परिगणना की दृष्टि से इस का उल्लेख असमीचीन नहीं होगा। एक आध उदाहरण इस प्रकार है।

म्हाड़ी १७३-१७ |सब|	तुम्हारा ३१-२४ |सै|	-

/य्/ यह अर्द्धस्वर तालव्य संघर्ष रहित सघोष ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

याक़ूत ३७-१० |फूल|	कोयलां ३७-२० |फूल|	न्याय २३१-२२ |हि.ना|
याचना २३०-१९ |हि.ना|	नयन १४१-१० |सै|	वाणिज्य २३०-२० |हि.ना|
यकपना ३१-५ |मन|	हयात १४७-३ |सब|	होय १७२-२० |सै|

/र्/ यह लुंठित वत्स्र्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। द्रविड़ भाषाओं में लुंठित र् के अतिरिक्त मूर्द्धन्य र् प्रयुक्त है। हिन्दी की कुछ बोलियों में कठोर र है। लेकिन साहित्यिक दक्खिनी में कोमल र् अर्थात् वत्स्र्य र् का प्रयोग ही मिलता है। यह ध्वनि शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

राज़ी ८४-१६ |फूल|	भारती ७७-१७ |हि.ना|	अगर ८४-१ |फूल|
रसूल २२-२ |सब|	हैरान ४८-४ |सै|	नज़र ६-१ |मन|
रहमान ४२-१८ |सै|	सूरत २१-३ |सब|	अपार १०६-२१ |कु|

/ल्/ यह पार्श्विक वत्स्र्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

लाल ४८-१५ |कु|	क़लम ८४-३४ |फूल|	अनुकूल ९१-१ |हि.ना|
लगन २२-१ |सब|	मिलन ६८-१२ |सै|	डाल ८५-३२ |फूल|

लम्बा ७५-११ |सै|　　ढलते ७१-१ |कु|　　दिल २-४ |मन|

/व्/ यह अर्द्धस्वर दन्त्योष्ठ्य संघर्षी सघोष ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

वृत्ति २३०-१७ |हि.ना|　　कंवल ८५-१७ |फूल|　　देव ३५-८ |कु|

वह २३४-१७ |हि.ना|　　हवस ३१-१६ |कु|　　निर्जीव ६६-३ |सब|

वादा ७-८ |मन|　　सवाद १४७-१ |सब|　　पाव ९७-२६ |फूल|

/श्/ यह तालव्य संघर्षी अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

शहज़ादे ९६-१ |फूल|　　इशरत ४२-१० |कु|　　खुश १०७-११ |कु|

शाम १-१० |मन|　　दुश्मन १४८-१० |सब|　　अँदेशा १५१-२२ |सब|

शिकार १२९-११ |हि.ना|　　इशारह ८-१५ |मन|　　ग़श ९३-२८ |फूल|

/ष्/ यह मूर्द्धन्य संघर्षी अघोष व्यंजन ध्वनि है। जो उदाहरण प्राप्त हैं वे संस्कृत तत्सम शब्द ही है। यह ध्वनि शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

षट्कर्म १७६-३ |हि.ना|　　निष्फलाँ ७६-२२ |हि.ना|　　महापुरुष १५-४ |मन|

पोषण १६०-१ |हि.ना|　　संतोष २०५-३ |हि.ना|

/स्/ यह वर्त्स्य संघर्षी अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द तीनों स्थितियों में प्रयुक्त हुई है।

सात ९३-२४ |फूल|　　एहसान ७०-३ |सै|　　उस २३-१ |सब|

सेवक ८६-११ |हि.ना|　　सामने ९१-१८ |फूल|　　पास ७६-११ |कु|

सवाद २३-१८ |सब|　　दूसरा १६२-१५ |हि.ना|　　दास ३-३ |मन|

/ह्/ यह स्वरयंत्रमुखी काकल्य संघर्षी सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

हक़ १३-५ |कु|	मुँहताज १७-१४ |सै|	बादशाह २३-३ |सब|
हम ३-४ |मन|	ग्रहण १७९-३१ |हि.ना|	शह ८५-२२ |कु|
हकाल १७८-५ |हि.ना|	महल १५-७ |मन|	तरह १७५-८ |हि.ना|

/ज्ञ्/ यह संयुक्त व्यंजन ध्वनि है। ज्ञ् में ज+ङ का योग है। इसका उच्चारण ग्य के रूप में प्राय होता है। यह शब्द के आदि, मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है।

ज्ञान ७५-१ |कु|	संज्ञा ७५-८ |हि.ना|	सर्वज्ञ १७१-१० |हि.ना|
ज्ञाप्ति ८०-२ |हि.ना|	विज्ञापन ८३-२० |हि.ना|	विशेषज्ञ ७७-१० |हि.ना|

हमज़ा इसका स्थान अलिजिह्वीय है। अरबी ध्वनि हमज़ा दक्खिनी में अरबी-फ़ारसी शब्दों में प्रयुक्त हुई है। "हमज़ा की कोई मख़सूस शकल नहीं होती वो तीन शक्लों में आता है-अलिफ़, वाउ, ए।"[१] हिन्दी 'ए' और 'ओ' का स्पष्ट उच्चारण करने के लिए हमज़ा का प्रयोग दक्खिनी में किया जाता है। उदाहरण के लिए शब्द 'सुनिए'। फ़ारसी लिपि में 'ए' के साथ हमज़ा लगाने पर ही 'ए' की ध्वनि आती है। उसी तरह 'असमाँ' शब्द में अन्त में मीम् के साथ अलिफ़ को रखने पर 'मा' होता है। यदि अन्तिम अलिफ़ के साथ हमज़ा लगाया जाए तो 'असमाँ' बनता है अन्यथा बिना हमज़ा के उसका उच्चारण 'असमा' ही रहेगा। उर्दू में अलिफ़, व्, ए के साथ हमज़ा का इस्तेमाल होता है। उदा० बताओ, सुनाओ, खाओ। इन शब्दों में 'ओ' ध्वनि के साथ हमज़ा का प्रयोग हुआ है। कहना का अर्थ यह है कि उर्दू में हर स्वर के साथ हमज़ा का इस्तेमाल किया जाता है ताकि शब्दों में स्वर का सही उच्चारण हो सके। इसी का प्रभाव दक्खिनी में मौजूद है।

उदा०

षष्ठी तत्पुरूष - सुनाए मुहम्मद।

'य्' का उच्चारण स्वर से पृथक करने के लिए - क़ायल। हिन्दी 'ए' को पूर्ववर्ती स्वर से भिन्न रखने के लिए - आइए जनाब।[२]

६.१.२) दक्खिनी हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था

६.१.२.१) संयुक्त व्यंजन व्यवस्था :

६.१.२.१.१) आदि व्यंजन व्यवस्था :

इसके अन्तर्गत चार प्रकार मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं।

i)	स्पर्श + स्पर्शेतर	क् + य्	-	क्या २०१-६ |सब|
		ख् + य्	-	ख़्याल ३-१६ |कु|
		ख् + व्	-	ख़्वाहिश ९५-१४ |हि.ना|
		ज् + य्	-	ज्यास्त १०८-२३ |कु|
				ज्यादा १३७-२ |सब|
		प् + य्	-	प्यारी १५०-१ |हि.ना|
		त् + य्	-	त्वरित ९४-११ |हि.ना|
		प् + र्	-	प्रान ७६-१ |सब|
		भ् + य्	-	भ्याव(विवाह) १७८-४ |कु|
ii)	स्पर्शेतर + स्पर्श	स् + थ्	-	स्थल १६९-११ |हि.ना|
		स् + प्	-	स्पर्धा ९५-२२ |हि.ना|
		स् + फ्	-	स्फूर्ति १५३-३ |हि.ना|
iii)	अनुनासिक + स्पर्शेतर	न् + य्	-	न्यासने ९५-२२ |कु|
		न् + ह्	-	न्हाट ११२-१३ |सब|
		म् + य्	-	म्यान ३७-१३ |सब|
		म् + ल्	-	म्लेच्छ ६५-२० |हि.ना|
		म् + ह्	-	म्हाड़ी १७३-१७ |सब|

iv) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर	ल् + य्	-	ल्यानहारा १४४-१३ |कु|
	ल् + ह्	-	ल्हाफ ३३-९ |मन|
	व् + य्	-	व्याधि १५२-१४ |हि.ना|
	व् + ह्	-	व्हाँ २१-४ |हि.ना|
	श् + य्	-	श्यामल ६९-२६ |हि.ना|

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि स्पर्श स्पर्शेतर व्यंजन-संयोग की आदि स्थिति में द्वितीय व्यंजन अंतस्त ही है, विशेषत: 'य्' और 'व्'। स्पर्शेतर स्पर्श के जो उदाहरण मिलते हैं वे संस्कृत स्रोती हैं। खासकर ये उदाहरण श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक में ही मिलते हैं, जो तेलुगु भाषा की रचनाएँ हैं। अनुनासिक स्पर्शेतर व्यंजन-संयोग में द्वितीय व्यंजन 'य्', 'ह्' और 'ल्' ही मिलते हैं।

६.१.२.१.२) मध्य व्यंजन-संयोग :

दक्खिनी हिन्दी में मध्य व्यंजन-संयोग की बहुलता है। इस मध्य संयुक्त व्यंजन के अन्तर्गत प्राप्त उदाहरणों के आधार पर निम्नलिखित आठ वर्ग उभरते हैं-

i) स्पर्श + स्पर्श	क् + ख्	-	दक्खनी ७५-७ |कु|
	ख् + त्	-	सख़्त १७९-१९ |सै|
	ख् + त्	-	बख़्तवर २६-२ |सै|
	ग् + ध्	-	अनुग्धर १९-१५ |हि.ना|
	च् + छ्	-	अच्छर १-८ |सब|
	त् + प्	-	समुत्पन्न १५०-४ |हि.ना|
	प् + त्	-	प्राप्ति १०९-१९ |हि.ना|
	फ् + त्	-	गुफ्तार ४५-२ |मन|
	ब् + ज्	-	अब्जाँ ९७-२७ |हि.ना|
	ब् + त्	-	मुब्तदी १७-१० |सै|
	ब् + द्	-	लुब्दाई ७०-४ |कु|

ii) स्पर्श + स्पर्शेतर	क् + य्	-	चूक्या २००-१३ ।सब।
	क् + ल्	-	अक़्ल १४९-३ ।सब।
	क् + व्	-	तक़्वा ५८-६ ।सब।
	ग् + र्	-	अनुग्रह १८७-१५ ।हि.ना।
	ग् + य्	-	लग्या १९-१० ।सै।
	च् + व्	-	रच्वा ३-४ ।कु।
	ज् + य्	-	नवाज़्या ३५-१५ ।सै।
	ड् + य्	-	पड्या १८४-१० ।कु।
	ट् + य्	-	सट्या २८-३ ।सै।
	त् + प्	-	परित्याग १५३-१५ ।हि.ना।
	त् + व्	-	सत्वर २५१-५ ।हि.ना।
	ब् + ज्	-	अब्ज़योनी ३६-१४ ।मन।
	ब् + र्	-	जिब्रेल १८-३ ।कु।
	ब् + ल्	-	शिब्ली १८७-११ ।सब।
iii) स्पर्शेतर + स्पर्श	र् + ख्	-	सुर्खरु ५६-१० ।कु।
	र् + क्	-	तर्कश १११-१७ ।सब।
	र् + छ्	-	मूर्छागत १४-२ ।हि.ना।
	र् + ड्	-	कोर्डा ४९-७ ।हि.ना।
	र् + ज्	-	दर्जे ३९-१९ ।सै।
	र् + द्	-	मुर्दा १०-८ ।मन।
	र् + प्	-	दर्पन २९-१२ ।कु।
	ल् + क्	-	मुल्क १८०-११ ।कु।
	श् + क्	-	मुश्किल १३१-५ ।सब।
	श् + त्	-	मुश्ताक़ ७९-१९ ।सब।
	स् + क्	-	भास्कर ३६-१० ।मन।

	ष् + ट्	-	सृष्टि ७५-१५ ।हि.ना।
	स् + ज्	-	मस्जिद १२-२५ ।सब।
	स् + त्	-	रूस्तम २२-२० ।सै।
	स् + त्	-	मुस्तक़ीम १-१ ।सब।
iv) अनुनासिक + स्पर्शेतर	न् + य्	-	पछान्या १६९-१ ।सब।
	न् + स्	-	इन्साफ़ २००-१४ ।सब।
	न् + ह्	-	पिन्हाँ ३३-४ ।सब।
	म् + य्	-	दरम्यान ७०-२० ।सै।
	म् + ह्	-	तुम्हारा ६९-५ ।हि.ना।
v) अनुनासिक + स्पर्श	ण् + ट्	-	कुण्टल ७१-३ ।कु।
	न् + त्	-	अन्तर १५३-१८ ।सै।
	न् + ध्	-	सुन्धरियाँ ४७-११ ।कु।
	म् + ब्	-	पयम्बर ३६-१५ ।मन।
	म् + भ्	-	सम्भाल ७८-१० ।कु।
	न् + द्	-	सन्दूक़ १२९-२२ ।सै।
vi) स्पर्श + अनुनासिक	त् + न्	-	धुत्नारा ५५-८ ।सै।
	द् + म्	-	आत्मा १२-१७ ।मन।
vii) स्पर्शेतर + अनुनासिक	र् + म्	-	फर्माना ६४-१९ ।हि.ना।
			गर्मी १७३-२ ।सब।
	ल् + म्	-	अल्मास ७०-१ ।सब।
	श् + म्	-	दुश्मन २७-६ ।सै।
	ष् + ण्	-	जिष्णु २४२-२४ ।हि.ना।
	ष् + म्	-	दानिष्मंद ६९-४ ।हि.ना।

	स् + म्	-	नामस्मरण ५५-२७ |हि.ना|
viii) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर	र् + य्	-	पुकार्या ६७-१४ |सब|
	र् + व्	-	सर्वरे १०१-३ |सै|
	र् + श्	-	मुर्शद ९-२० |सब|
	र् + स्	-	फुर्सत २०२-२ |सब|
	ल् + य्	-	कल्याण १३५-३ |हि.ना|
	श् + व्	-	रिश्वत २९-७ |मन|
	ह् + य्	-	कह्या १३५-१३ |कु|

६.१.२.१.३) <u>अंत्य व्यंजन-संयोग</u> :

आलोच्य भाषा में प्राप्त उदाहरणों के आधार पर इस वर्ग के नौ भेद मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं-

i) स्पर्श + स्पर्श	क् + ख्	-	सुक्ख १२३-५ |कु|
	क् + त्	-	वक्त १५९-४ |हि.ना|
	ख् + त्	-	तख़्त ५५-१५ |सै|
	ड् + ग्	-	खड्ग २१-२१ |कु|
	प् + त्	-	संतृप्त ८६-५ |हि.ना|
	फ् + त्	-	हफ्त २४-१६ |मन|
	ब् + क्	-	कब्क ८३-११ |सै|
ii) स्पर्श + स्पर्शेतर	क् + र्	-	फिक्र १०-२१ |कु|
	ख् + श्	-	रख़्श २०१-३ |सै|
	ग् + य्	-	दौर्भाग्य ३२-३ |हि.ना|
	ज् + र्	-	बज्र ८०-१ |सब|
	त् + र्	-	चित्र १४१-११ |कु|

	द् + र्	-	शबेक़द्र २०४-६ ।सै।
	त् + य्	-	दैत्य ६९-२७ ।हि.ना।
	ध् + य्	-	असाध्य २६-१ ।हि.ना।
	भ् + य्	-	लभ्य १९-१५ ।हि.ना।
	भ् + र्	-	शुभ्र १६१-२ ।हि.ना।
iii) स्पर्श + अनुनासिक	ख् + म्	-	ज़ख़्म १३९-१ ।सब।
	ज़् + म्	-	नज़्म २१९-१३ ।सै।
iv) अनुनासिक + स्पर्श	ण् + ड्	-	झुण्ड १०६-९ ।कु।
	न् + त्	-	गुनवन्त ५०-५ ।मन।
	न् + द्	-	ख़िरदमन्द १८६-४ ।सै।
	न् + द्	-	फ़र्ज़न्द १४९-८ ।सब।
v) अनुनासिक + अनुनासिक	न् + म्	-	जन्म ६५-२४ ।हि.ना।
	म् + न्	-	अम्न १६७-७ ।सै।
vi) स्पर्शेतर + अनुनासिक	र् + ण्	-	परिपूर्ण १८-१२ ।हि.ना।
	र् + म्	-	गर्म १६-१५ ।सै।
	ल् + म्	-	इल्म १४-१७ ।कु।
	स् + न्	-	हुस्न ७५-१ ।सब।
	स् + म्	-	जिस्म १०-११ ।कु।
vii) अनुनासिक + स्पर्शेतर	ण् + य्	-	अरण्य २१७-१ ।हि.ना।
	न् + य्	-	शून्य ४५-१३ ।मन।
	न् + स्	-	जिन्स ९-३ ।सब।
	म् + र्	-	उम्र ६४-३ ।सब।

viii) स्पर्शेतर + स्पर्श	ज़् + क़्	-	रिज़्क़ ५-१३ |कु|
	र् + ग्	-	बुजुर्ग ४९-१३ |हि.ना|
	र् + च्	-	खर्च ५१-२७ |हि.ना|
	र् + थ्	-	सकलार्थ ७५-६ |हि.ना|
	र् + द्	-	मर्द १६१-७ |सै|
	र् + ब्	-	कुर्ब ८७-१३ |सब|
	ल् + क्	-	मुल्क २३-४ |सै|
	ल् + प्	-	स्वल्प ३१-१० |हि.ना|
	श् + क्	-	इश्क २०-१८ |सै|
	श् + त्	-	बहिश्त ९-२० |कु|
	ष् + ट्	-	अभीष्ट २६२-२० |हि.ना|
	ष् + प्	-	पुष्प १७८-१० |हि.ना|
	स् + त्	-	मस्त ३०-१९ |सब|
	स् + थ्	-	गृहस्थ २१-२ |हि.ना|
ix) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर	फ़् + र्	-	कुफ्र ३९-४ |मन|
	फ़् + ल्	-	कुफ़्ल ६-६ |कु|
	र् + ग़्	-	खर्ग़ २३-१ |सै|
	र् + फ़्	-	शर्फ़ ३५-१९ |सब|
	र् + य्	-	दूतकार्य १६-१२ |हि.ना|
	र् + श्	-	फर्श १९-९ |कु|
	र् + स्	-	हिर्स ११-९ |मन|
	श् + य्	-	अदृश्य १९९-२ |हि.ना|
	ष् + य्	-	मनुष्य ३५-१५ |हि.ना|

६.१.२.२) **<u>द्वित्व व्यंजन</u> :**

दक्खिनी हिन्दी में दित्व व्यंजन-संयोग में आरम्भिक

स्थिति में एक उदाहरण ही मिलता है। दक्खिनी हिन्दी में भी हिन्दी की तरह अंत्य स्थिति में इसकी व्यवस्था नहीं है। कारण भी यही है कि स्वर के बिना अंत्य द्वित्व व्यंजन का अस्तित्व नहीं है। दक्खिनी हिन्दी में द्वित्व व्यंजन के उदाहरण काफ़ी है, जो निम्न वर्गों में विभाजित हैं।

i)	अल्पप्राण + अल्पप्राण	क् + क्	-	दुक्कान ३०-१२ |कु|
		ग् + ग्	-	दृग्गोचर २५०-१३ |हि.ना|
		च् + च्	-	बच्चे २२-२३ |हि.ना|
		ज़् + ज़्	-	लज़्ज़त १७५-१४ |सब|
		त् + त्	-	अलबत्ता ११०-१ |सब|
		द् + द्	-	नद्दी १३४-१ |हि.ना|
		न् + न्	-	जन्नत ६२-४ |सै|
				सुन्ना १२९-१३ |कु|
		प् + प्	-	बुडप्पन ८१-६ |कु|
		ब् + ब्	-	मुहब्बत ६९-४ |सै|
ii)	अल्पप्राण + महाप्राण	क् + ख्	-	दक्खनी ७५-७ |कु|
		च् + छ्	-	अच्छा २५०-२ |हि.ना|
iii)	महाप्राण + महाप्राण	ख़् + ख़्	-	मुअख़्ख़र ३-२ |कु|
iv)	अन्य द्वित्व व्यंजन	त् + त्	-	फत्ताह १-१० |कु|
		द् + द्	-	कुद्दुस १-११ |कु|
		म् + म्	-	हिम्मत १०३-८ |सै|
		य् + य्	-	तग़य्यीर ६२-२ |सै|
		र् + र्	-	मोकर्रर २८-१८ |हि.ना|
		व् + व्	-	ग़व्वास २४-१५ |सै|

स् + स्   -   वस्सलाम ११-१४ ।सै।

उपरोक्त वर्गीकृत तालिका में मध्य व्यंजन द्वित्व की स्थिति को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त आदि द्वित्व व्यंजन का एक मात्र उदाहरण प्राप्त है-

व् + व्   -   व्वही ५-१८ ।मन।

६.१.२.३) त्रि-व्यंजनात्मक संयोग :

दक्खिनी हिन्दी में त्रि-व्यंजनात्मक संयोग के उदाहरण कम मात्रा में मिलते हैं। प्राप्त हुए कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

न् + द् + र् -   रामचन्द्र ६५-१ ।हि.ना।

न् + ध् + य् -   बीन्ध्या २०३-१४ ।सब।

र् + थ् + य् -   सामर्थ्य ८०-११ ।हि.ना।

श् + त् + य् -   दर्म्यान ४३-८ ।मन।

श् + त् + य् -   कश्त्याँ ७०-९ ।सै।

ष् + ट् + य् -   दौष्ट्याँ ६८-१२ ।हि.ना।

स् + ख् + त् -   बफ़िस्ख्तल १२२-१२ ।सब।

स् + त् + र् -   स्त्री २५१-१२ ।हि.ना।

६.१.३) ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ :

भाषा परिवर्तनशील है। भाषा प्रवाह में ध्वनि परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किसी भाषा में ध्वनि परिवर्तन उच्चारण की सुविधा, बोलने में शीघ्रता, बलाघात, विदेशी ध्वनियों का अपनी भाषा में अभाव आदि कारणों से होते हैं। ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं पर विचार करते समय सामान्यत आगम, लोप, विपर्यय तथा विकार आदि विधाओं पर ध्यान दिया जाता है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में उपरोक्त ध्वनि परिवर्तन के सभी रूप प्राप्त है। इन ध्वनि परिवर्तनों पर विश्लेषण आगे प्रस्तुत है।

६.१.३.१) आगम : आगम के दो रूप मिलते हैं - स्वरागम, व्यंजनागम।

६.१.३.१.१) **स्वरागम :**

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में आदि, मध्य और अंत्य स्वरागम की स्थितियाँ मिलती है। आदि और अंत्य स्वरागम के उदाहरण कम मिलते हैं।

अ) आदि स्वरागम :

मां > अम्मा ८७-२२ ।सब।

स्थान > अस्थान १६-४ ।मन।

स्तुत > अस्तुत ४६-९ ।मन।

स्नान > आस्नान २२२-३ ।हि.ना।

स्फुरण > अस्फुरण ४४-१४ ।मन।

आ) मध्य स्वरागम :

दक्खिनी हिन्दी में मध्य स्वरागम के अन्तर्गत स्वर भक्ति की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। इस प्रवृत्ति के अलावा मध्य स्वरागम + व्यंजन द्वित्वीकरण, मध्य स्वरागम + व्यंजन समीकरण + समीकृत व्यंजन पुनरागमन की प्रवृत्ति भी पायी जाती है।

i) स्वर भक्ति : स्वर भक्ति में कहीं-कहीं स्वर भक्ति के साथ अंत्य व्यंजन में अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति और कही द्वित्व व्यंजन लोप की प्रवृत्ति भी है।

'अ' संबंधित स्वर भक्ति के उदाहरण -

मूर्ख > मूरक ७-१८ ।सब। यहाँ ख > क की प्रवृत्ति है।

रत्न > रतन ४-१० ।सै।

जन्म > जनम ३-११ ।सब।

ऊर्ज > अरज ९-५ ।हि.ना।

प्रधान > परधान ६५-२२ ।सै।

त्रिलोक > तिरलोक ३९-२ ।कु।

शर्म > शरम १३-२ ।सब।

'आ' संबंधित स्वर भक्ति -

सत्य > साच ९-१ |कु|

(हिन्दी की कुछ बोलियों में सत्य > साँच की प्रवृत्ति मिलती है।)

'इ' से संबंधित स्वर भक्ति -

सन्यासी > सनियासी १९-१ |मन|

प्यारी > पियारी ६०-१४ |सै|

प्रीत > पिरित ६०-११ |सै|

ii) <u>स्वरागम + व्यंजनद्वित्व</u>

रत्न > रत्तन ३५-१२ |हि.ना|

जत्न > जत्तन ३७-७ |हि.ना|

यत्न > यत्तन १८७-१३ |हि.ना|

iii) <u>स्वरागम + समीकरण + समीकृत व्यंजन पुनरागमन</u>

यथा - पवित्र > पवित्त + अर = परिवत्तर।

पात्र > पात्तर ६४-१२ |हि.ना|

पवित्र > पवित्तर ३५-१ |हि.ना|

मात्र > मात्तर १४-२४ |हि.ना|

विचित्र > बिचत्तर १०१-८ |सब|

उपरोक्त परिशीलन से यह स्पष्ट है कि स्वर भक्ति की प्रवृत्ति र्, त्, प् के साथ ही मिलती है।

इ) <u>अंत्य स्वरागम</u> :

अ - चन्द्र > चन्दर ८-९ |सै|, २५-७ |मन|, ११-१४ |सब|

आ - दुंबाल > दुंबाला ४७-४ |सब|

ई - मां > माई १७०-९ |सै|, ५०-२३ |सब|

किस्त > किस्ती ३६-१० |हि.ना|

६.१.३.१.२) **व्यंजनागम :**

आदि, मध्य और अंत्य व्यंजनागम की प्रवृत्ति दक्खिनी हिन्दी में मिलती है।

अ) आदि :

य् - अकेला > यकेला ७२-१९ |कु|

एकाएक > यकायक ११-२२ |सब|

ह् - इशारा > हिशारा १०५-४ |हि.ना|

और > हौर ५-७ |सै|, ३-३ |मन|

ओर > होर १६३-२८ |सब|

आ) मध्य :

म् - चींटी > चिमटी २८-२४ |सब|

व् - लोहा > लहवा १६२-१८ |सब|

लोहार > लहवार ११९-१५ |सब|

य् - हरा > हरया २-११ |सै|

इ) अंत्य :

व् - घी > घीव १७०-१० |कु|

स् - एक > एकस १७०-१६ |सै|, ३-४ |सब|

६.१.३.२) **लोप :**

६.१.३.२.१) **स्वर - लोप :**

दक्खिनी हिन्दी में आदि स्वर लोप की प्रवृत्ति नहीं मिलती है। लेकिन मध्य और अंत्य स्वर लोप की स्थिति है।

अ) मध्य स्वर-लोप :

आ - माहवार > मह्वार २८-१८ |हि.ना|

इ - हथियार > हत्यार ५८-२५ |हि.ना|

उ - महापुरुष > महापुर्ष १५-४ |मन|

आ) अंत्य स्वर-लोप :

आ - झगड़ा > झगड़ १११-८ |सब|

सपना > सपन ४४-१३ |मन|

इ - रूचि > रूचे १४४-६ |सब|

सुधि > सुद १७०-२३ |सै|

ई - धरती > धरत ७-७ |सै|, ४-६ |कु|

नहीं > नह ४-५ |मन|

नारी > नार ८३-२२ |कु|

उ - वस्तु > बस्त २८-१५ |सब|

उपरोक्त उदाहरणों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अंत्य स्वरलोप के साथ द्वित्व व्यंजन में एक व्यंजन के लोप की प्रवृत्ति भी है और स्वर विपर्यय भी द्रष्टव्य है। यथा- पत्ता > पात। कहीं-कहीं अंत्य स्वरलोप के साथ अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति भी है - सुधि > सुद तो साथ ही नये स्वर का आगम है - रूचि > रूचे।

६.१.३.२.२) व्यंजन-लोप :

व्यंजन लोप में आदि व्यंजन लोप की अपेक्षा मध्य और अंत्य लोप की बहुलता है।

अ) आदि :

र् - रंभाये > भाये ९६-५ |सै|

स् - स्नेह > नेह १०९-२४ |कु|

आ) मध्य :

द् - नज़दीक > नज़िक २९-५ |सै|

न् - जितना > जिता १४-१४ |सै|

य् - नयन > नैन ५३-१ |सै|

बयान > बैन ६३-१९ |सब|

व् - अवतार > औतार १२-१३ |सै|, ४४-९ |कु|

गोविंद > गोइंद ६-१६ |मन|

दिवस > दीस ८-२ |सै|

स्वरूप > सरूप ८७-१४ |सै|

बेवकुफ > बेखूब ४४-११ |हि.ना|

ह् - कहना > कना ११३-७ |सै|

कहकर > ककर १३५-२२ |कु|

पहचान > पछान ५६-१७ |सै|

ठहरता > ठारता ९-७ |मन|

बाहर > भार १६-८ |सै|

वहाँ > वाँ १२३-३ |कु|

कंगही > कंगोई ९४-१८ |कु|

साहब > साब ४६-७ |हि.ना|

यहाँ > याँ २१४-१२ |हि.ना|

उपरोक्त उदाहरणों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि मध्य व्यंजन लोप के साथ कहीं-कहीं महाप्राणीकरण भी हुआ है। यथा- पहचान > पछान। मध्य व्यंजन लोप की प्रवृत्ति व्, ह् ध्वनियों में अधिक मिलती है।

इ) अंत्य :

ज् - सूरज > सूर ७९-२३ |कु|

त् - बहुत > भौ ११२-३ |कु|

म् - भूमि > भुईं १६९-१६ |कु|, > भूईं १२०-४ |सब|

जन्म > जन २४-२९ |हि.ना|

य् - सत्य > सच ३९-२६ |सब|

भाग्य > बाग १३८-२ |से|

ह् - चौदह > चौदा १४-३ |कु|, १११-१ |सब|

मुह > मूँ १३-११ |सब|

तसबीह > तसबी १८-७ |मन|

सुबह > सुबा १२-१५ |मन|

बारह > बारा ५४-३ |हि.ना|

उपरोक्त उदाहरणों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि अंत्य व्यंजन लोप के साथ कहीं अल्पप्राणीकरण, कहीं महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति है। यथा -

बहुत > भौ।

भाग्य > बाग।

ई) स्वर + व्यंजन लोप :

देवालय > देवल ४४-५ |हि.ना| (क्रमश; आ, य् लोप)

मछली > मची ३९-९ |मन| (क्रमश: अ, ल् लोप)

इस प्रवृत्ति के साथ अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

६.१.३.३) अल्पप्राणीकरण :

दक्खिनी हिन्दी में अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति आदि, मध्य और अंत्य स्थितियों में मिलती है।

अ) आदि :

फ > प - फराख्त > पराखत २४-२८ |हि.ना|

आ) <u>मध्य</u> :

ख > क - नखरा > नकरा ४८-१४ |हि.ना |

भिखारी > भिकारी ३५-६ |कु |

सुखी > सुकी ८-६ |सै |

सखी > सकी १५५-१६ |सब |

घ > ग - घूंघट > घूँगट १९-१८ |सब |

पिघल > पिगल १७२-१९ |सै |

ठ > ट - हठीला > हटीला १९९-१३ |सै |

ध > द - साधन > सादना १२०-४ |सब |

अधिक > अदिक ४१-२१ |कु |

अन्धकार > अन्दकार १५-१९ |कु |

लाख > लाक ४१-२१ |कु |

आधा > आदा ४९-१० |हि.ना |

i) <u>मध्य व्यंजन में अल्पप्राणीकरण + स्वरलोप</u>

भ > ब - आभरण > अबरन १०८-१० |सै |

इ) <u>अंत्य</u> : ख > क - भूख > भूक १२०-३ |सब |, > भूँक ५-११ |कु |

अलख > अलक १-७ |मन |

ख > ग - मेघ > मेग ७१-५ |सै |

छ > च - कुछ > कुच ६-२२ |कु |

झ > ज - समझ > समज ६५-१७ |सै |

ठ > ट - मठ > मट १५-१ |मन |

ढ़ > ड़ - गढ़ > गड़ ६६-२० |सै |

थ > त - हाथ > हात ८-१२ |सै|, २६-६ |कु|, ४-८ |मन|

पन्थ > पन्त १-१८ |सै|, ११-१७ |कु|

जगन्नाथ > जगन्नात १९-२ |मन|

ध > द - दूध > दूद १२-९ |मन|

बांध > बाँद ५०-१८ |सब|, ८-७ |मन|

भ > ब - जीभ > जीब २३-१ |सै|

i) <u>अंत्य अल्पप्राणीकरण + स्वरागम</u>

भ > ब + अ - गर्भ > गरब १५५-९ |कु|

६.१.३.४) **महाप्राणीकरण** :

महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति आदि और मध्य स्पर्श व्यंजनों में ही पायी जाती है।

अ) <u>आदि</u> :

क > ख - कंधा > खाँदा ७-१० |सै|

(यद्यपि इसका मूल संस्कृत शब्द स्कंध है फिर भी यहाँ मूल शब्द के रूप में कंधा ही लिया जा सकता है।)

च > छ - चुप > छुप २२०-९ |हि.ना|

ज > झ - जुटाले > झुटाले ८५-११ |कु|

प > फ - पसंद > फसंद ५३-८ |हि.ना|

i) <u>महाप्राणीकरण + व्यंजन लोप</u>

यह प्रवृत्ति उन्हीं शब्दों में पायी जाती है, जिनमें द्वितीय व्यंजन 'ह् ' है। यहाँ 'ह् ' लोप के साथ स्वर संधि की प्रवृत्ति भी विशेष उल्लेखनीय है।

ब > भ - बहन > भान १३८-१४ |सै|, ६८-१७ |कु|

बाहर > भार १४१-४ |सै|, २-४ |मन|

बहुत > भोत १३०-१० ।कु।, ३-३ ।सब।

आ) मध्य : ज > झ - उजाड़ > उझाड़ १६-९ ।हि.ना।

द > ध - मंदिर > मन्धिर १०-११ ।कु।

सुंदर > सुन्धर ६४-२१ ।कु।

i) मध्य व्यंजन महाप्राणीकरण + व्यंजन लोप

इस स्थिति में अल्प- प्राणीकरण ध्वनि से पहले 'ह् ' की स्थिति मूल में होती है।

च > छ - पहचान > पैछान २८-५ ।कु।

६.१.३.५) सघोषीकरण :

सघोषीकरण की प्रवृत्ति सिर्फ एक ध्वनि में हुई है। सघोषीकरण प्रवृत्ति के साथ कहीं स्वरागम भी हुआ है। यथा-

क > ग - शोक > सोग ६-१५ ।मन।

प्रकट > प्रगट १०-३ ।कु।

सकल > सगल १२-५ ।सै।

वर्षाकाल > वरशगाल ७१-६ ।सै।

६.१.३.६) अघोषीकरण :

अघोषीकरण शब्द के आदि, मध्य और अंत्य व्यंजन में हुआ है। उदाहरण दृष्टव्य है-

अ) आदि : ब > प - बादशाह > पादशाह १०३-३ ।सब।

आ) मध्य : ग > क - जगा > जका ४-३ ।सै।

नगद > नकद ५०-२६ ।हि.ना।

ब > प - उबटन > उपटन २३-४ ।मन।

इ) <u>अंत्य</u> : ग > क - लोग > लोक १६२-५ ।सब।,
(लोग के अर्थ में लोक प्रयुक्त है)
संभोग > संभोक १९२-१६ ।कु।

६.१.३.७) दंत्यीकरण :

दंत्यीकरण की प्रवृत्ति मूर्द्धन्य ध्वनियों के साथ ही पायी जाती है।

ट > त - टुकडा > तुकड़े ३२-१६ ।मन।, १०३-२ ।सब।
, ठ > य - ठंड > थण्ड ७४-२ ।कु।
ड > द - डेढ़ **>** देढ़ २८-२७ ।हि.ना।
ढ़ > ध - ढूँढ़ता > धूंढ़ता ३-१८ ।कु।
ण > न - कारण > कारन ३०-२२ ।सै।, ६२-९ ।कु।
चरण > चरन १४-६ ।मन।, २००-५ ।सै।
दर्पण > दर्पन २९-१२ ।कु।
रण > रन २५-१२ ।सब।
ष > स - पुरूष > पूरस २-१५ ।सब।

६.१.३.८) मूर्धन्यीकरण :

यह प्रवृत्ति सिर्फ थ्, स्, श् ध्वनियों के साथ ही मिलती है।

थ > ट - पंथ > पंट ५५-२२ ।सै।
स+थ > ठ - स्थल > ठार १२१-१२ ।कु।, ९९-८ ।सै।
श > ष - नशा > निषा १६२-२० ।हि.ना।
बादशाह > पादुषा ३०-५ ।हि.ना।

६.१.३.९) **<u>कंठ्यीकरण</u>** :

इस प्रवृत्ति का एक ही उदाहरण प्राप्त है -

त > क - सौतन > सौकन १७६-१९ |सब|

६.१.३.१०) **<u>नासिक्यकरण</u>** :

इस प्रवृत्ति की दो स्थितियाँ मिलती है। प्रथम स्थिति में आदेश की प्रवृत्ति है तो द्वितीय स्थिति में अनुनासिक व्यंजन लोप भी है -

० > ँ - ऊखली > उँखली २३०-१६ |हि.ना|

ं > ा - अंग > आंग ३५-१७ |हि.ना|

न > ँ - आसमान > आसमाँ ९०-२४ |सब|

निशान > निशाँ १६०-२१ |कु|

न > ं - जान > जां २०-४ |मन|

जमीन > ज़मीं २-११ |सै|, २३-८ |कु|

म > ँ,व - कमल > कँवल ६९-१७ |सब|

भ्रमर > भँवर १६८-१३ |सब|

६.१.३.११) **<u>द्वित्वीकरण</u>** :

आरम्भिक एवं अंत्य स्थिति में इसकी व्यवस्था नहीं है। अंत्य द्वित्व व्यंजन का अस्तित्व स्वर के बिना नहीं है। दक्खिनी हिन्दी में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। कुछ उदाहरण वर्गीकृत रूप में द्रष्टव्य हैं-

अ) <u>स्पर्श + स्पर्श</u> :

क > क - दुकान > दुक्कान ३०-१२ |कु|

रुक > रुक्का ६०-७ |हि.ना|

ग > ग - सगा > सग्गा ६०-१२ |हि.ना|

द > द - नदी > नद्दी १३४-१ |हि.ना|

आ) <u>अनुनासिक + अनुनासिक</u> :

न > न - सोना > सुन्ना १२८-२ |कु|

अनार > अन्नार १५३-२२ |कु|, ११३-१९ |सै|

म > म - नमक > नम्मक ४८-१२ |हि.ना|

इ) स्पर्शेतर + स्पर्शेतर :

ल > ल - गुलाब > गुल्लाब १०६-१२ |कु|

६.१.३.१२) समीकरण :

समीकरण में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं- व्यंजन समीकरण + पूर्वस्वर दीर्घीकरण, व्यंजन समीकरण + पूर्वस्वर दीर्घीकरण + अंत्य स्वर लोप। जहाँ शब्द में पूर्व स्वर पहले से मौजूद है वहाँ दीर्घीकरण की प्रवृत्ति नहीं मिलती है।

अ) व्यंजन समीकरण + पूर्वस्वर दीर्घीकरण

अग्नि > अग्गि > आगि > आग १६८-११ |कु|

कर्म > कम्म > काम १-३ |मन|, ७१-२२ |कु|, १०३-४ |सब|

आ) व्यंजन समीकरण पूर्वस्वर दीर्घीकरण + अंत्य स्वर लोप

निद्रा > नींद १५८-३ |सब|

वातां > बात १७१-१९ |कु|, २-४ |मन|

रात्री > रात १७५-५ |कु|, १४३-११ |सब|

६.१.३.१३) स्वर संधि :

दो स्वरों के बीच में संधि होने से शब्द की ध्वनि संरचना में परिवर्तन होता है। इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते हैं, किन्तु प्रवृत्ति निरूपण की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण दिशा है।

अ + इ = ऐ - भाई > भै ५५-२२ |हि.ना|

६.१.३.१४) स्वरादेश :

आ > ई, ए - खज़ाना > खज़ीने २-१ |सै|

इ > अ - छिपाकर > छपाकर ७८-११ |हि.ना|

ई > अ - पीछे > पछे ७९-६ |कु|

ई > आ - मिट्‌टी > माटी ९६-२६ |हि.ना|

उ > अ - उँगली > अँगली १८८-२३ |सब|

उ > आ - चतुर > चातर १०-१७ |मन|

उ > इ - मुलाकात > मिलाकात ६-१० |हि.ना|

ऊ > ओ - अंगूठी > अँगोठी १२८-१० |सै|

ए > अ - बेहत्तर > बहतर १०३-१० |सब|

ए > इ - बेचारा > बिचारा ३१-२२ |सब|

ओ > अ - कोशिश > कशिश १०२-२३ |कु|

ओ > उ - सोना > सुना ४२-४ |कु|

६.१.३.१५) विपर्यय :

उच्चारण की सुविधा के लिए ध्वनियों का स्थान विपर्यय होता है। परस्य ध्वनि का उच्चारण पूर्वस्य ध्वनि के स्थान पर और पूर्वस्य ध्वनि का उच्चारण परस्य ध्वनि के स्थान पर किया जाता है। यह विपर्यय बोलचाल की भाषा में अधिक घटित होता है। वैसे साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी विपर्ययित शब्द प्रयोग हुआ है-

अ) स्वर विपर्यय : ओहदा > होदा ९२-२१ |हि.ना|

जानवर > जनावर ८३-२ |सै|, १४४-६ |सब|

आ) व्यंजन विपर्यय : उंगल > उलंग १-६ |सै|

नन्हा > नहना ४५-५ |सब|

परेशान > पशेमान ५०-२१ |सै|

६.१.३.१६) <u>क्षतिपूर्ति</u> :

ध्वनि लोप की स्थितियों में क्षतिपूर्ति की प्रवृत्ति मिलती है। यह भाषा विज्ञान का नियम भी है। क्षतिपूर्ति के रूप में पूर्व ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण प्राय पाया जाता है।

मुख > मुह > मूँ १७०-१८ ।कु।

हस्ती > हाती २३-१३ ।मन।

६.१.३.१७) <u>ह्रस्वीकरण</u> :

ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति शब्द के आदि और मध्य स्वरों में ही अधिक दिखाई देती है। अंत्य में सिर्फ एक ही उदाहरण प्राप्त है।

अ) <u>आदि</u> :

आ > अ - आसमान > असमान ३७-८ ।कु।
आनन्द > अनन्द ७१-१९ ।सब।, ३६-३ ।सै।
आधार > अधार १०-१ ।कु।

आ) <u>मध्य</u> :

इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत ह्रस्वीकरण के साथ व्यंजनागम भी हुआ है। यथा - चींटी > चिमटी। कहीं-कहीं ह्रस्वीकरण के साथ अंत्य व्यंजन महाप्राणीकरण भी हुआ है। यथा

आ > अ - बाज़ार > बजार १५७-२१ ।हि.ना।
निगाह > निगह ३६-२३ ।हि.ना।
लाख > लख २-१० ।सै।
बादल > बदल ५-१४ ।कु।
माँग > मँग १३-२१ ।हि.ना।

ई > इ - तीसरा > तिसरा ८६-१ ।कु।
मीठा > मिठा १२-११ ।मन।
चींटी > चिमटी २८-२० ।सब।

भीतर > भितर ९३-१८ ।कु।

प्रीत > पिरत ४९-१४ ।मन।

ऊ > उ - बूढा > बुढा २१६-२० ।सै।

सूरज > सुरज २५-४ ।सै।

सूख > सुक १४९-४ ।कु।

मूलाधार > मुलाधार १५-१३ ।मन।

इ) <u>अंत्य</u> : ई > इ - नहीं > नहि ३२-२५ ।हि.ना।

६.१.३.१८) <u>दीर्घीकरण</u> :

स्वर दीर्घीकरण सिर्फ शब्द के मध्य और अंत्य में ही हुआ है। कहीं एक आध उदाहरण में दीर्घीकरण अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। यथा -

दुख > दूक। दीर्घीकरण की प्रवृत्ति का बाहुल्य सिर्फ 'ऊ' 'ई' में ही है।

अ) <u>मध्य</u> :

इ > ई - अधिक > अदीक ५२-१८ ।सै।

सिर > सीर १५०-१० ।सब।

हासिल > हासील १७७-६ ।कु।

मंदिर > मंदीर १४१-१८ ।सै।

उ > ऊ - चुन > चून १४८-१६ ।सै।

सुन > सून १७३-८ ।कु।

दुख > दूक १२४-१६ ।सै।

आ) <u>अंत्य</u> : इ > ई - भूमि > भूमीं ८४-१२ ।सब।

हानि > हानी ९७-२ ।हि.ना।

६.१.३.१९) अन्य प्रवृत्तियाँ :

ख > स -	दिखा > दिसा १६-१६ ।मन।
ग + ह > झ -	निगाह > निझा २८-१६ ।सै।
ड > र -	खड्‌ग > खर्ग २३-१ ।सै।
म > व -	नाम > नाँव ५-१२ ।सै।, २२-४ ।सब।
य > ज -	यमुना > जमुना १-१० ।मन।
व > ब,श > स -	उर्वशी > उर्बसी २०२-२० ।सब।
श > स -	केश > केस ९४-१८ ।कु।
	निराश > निरास ७६-२४ ।कु।
	शरीर > सरीर १०३-११ ।सै।
भ > ब -	रंभा > रंबा २०२-२० ।सब।
ल > र -	छल > छर १९०-१८ ।सै।
ष > क -	भाषा > भाका १-४ ।मन।
य > व -	नया > नवा १६१-१६ ।सै।
र > ड -	कोठरी > कोठडी २८-२२ ।हि.ना।
ह > ग -	सिंहासन > सिंगासन १८-२ ।मन।
क्ष > क्ख,ण > न -	सुलक्षण > सुलक्खन १७३-२ ।सै।
क्ष > क -	राक्षस > राकस ९४-१३ ।कु।
क्ष > ख -	पंक्षी > पंखी ८३-२० ।से।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि भाषा की सार्थक ध्वनियों का समूह ही उस भाषा की ध्वनि व्यवस्था है। साहित्यिक दक्खिनी की स्वनिम व्यवस्था में चौदह स्वर, इक्कीस स्पर्श व्यंजन, छः अनुनासिक स्पर्श व्यंजन, नौ संघर्षी व्यंजन, पार्श्विक 'ल', लुंठित 'र', उत्क्षिप्त ड़, ढ़. अर्द्धस्वर य, हमज़ा मिलते हैं। इनके अलावा सानुनासिक स्वरों की विशेषता भी इसमें उल्लेखनीय है। यह ध्वनि व्यवस्था भारतीय और विदेशी

भाषाओं के परस्पर आदान-प्रदान से बनी हुई है, जिसमें स्थानीय प्रभाव भी बहुमात्रा में पाया जाता है।

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में आदि व्यंजन संयोग की चार स्थितियाँ मिलती हैं और मध्य व्यंजन संयोग की आठ स्थितियाँ पायी जाती हैं। इनमें दो ही विभिन्न व्यंजनों का संयोग है। त्रि-व्यंजनात्मक संयोग में संस्कृत और फ़ारसी की स्थिति ही मिलती है। अन्त्य व्यंजन संयोग में शब्द के अंत में अ का अस्तित्व ही पाया गया है। इसकी भी नौ स्थितियाँ पाई गयी हैं। इन सभी स्थितियों में एक ही स्वर की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय है।

द्वित्व व्यंजन की स्थिति शब्द के मध्य में ही पायी जाती है। आदि स्थिति में इसका एक ही उदाहरण प्राप्त है, वह भी बलाघात के कारण ही।

ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न स्थितियाँ भी मिलती हैं। यद्यपि इस विश्लेषण में ऐतिहासिक दृष्टि नहीं रखी गयी है, फिर भी प्रवृत्तियाँ रोचक ही मिलती हैं। संस्कृत, देशी भाषाएँ, अरबी, फ़ारसी आदि में प्राप्त समकालीन शब्द संरचना को दृष्टि में रखकर देखने पर प्राप्त होनेवाली दक्खिनीगत इन विशेषताओं के अनुशीलन से ध्वनिगत परिवर्तनों की स्थिति अंत्य रोचक है। कुछ ऐसी दिशाएँ भी प्राप्त होती हैं, जो दक्खिनी की अपनी विशेषताएँ कही जा सकती हैं। इनमें प्रमुखत नासिक्यकरण व्यंजन द्वित्व, घोषीकरण, अघोषीकरण, अल्पप्राणीकरण आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

६.२) व्याकरणिक विशेषताएँ

६.२.१) संज्ञा विवेचन

संज्ञा विवेचन के अन्तर्गत भाषा में प्रयुक्त संज्ञा रूपों के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डाला जाता है। संज्ञा के मूल रूप के साथ-साथ वचन, लिंग और कारक के प्रभाव से संज्ञा रूप में होनेवाले परिवर्तनों का विवेचन भी इसमें समीकृत होता है। आलोच्य कृतियों के आधार पर साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी के संज्ञा रूपों का सम्यक विवेचन ही इस शीर्षक के अन्तर्गत अभिप्रेत है।

६.२.१.१) संज्ञा मूल रूप

हिन्दी संज्ञाओं के मूल तथा विकृत रूपों में होनेवाले समस्त संभावित परिवर्तन रूपों को पूर्व अध्याय में तालिका में स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार की तालिका दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त संज्ञा के मूल रूप तथा तिर्यक/विकृत रूपों के आधार पर इस प्रकार बनती है-

मूलरूप

	एक०	बहु०
अकारान्त	- अ	- आँ
	- अ	- ऐं
आकारान्त	- आ	- आँ
	अंतिम व्यंजन के रूप में र्, ल्, व्, क्ष् हैं तो बहु० में आ का लोप होता है	- यां
	- आ	- ए
इकारान्त	- इ	- याँ
	- ई (मात्र स्वर)	- याँ
	- व्यंजन+ - ई (- ई - इ)	- इयां
	न्, र्, ल्, व् व्यंजन+ -ई होती ई लोप	- यां

उकारान्त	- उ	- वां
	- ऊ (ऊ का लोप)	- आं

६.२.१.२) <u>विकृत रूप</u>

एक०	बहु०
- अ	- आं
	- आँ
	- यां
	- ओं
- आ	- आं
	- आँ
	- एं
- आ	- आ का लोप और - यां का आगमन (र, ल व्यंजनान्त होती)
इ - (आदि स्वर आ का ह्रस्व में परिवर्तन और प्रत्यय के रूप में)	- यां
- ई	- यों
- ई (-ई का लोप और प्रत्यय के रूप में)	- यां

६.२.१.१) <u>वचन</u>

६.२.१.१.१) <u>मूलरूप</u> :

अ) <u>अकारान्त</u> :

अकारान्त शब्दों के उच्चारण में स्वर का लोप हिन्दी की विशेषता है। यह दक्खिनी हिन्दी में भी पाई जाती है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में इस प्रकार की संज्ञाओं के एक० रूप तीन प्रकार के मिलते हैं - अकारांत असंयुक्त, अकारांत संयुक्त, अकारांत द्वित्व। इनके बहु-वचनगत रूप में साधक प्रत्यय की एकरूपता साहित्यिक दक्खिनी की विशेषता मानी जा सकती है। यह हिन्दी की प्रवृत्ति से भिन्न है।

हिन्दी में इस वर्ग के शब्दों के बहु० रूपों में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि 'शून्य' प्रत्यय लगता है। इसको निम्न प्रकार रूपान्तरित किया जा सकता है-

एक०	बहु०
{- अ}	{- अ} + {O}

लेकिन दक्खिनी हिन्दी की स्थिति इस प्रकार निरूपित होती है -

i)	{- अ}	{- अ} + {- आं} {- आँ}
	फकीर	फकीरां ३२-१ |मन|
	सुख	सुखाँ २२३-२६ |हि.ना|
	लोग	लोगाँ १७-१६ |सै|
	कीवाड़	कीवाड़ाँ १९-१५ |सै|
	दौलत	दौलताँ ९-२ |सै|
	दोस्त	दोस्ताँ १७-१९ |सब|
	काम	कामाँ ४५-६ |कु|
	फूल	फूलाँ १५८-६ |सै|
	गुलाम	गुलामाँ ७२-१८ |सब|
ii)	{- अ}	- अ (का लोप) + {- ए}
	जंगल	जंगले १०९-७ |सै|

इस स्थिति के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं फिर भी प्रकृति की दृष्टि से यह हिन्दी स्त्रीलिंग बहु० प्रत्यय है। इसका प्रयोग भी साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में यत्र तत्र है।

आ) <u>आकारांत</u> :

आकारांत शब्दों में बहु० की स्थिति हिन्दी से कुछ भिन्न है, फिर भी हिन्दी के रूपों ये युक्त है। हिन्दी में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग शब्दों में अलग-अलग प्रत्यय जुड़ते हैं। लेकिन दक्खिनी हिन्दी के आकारान्त बहु० रूप इस प्रकार निरूपित किया जा सकते हैं -

	एक०	बहु०
i)	{- आ}	{- आ} + {- ँ}
	नक्शा	नक्शाँ २०-५ |सै|
	लता	लताँ २१०-१६ |हि.ना|
	बाधा	बाधाँ १७९-२० |हि.ना|
	छाया	छायाँ ११३-५ |कु|
ii)	{-आ}	- आ + {- याँ} (का लोप)

(पूर्व व्यंजन के साथ संयुक्त रूप में यह अवतरण - उन्हीं शब्दों के साथ संभव है जिन में अन्त्य व्यंजन के रूप में र्, ल्, व् आते हों)

	नखरा	नखर्यां ६८-११ |सब|
	भला	भल्याँ ३९-१८ |सब|
	तलवा	तलव्याँ ११-२३ |सब|
iii)	{- आ}	- आ + {- ए} (का लोप)
	कपड़ा	कपड़े ८०-११ |सै|
	कुत्ता	कुत्ते १०३-२ |सब|
	चश्मा	चश्मे १२९-१८ |कु|

सितारा	सितारे ६२-१० |कु|
बुढ़ा	बुढ़े ७५-३ |कु|
प्याला	प्याले ४५-११ |कु|

यह हिन्दी की व्यवस्था से तुल्य व्यवस्था है।

इ) <u>इकारांत</u> :

इकारांत शब्दों के रूपान्तरण की चार स्थितियाँ मिलती हैं। इन स्थितियों में हिन्दी से समता भी और असमता भी। यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि हिन्दी का लिंगगत पार्थक्य दक्खिनी हिन्दी में देखा नहीं जा सकता। रूपान्तरण इस प्रकार निरूपित होते हैं -

	एक०	बहु०
i)	{- इ}	{- इ} + {- याँ}
	पति	पतियाँ ८६-२७ |हि.ना|
	भक्ति	भक्तियाँ १११-१० |हि.ना|
	नीति	नीतियाँ २२१-१३ |हि.ना|
	परि	परियाँ १४३-१ |सब|
ii)	{- ई} (व्यंजन रहित)	{- ई} + {- याँ}| (का लोप)
	भाई	भायाँ १९९-२४ |सै|,५०-२२ |सै|
iii)	{- ई} (व्यंजन सहित)	{- इ} + {- याँ}
	सखी	सखियाँ १४३-२३ |सब|
	सकी	सकियाँ ६०-४ |कु|
	अंतड़ी	अंतड़ियाँ ७७-२० |सै|

रात्री	रात्रियाँ २२९-१० |हि.ना|

यह व्यवस्था हिन्दी की व्यवस्था के तुल्य है।

iv)	{- ई} (न,र,ल,व सहित कुछ शब्दों में)	{- ई} + {- याँ} (का लोप)
	परी	पर्याँ १२-९ |सै|
	कली	कल्याँ १३८-१८ |सै|
	बिचारी	बिचार्यां १००-१८ |कु|
	गवी	गव्याँ १३-४ |सै|
	दीवानी	दीवान्याँ १४७-१८ |कु|

उ) <u>उकारान्त</u> :

उकारान्त शब्दों में बहु० की स्थिति इस प्रकार मिलती है जो खड़ी बोली रूपों से भिन्न है। इस स्थिति को निम्न प्रकार से निरूपित किया जा सकता है -

	एक०	बहु०
i)	{- उ}	{- उ} + {- वां} {- वाँ}
	जंतु	जंतुवां ९-१५ |हि.ना|
	अंझु	अंझुवाँ १४६-२१ |सब|
ii)	{- ऊ}	{- ऊ} + {- आँ} (का लोप)
	गुरु	गुराँ १-७ |सब|

६.२.१.१.२) तिर्यक रूप :

अ) एक वचन : यह व्यवस्था हिन्दी की व्यवस्था से तुल्य है।

	एक०	बहु०
i)	{- अ}	{- अ} + {- 0} + {कारक प्रत्यय}
	दिल	दिल मने ५४-६ |कु|
	पेट	पेट में १०९-७ |सब|
	शहर	शहर ते ९५-२ |सै|
	पुत्तर	पुत्तर को १९०-९ |हि.ना|
	जग	जग में ३-१ |मन|
ii)	{- आ}	{- आ} + {-ए} + कारक प्रत्यय (का लोप)
	बेटा	बेटे के ४८-१९ |सै|
	हवाला	हवाले में १५७-१६ |हि.ना|
	झगड़ा	झगड़े के ९६-११ |कु|
		झगड़े में ४१-२ |मन|
	गुस्सा	गुस्से का ३-७ |मन|
	चश्मा	चश्मे कूँ ४३-४ |सब|
iii)	{- आ}	{- आ} + कारक
	आशना	आशना कूँ १११-३ |सब|
iv)	{- इ}	{- इ} + {- 0} + कारक प्रत्यय
	गति	गति से १८२-५ |हि.ना|
	शक्ति	शक्ति की १६-३ |मन|

v)	{- ई}	{- ई} + {- ०} + कारक प्रत्यय
	पानी	पानी ते ३१-२४ ।कु।
	बिल्ली	बिल्ली कूँ १०९-१४ ।सब।
	गरीबी	ग़रीबी का ८७-२० ।सै।
	माटी	माटी के १२-७ ।मन।
	माई	माई का १४५-१० ।हि.ना।
vi)	{- उ}	{- उ} + {- ०} + कारक प्रत्यय
	विष्णु	विष्णु की १६-२ ।मन।
vii)	{- ऊ}	{- ऊ} + {- ०} + कारक प्रत्यय
	गुरु	गुरु ने १५-१० ।मन।
	गुरु	गुरु के १९-६ ।मन।

आ) बहुवचन

i)	{- अ}	{- आँ} + कारक प्रत्यय
	आशिक	आशिकाँ के ७२-१३ ।सब।
	लोक(लोग)	लोकाँ की ३९-९ ।सब।
	बाट	बाटाँ में ११-१६ ।सब।
	भोत	भोताँ कूँ ५२-११ ।सब।
	पान	पानाँ में ७३-१७ ।कु।
	आसमान	आसमानाँ में ७१-१४ ।कु।
	यार	याराँ सूँ १४६-८ ।सब।
	गंभीर	गंभीराँ कने ७३-२१ ।कु।
	देव	देवाँ के ४५-८ ।सै।
	पादशाह	पादशाहाँ के ३४-२२ ।सब।

ii)	{- अ}	{- आं} + कारक प्रत्यय
	पंचभूत	पंचभूतां का ४१-१० ।मन।
iii)	{- अ}	{- ओं} + कारक प्रत्यय
	आँख	आँखों से १५४-२० ।हि.ना।
	सिफात	सिफातों से ४-५ ।मन।
	पात्र	पात्रों कु ५-६ ।हि.ना।
	बात	बातों से १०७-२४ ।हि.ना।
iv)	{- अ}	{- औं} + कारक प्रत्यय
	हाथ	हाथौं कु ५०-१३ ।हि.ना।
	मनुष्य	मनुष्यौं कु १०-१५ ।हि.ना।
	तरह	तरहौं की ५-५ ।हि.ना।
v)	{- आ}	{- ँ} + कारक प्रत्यय
	राजा	राज़ाँ की ६३-५ ।कु।
	नैना	नैनाँ कूँ १३३-११ ।सै।
vi)	{- आ}	{- आ} + {- याँ} + कारक चिन्ह या प्रत्यय (का लोप)
	परदा	परद्याँ कूँ १०५-१९ ।कु।
	बाँदरा	बाँदर्याँ कूँ १०४-१३ ।सै।
	भला	भल्याँ कूँ ३९-१ ।सब।
vii)	{- ई}	{- इ} + {- याँ} + कारक प्रत्यय
	मोती	मोतियाँ सूँ ११-१२ ।सब।
	परी	परियाँ में १४३-५ ।सब।
	सहेली	सहेलियाँ सूँ ५५-१३ ।सब।

viii)	{- ई}	{- ई} + {- याँ} + कारक प्रत्यय (का लोप)
	झूटी	झूट्याँ की ३९-१३ ।सब।
	गुडी	गुड्याँ का १४२-४ ।कु।
	खुशी	खुश्याँ सूँ ११०-२० ।कु।
ix)	{- ई}	{- इ} + {-यौं} + कारक प्रत्यय
	ऊखली	ऊखलियौं की २३०-१६ ।हि.ना।

६.२.१.१.३) अरबी - फ़ारसी वचन व्यवस्था

दक्खिनी हिन्दी में अरबी - फ़ारसी शब्दों की वचन व्यवस्था हिन्दी की वचन व्यवस्था से तुल्य है। लेकिन साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी शब्दों को बहुवचन रूपों को परखने से यह कहा जा सकता है कि ये रूप अरबी-फ़ारसी व्याकरण के नियमानुसार बने हैं।

अ) कुछ शब्दों में प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाया जाता है -

प्रत्यय	एकवचन	बहुवचन
- आत	जुल्म	जुल्मात ७३-९ ।कु।
- आन	जन	ज़ना १८६-९ ।सब।
- आना	मुतरिब	मुतरिबाना ६५-२ ।सै।
- इन	बात	बातिन १५०-१५ ।सै।, ३५-३ ।सब।
- ईन	आदमी	अदमीन ९९-१० ।कु।

आ) कुछ शब्दों मध्य स्वर ऊ लगाकर बहुवचन तथा मध्य स्वर परिवर्तन करके बहुवचन रूप बनाया गया है -

एक०	बहु०
मतलब	मतलूब ७६-९ ।कु।

मालिक	मलूक १००-११ ।सब।
हलाक	हुलूक १०२-१ ।सै।
नुक्ता	नुकात ८२-१२ ।सब।
नजर	नजारे २५-८ ।मन।

इ) कुछ शब्दों के आदि में 'अ' का आगम होता है और मध्य में स्वर परिवर्तन करके तथा कुछ शब्दों के मध्य में वर्णागम होता है और कहीं-कहीं मध्य वर्ण को परिवर्तन करके बहुवचन बनाया गया है -

एक०	बहु०
हाल	अहवाल १५६-१७ ।कु।, ५८-१३ ।सब। २६-१२ ।फूल।
रूह	अरवाह १९८-६ ।सै।
सर	असरार १७-१९ ।सब।
गैर	अग़यार १९५-२ ।सब।
आशिक़	उश्शाक १४१-१० ।सब।
बन्दे	बिलाद ३८-९ ।मन।
चतुर	चतारा ७६-१५ ।कु।
नूर	अनवार १९-१० ।फूल।
वक्त	अवक़ात ३०-४६ ।फूल।

६.२.१.२) लिंग व्यवस्था

संज्ञा के क्षेत्र में लिंग व्यवस्था के नियमों को रूपाइत करना हिन्दी की तरह ही साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी दुष्कर काम है। इसकी लिंग व्यवस्था हिन्दी की व्यवस्था से तुल्य है। इसके साथ साथ दक्खिनी की विशेषता एक अवश्य दिखाई देती है जो विश्लेषण को और कठिन बना देती है। वह है लिंगगत अव्यवस्थित प्रयोग। यह अहिन्दी लेखकों की साहित्यिक कृतियों में और क्लिष्ट रूप धारण कर लेता है। फलतः अन्वेषक को कुछ स्थितियों की ओर संकेत मात्र ही करना पड़ा है।

इस दृष्टि से लिंग व्यवस्था के निम्न सूत्र उभरते हैं -

अ) साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में लिंग व्यवस्था प्राकृतिक न होकर व्याकरणिक है।

आ) प्राकृतिक व्यवस्था से जहाँ सहयोग मिलता है वहाँ संज्ञा का लिंग निर्देशन प्राकृतिक व्यवस्थानुरूप ही है।

जैसे -	पु०	स्त्री०
	बेटा	बेटी ५६-६ |सै|, ४१-६६ |फूल|
	साला	साली ३३-१० |मन|
	दास	दासी १५९-२ |हि.ना|
	नर	नारी २-१५ |सब|
	दिवाना	दिवानी ३८-५९ |फूल|

इ) देश और शहरों के जो नाम साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त हुए हैं वे सब पु० में ही हैं -

रूम ५८-७ |सै|	हबश ५८-८ |सै|
इराक़ ५८-९ |सै|	ईरान ५८-१२ |सै|
पुर्तगाल ५८-१३ |सै|	लंका ५८-१५ |सै|
मिस्त्र ९५-१ |फूल|	बंगाला ५८-१५ |सै|
चीन ५८-१२ |सै|	काशी १४-१३ |मन|
बनारस १४-१३ |मन|	तिरपति १४-१३ |मन|
दिल्ली ५८-८ |सै|	गुजरात ५८-८ |सै|
भद्राचल २९-२१ |हि.ना|	

ई) साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में ग्रहों के नाम पु० में ही प्रयुक्त हुए हैं। जैसे-

चंद १६९-४ |कु|	भान १६९-४ |कु|
चन्दर ११-१४ |सब|	भास्कर ३६-१० |मन|

चाँद १२९-३ |कु| बिरहसपत ४३-१४ |मन|

बुध ४३-१५ |मन|

उ) साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त नदियों के नाम स्त्री० हैं। जैसे-

गोदावरी १४-१४ |मन| गंग १४-१५ |मन|

जमुना १४-१५ |मन| भागीरती १४-१४ |मन|

अन्य स्थितियों में व्यवस्थागत सूत्र इस प्रकार देखे जा सकते हैं -

अ) साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में अकारान्त शब्द पु० और स्त्री० दोनों हैं। कुछ पु० शब्द इस प्रकार है -

कलंक ४०-५ |कु| सेवक १०८-११ हि.ना

तुरंग ३५-१ |सै| पतंग १४८-२ |कु|

इलाज १०२-१८ |सब|, ७९-९ |सै| घूंघट ७७-१३ |कु|

चरण ९६-३ |हि.ना| अमृत ४-९ |सै|

हाथ ८०-४ |सै| पदार्थ २२९-७ |हि.ना|

काम १-३ |मन| गोद १४८-१६ |सै|

प्रणाम ३४-२७ |हि.ना| तीर १४५-३ |सब|

इन्साफ़ १३-६ |सब| शैतान १२-१० |कु|

कमल ५३-८ |कु| अम्बर ५७-१२ |फूल|

जंजाल ६१-२० |सब| फल २-१२ |सै|

भंवर ५७-१० |फूल| फूल ९६-३२ |फूल|

धन ८७-४ |फूल| नयन ८७-२३ |फूल|

कुछ अकारान्त स्त्री० शब्द इस प्रकार है -

आग ५३-१३ |सब| रात ८७-१० |फूल|

जीब ४०-४९ |फूल|	हिकमत ४-३ |मन|
किताब १९५-१ |कु|	नींद १०३-४ |सै|
मंज़िल ८८-७ |कु|	कमर २८-१२ |सै|

आ) आकारान्त में भी पु० और स्त्री० शब्द है। कुछ आकारान्त पु० शब्द इस प्रकार हैं

उजाला ६४-१७ |सै|	तारा ६२-१ |फूल|
घोड़ा २३-१३ |मन|	भौंरा ४३-१७ |सब|
साला ६३-१ |सब|	खुदा ८७-४ |फूल|
झगड़ा ३०-७ |मन|	चश्मा ४३-२ |सब|

कुछ आकारान्त स्त्री० शब्द इस प्रकार हैं -

अबला ९४-२ |हि.ना|	आशा ३७-५ |हि.ना|
कृपा २५-१ |हि.ना|	दया ५०-१ |मन|
माता ४६-१५ |मन|	शमा ६२-११ |कु|, ५३-२५ |फूल|
माया ४-७ |मन|	सज़ा ९६-२ |फूल|

इ) इकारान्त में भी पु० और स्त्री० शब्द हैं। कुछ इकारान्त पु० शब्द इस प्रकार हैं -

जोगी २५-१६ |मन|	पानी १५९-७ |सब|, ५१-१० |सै|
पुजारी २४-१३ |मन|	मोती २१-२ |सब|
देवड़ी ४१-३० |फूल|	

कुछ इकारान्त स्त्री० शब्द इस प्रकार है -

कुर्सी ९७-८ |सब|	गोदड़ी ३३-१३ |मन|
चोरी १५५-१२ |सब|	घड़ी ३१-१४ |मन|, २६-१९ |फूल|
मछली ७८-१ |फूल|	नदी ६३-२६ |फूल|
आरसी ८१-३२ |फूल|	धरती २३-२२ |फूल|

दादी १७३-१७ |सै|	बुराई १५९-१९ |कु|
रसोई ४७-८ |मन|	प्यारी २१-४ |हि.ना|
डाली १५२-५ |सब|	साली ३३-१० |मन|
गति १४०-१३ |हि.ना|	छाती २३-८ |मन|

६.२.१.२.१) <u>लिंगगत अव्यवस्था</u>

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में लिंगगत अव्यवस्था के उदाहरण उल्लेखनीय मात्रा में प्राप्त होते हैं। सामान्य व्यवहार की स्त्री० संज्ञाएँ पु० में और पु० संज्ञाएँ स्त्री० में प्रयुक्त हैं। निम्न उदाहरणों में इस अव्यवस्था को स्पष्टत: देखा जा सकता है -

अ) पु० शब्दों का स्त्री० शब्दों में प्रयोग -

मेरी रूप कितना है? ९८-७ |हि.ना|

मेरी नाम ही अहलया... ९८-२ |हि.ना|

तेरी पिताजी १००-५ |हि.ना|

मेरी लड़का १५७-१६ |हि.ना|

मेरी भर्ता २१४-२८ |हि.ना|

आ) स्त्री० शब्दों का पु० शब्दों में प्रयोग -

दही का छाच हुआ ९१-२१ |सब|

बाँद्या दरवाजा खोलता ९०-२२ |सब|

समज थोड़ी लोगाँ में छल भोत है ३३-२२ |कु|

मेरा आँखों से देखता हूँ ९६-४ |हि.ना|

उनका इच्छा मंजूर १००-८ |हि.ना|

मेरा पत्नी १६१-३ |हि.ना|

मेरा रूह परवाने के १९-७ |सै|

हतेली तेरा लौह ६-९ |सै|

६.२.२)   संरचनात्मक प्रत्यय

- अ (कृ. भाववाचक संज्ञा, विशेषण पूर्वकालिक कृ. अव्यय)

जल ८३-१० |सै|	पकड़ ८०-१२ |सब|
देख ८८-१५ |हि.ना|	कर ६५-२८ |फूल|

- अत (कृ.त.)

लज़्ज़त ४३-१६ |सब|	जड़त १२८-४ |कु|

- अता, अती (कृ.भाववाचक संज्ञा)

ढूंढता ९७-२७ |फूल|	डरता ९३-३ |सै|
उठता ९४-१८ |सब|	झूलता २२-१४ |मन|
रहती ९७-१६ |हि.ना|	पकड़ती ६०-१२ |कु|

- अन (इस प्रत्यय के योग से साकार रूप वाले भाववाचक क्रिया मूलक विशेष्य पद बनते हैं)

नाशन ९९-१ |हि.ना|	लँगातन १६८-३ |सै|
बिचारन ८०-१६ |सै|	उपटन २३-४ |मन|
लटकन ८२-१ |फूल|	

- अन्त (कृ.भाववाचक)

चलन्त १४-१२ |सब|, ५४-९ |कु|

- आ (कृ. भूतकालिक, कृ.भाववाचक)

उदासा १५-१ |मन|	चन्दना ५८-२० |कु|
ऊँचा ९५-६ |सै|	नियारा २१-३ |मन|
भाया ८६-२० |फूल|	पसारा २१-१ |मन|

- आ (त. विशेषण)

सेवका ८६-१३ |हि.ना|	चंचला १५३-९ |कु|

दृष्टा १११०-२२ ।हि.ना। झूटा ६३-५ ।सब।

- आइया (त.कृ.)

बहलाइया ९३-२० ।सै। धालिया ८५-९ ।फूल।

- आई (कृ.भाववाचक)

सफ़ाई ७९-१९ ।सब। लड़ाई १४३-३ ।हि.ना।

मिठाई २०३-२५ ।सब। लियाई ९५-१७ ।फूल।

छुपाई ९८-२ ।फूल। रोशनाई ७९-१८ ।सब।

- आट (कृ.भाववाचक) इसका विकास क्रम आहट < आट है।

बिसराट ११६-१ ।सब। तमतमाट २१५-१७ ।सै।

कन्दराट ७९-३ ।सै।

- आटन (भाववाचक) भिक्षाटन १५७-२७ ।हि.ना।

- आत (कृ.भाववाचक) ज़ुल्मात १६९-२० ।सै।

- आता, - आती (कृ.विशेषण)

तरसाता ९४-८ ।सब। जगमगाता २०९-१८ ।सै।

तलमलाता ९६-४ ।सब। भिनाती ७५-१६ ।सै।

लटपटाती १४०-५ ।कु। फड़फड़ाती ८१-१० ।फूल।

- आत (कृ.भाववाचक) गुज़रान ३२-२१ ।सै।

- आना (त.भाववाचक, स्थानवाचक)

ठिकाना १०-१ ।मन। पतियाना ११-५ ।मन।

ज़नाना १८६-९ ।सब। पलठाना ८५-१९ ।हि.ना।

- आनी (त.भाववाचक)

नूरानी ८३-१७ ।सै। महमानी ४०-९ ।कु।

महरबानी १०६-९ ।फूल। ज़िन्दगानी ५१-२७ ।फूल।

- आरा, - आरी (त.)

धुलारा १२१-१० ।सै। सितारा १०७-१८ ।फूल।

एख़्तियारी ११२-१८ ।फूल। गुनहगारी ९५-१० ।फूल।

- आल, - आली (त.)

उपराल ९२-१६ ।सै।, १०२-३२ ।फूल।

भितराल ९३-३ ।सै। उबाल ९६-१९ ।फूल।

हरियाली २११-१० ।कु। खुशहाली २१४-१५ ।कु।

उताली ११४-१६ ।फूल।

- आलू (त.)

डरालू ९५-१९ ।कु। तैरालू ११९-१६ ।सब।

- आवली (कृ.त.भाववाचक)

रोमावली ७७-१२ ।सै।

- इक (त.) लौकिक २०-२ ।हि.ना। नैसर्गिक ३०-२२ ।हि.ना।

ऐहिक २२८-१३ ।हि.ना। आशिक़ १११-१७ ।फूल।

- इत (त.भाववाचक) पीड़ित १५३-२३ ।हि.ना।

- इया (कृ.भाववाचक)

दुखिया १०१-१७ ।कु। सुकिया १०१-१९ ।कु।

चलिया ९४-२६ ।फूल। सटिया ११५-२ ।फूल।

- ई (त.संज्ञा, विशेषण)

पापी २४३-२४ ।हि.ना। पतझड़ी ११९-२० ।सब।

मस्ती ५२-१२ ।कु। खुशी ११५-९ ।फूल।

नामी २४-२ ।सै।

- ईला, - ईली (त.विशेषण)

रँगीली ७५-२ ।सब।, २०६-२२ ।सै।, छबीली ९८-१४ ।फूल।

- क, - अक (त.कृ)

ठंडक १३४-१० ।सै। फरख १४२-२ ।हि.ना।

- जा, - जी (त.)

भानजा ४१-१२ ।हि.ना। भतीजी १३५-३ ।सै।

मामूजी १३८-६ ।हि.ना।

- ड़ा, - ड़ी (त.)

तुकड़ा ३२-१६ ।मन। जिउड़ा १८४-२२ ।सै।

कोठड़ी २८-२२ ।हि.ना। देवड़ी ४१-३० ।फूल।

- ता (त.)

दुखिता १५३-१३ ।हि.ना। महकता १५१-२० ।सै।

पिगलता ३१-२३ ।कु। समर्थता १०-२३ ।हि.ना।

झलकता ११६-२९ ।फूल। लुड़कता ११०-१० ।सै।

- ता, - ती (कृ)

झगड़ता ५६-२० ।सब। लाता ७५-२२ ।कु।

जपता ७०-१ ।कु। फूलता २२-१४ ।मन।

बरसता १७४-२० ।सै। बिचकता ५१-४ ।फूल।

पकड़ती ६०-१२ ।कु।   झड़ती ४२-१४ ।मन।
गिनती ११८-८ ।हि.ना।   झलाती २३-१७ ।फूल।

- त्व (त.)   बालत्व २३-७ ।हि.ना।

- न (त.)   खेलन १४१-४ ।सै।   खोलन ४१-८ ।सै।
सातन १५३-१४ सै।   पूछन ४६-१४ ।फूल।

- ना, - नी (कृ.)
लाना ६२-२१ ।सै।   सपड़ना २२-२ ।मन।
मानना १२६-४ ।कु।   बताना ६४-१० ।हि.ना।
जाना ४६-२७ ।फूल।   मोहनी ६१-९ ।फूल।
चचानी १९-४ ।सै।

- पन (त.भाववाचक)
बचपन १३-१८ ।हि.ना।   बड़ेपन २२-१३ ।मन।
नहनपन ७२-२२ ।सब।   बुड़प्पन ८१-६ ।कु।
बड़ापन १२०-१५ ।फूल।

- पाई (त.विशेषण)   चारपाई ३८-५ ।कु।

- री (त.)   कटोरी ६१-१९ ।हि.ना।   ऐतबारी ४६-१ ।फूल।

- ला, - ली (एली) (त.)
हटीला १९९-१३ ।सै।, ७२-१६ ।सब।
छबीला ७२-१६ ।सब।   हतेली १४०-३ ।सै।
उतावला ७३-१३ ।कु।   दिखला ४७-४१ ।फूल।

- वट (त.) राजवट ७७-११ |कु|

- वन्त, - वन्ती (त.)

गुनवन्त १२४-१ |सै| भगवन्ती १५३-१३ |सै|

सतवन्ती ५०-१६ |फूल|

- वान (त.)

सौन्दर्यवान १००-११ |हि.ना| अँदेशवान १४०-१० |सब|

अदृष्टवान ६१-२४ |हि.ना| भोगवान १००-१२ |हि.ना|

- सा, - सी (त.)

परेशान-सा ७०-१८ |सब| भुलासी ९-३ |सब|

हिलासी ९-२ |सब| अतलसी १०४-१० |फूल|

- हार (त.)

देवनहार ५-१४ |सै| मिलनहार ५-१ |कु|

रहनहार ८-२ |मन| पड़नहार १९७-७ |सब|

बैठनहार २००-१६ |सब| गमनहार २१५-२४ |सै|

- हारा, - हारी (त.)

रहनहारा ८-२ |मन| ढँडनहारा ९०-११ |सब|

नामहारा ५५-२२ |हि.ना| सम्भालनहारा १०-१५ |कु|, ११०-१२ |सब|

जानहारा २१-२ |सब| जलनहारी १३८-२४ |सब|

देनहारी ७९-१९ |सब| जाननेहारी ८०-८ |हि.ना|

६.२.२.१) अरबी - फ़ारसी प्रत्यय

अरबी फ़ारसी तत्सम शब्दों के साथ अरबी फ़ारसी प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है। ये प्रत्यय केवल सामान्य भाषा तक सीमित न रहकर साहित्यिक दक्खिनी में भी

अपना स्थान बना लिए हैं। बिना किसी परिवर्तन के इनका प्रयोग हुआ है। इनमें से बहुत से प्रत्यय हिन्दी भाषा में प्रयुक्त हैं।

- अ (त.) कमर १३१-६ ।सब। दिल ३५-२० ।फूल।
अंजाम २-११ ।मन। बदन १५०-७ ।सै।
बयान ९८-५ ।हि.ना। ख़बर २०-९ ।कु।

- अत, - अती (त.भाववाचक)
शुज़ाअत १३७-११ ।सब। जहमत १६५-२७ ।सब।
हक़ीक़त ३४-४३ ।फूल। मारूफ़त ३४-४९ ।फूल।
फ़िरासत १२१-२ ।सै। सलामती १७१-८ ।सब।

- आ (कृ.भाववाचक)
शर्मिन्दा १५९-२० ।सै। लंगोटा ३२-१५ ।मन।
बिसरना १११-१५ ।सब। पीला ४०-४७ ।फूल।

- आई (त.भाववाचक)
खूबाई १५०-३ ।कु। रोशनाई ४१-४ ।सब।
आशनाई १५६-११ ।सै।, ७५-११ ।सब।
खुदाई १७-३ ।फूल। बुराई १६०-१ ।कु।

- आना, - आनी (त. विशेषण)
मुतरिबाना ६५-२ ।सै। फ़र्माना ६२-१७ ।हि.ना।
तरजुमानी ३१-२६ ।फूल। ज़िन्दगानी १३७-२२ ।कु।

- आवर दिलावर १४-१६ ।सै।

- आसा दिलासा १०१-५ ।सब।

- इयत (त. भाववाचक)

महरमियत ९३-८ |सब| खुदाइयत ९२-९ |सब|

मामलियत २७-१२ |हि.ना|

- ई (त. भाववाचक)

अमीरी २५-३ |मन| खुशी ११-११ |हि.ना|

जुदाई २८-१४ |मन| दरम्यानी ६२-२२ |कु|

- कार (त.)

आशकार ३३-५ |सब| ज़ुल्फकार २१-२३ |कु|

नाबकार ११४-७ |सै| दरकार ९-१३ |मन|

- खाना (त. स्थानवाची)

तोपखाना २६-२७ |हि.ना| बुतखाना १०८-३ |कु|

बंदीखाना ११३-३० |सब| हौज़खाना १२१-८ |सै|

- खोर (त. भक्षक)

हरामखोर ९२-२१ |सब| चाड़ीखोर ४३-४८ |फूल|

- गार (कृ.)

यादगार २०-२ |सै|, ३४-२४ |कु|, ८-१९ |सब|, ३०-३९ |फूल|

ख़िदमतगार ३-१७ |सब| साज़गार ८३-१० |कु|

शयनागार ६२-२९ |हि.ना| तलबगार ५२-१२ |फूल|

- गारी (कृ.स्त्री लिं)

मददगारी १४४-१ |सब| ख़िदमतगारी ३६-२ |सब|

यादगारी ५०-१६ |मन| साज़गारी ३८-४६ |फूल|

ख़ास्तगारी २१४-२४ |सै|, ३५-२३ |कु|

- गाह (त.)

सरहगाह १५८-१३ |सै।   दस्तगाह ३०-५१ |फूल।

- गी (त.भाववाचक)

हैरानगी ५४-९ |सै।, १३७-१७ |सब।

दीवानगी ५४-१० |सै।, १३७-१७ |सब।

परेशानगी १३७-१६ |सब।

- गीर (त.विशेषणवाचक)

दस्तगीर ४१-१६ |सै।   दिलगीर ५६-२१ |सै।, ७९-२५ |फूल।

- त, - अत (त.)

जलालत ७-४ |सै।   आख़िरत १२०-१८ |सब।

हुकूमत २७-११ |सै।   शोहरत २९-१० |मन।

फज़ीलत २८-३ |मन।   अलामत ५८-२० |फूल।

- दान (त. पात्रवाचक)

गुलदान २१५-२१ |सै।   पीकदान ६०-१२ |कु।

मरदान २३-५ |कु।   सरगर्दान ८९-१६ |सब।

हमदान ४१-४४ |फूल।

- दार, - दारी (त.भाववाचक)

छड़ीदार १-१२ |सै।   सिलहदार १-१४ |सै।

खबरदार २७-२ |मन।   मालदार २५-३ |मन।

दोस्तदार २०-६ |कु।   दुनियादार ७३-१९ |कु।

तरहदार ३३-४६ |फूल।   निगहदार ४७-१४ |मन।

जवाबदारी ३९-२ |हि.ना।   दिलदारी ८९-६ |सब।

दुनियादारी ३९-९ |सब।   नामदारी ५०-१५ |मन।

- नाक (त.विशेषण)

दरदनाक १८५-८ ।सै।   ग़ज़बनाक १४४-१९ ।सब।

ग़मनाक १३५-१ ।सै।   हौलना ७१-१९ ।सै।

- पन, - पना (त.)

बड़ापन १२०-१५ ।फूल।   यकपना ३०-५ ।मन।

साबितपना ७८-१४ ।सब।   साचापना ४१-२ ।हि.ना।

- बन (त.स्थानवाचक)

फूलबन ८०-१ ।कु।, १८-१० ।फूल।

-बन्दी (त.)   तर्कशबन्दी २२-१७ ।सब।   पेशबन्दी ३८-५६ ।फूल।

नक्शबन्दी ३१-३४ ।फूल।

- बाज (त.)   दग़ाबाज़ १५१-४ ।कु।   शहबाज़ ४०-१० ।कु।

- बान, -बानी (त.)

महरबान ९-८ ।कु।, १४३-१६ ।सै।

निगहबान १८१-१ ।सै।, ५६-१८ ।सब।

मेहरबानी ६१-२१ ।हि.ना।

बाग़बानी ३१-२५ ।फूल।   पासबानी २८-१२ ।फूल।

- बादी (त.)   मुबारकबादी १९०-४ ।कु।

- मन्द (त.)   हुनरमन्द १२४-१७ ।कु।   फ़िक्रमंद ६९-१० ।सब।

ख़िरदमन्द ११६-१८ ।सब।   दर्दमन्द ७१-२१ ।कु।

- वत   ख़िलवत ७८-२० ।सै।, ४३-६६ ।फूल।

कसवत ८१-२८ ।फूल।

- वन्द (त.) हुनरवन्द २८-२१ ।कु। दिलवन्द ४५-१२ ।सै।
अख़लवन्द ७३-५ ।कु। दमावन्द ८१-५१ ।फूल।

- वाद (त.) नहनवाद ७४-१५ ।कु।

- वानी (त.) ख़सरवानी ३३-१ ।सै। अरग़वानी ६५-५ ।सै।
पहलवानी २८-१८ ।फूल।

- वार (त. योग्यतम सूचक)
उमीदवार १२४-१२ ।कु। उम्मीदवार ७९-२० ।सब।
सज़ावार ५-११ ।मन। शहसवार १४१-३ ।सै।

- वाल (त.)
मातवाल ४६-२३ ।कु। अहवाल १३२-१५ ।सै।, ७२-२५ ।फूल।

६.२.३) उपसर्ग

६.२.३.१) तत्सम उपसर्ग

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में तत्सम उपसर्ग प्रायः तत्सम शब्दों के साथ ही प्रयुक्त है। इनमें कुछ को छोड़कर प्राय अधिक संख्यक उपसर्ग संस्कृत के ही उपसर्ग है, जो आगत शब्दों के साथ भाषा में प्रविष्ट हो गये हैं। इनका महत्व भाषा इतिहास की दृष्टि से कम है लेकिन भाषा विश्लेषण की दृष्टि से कम है लेकिन भाषा विश्लेषण की दृष्टि से अधिक है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्राप्त होनेवाले तत्सम सोदाहरण इस प्रकार है -

अ अखंड १७५-१५ ।सै। अचपल ७१-३ ।कु।
अगणित २२९-१२ ।हि.ना। अमूल्य ९-२५ ।हि.ना।

	अमल १११४-६ ।हि.ना।	असमान ४७-२० ।फूल।
अत, अति	अतशर्म १०६-२० ।सै।	अतिशर्म ५६-६ ।सै।
अन	अनागत १२०-१९ ।हि.ना।	अनवरत १५०-२० ।हि.ना।
	अनल्प १७४-१७ ।हि.ना।	
अप	अपख्याति १०२-१८ ।हि.ना।	अपयश २४४-१० ।हि.ना।
	अपरूप ४५-२ ।सै।, ३२-३ ।कु।, ११०-५ ।सब।, १५-८ ।मन।	
अव	अवलोकन १०४-१२ ।हि.ना।	
	अवसानकाल ५७-२८ ।हि.ना।	अवमान १३९-२२ ।हि.ना।
कु	कुजन ४५-२२ ।हि.ना।	कुजल १५३-१५ ।कु।
दु, दुर		
	दुस्थिति १०८-८ ।हि.ना।	दुराशा ६२-१६ ।हि.ना।
	दुर्मार्ग २१९-५ ।हि.ना।	दुर्योग १२०-२५ ।हि.ना।
दुस	दुष्कार्य ११०-२५ ।हि.ना।	दुष्काल २२२-६ ।हि.ना।
	दुश्चर्य ६-११ ।हि.ना।	
निर	निरहंकार ७७-२३ ।सब।	निराधार १९४-४ ।कु।
	निरमला १५३-५ ।कु।	निरगुन ३७-१७ ।मन।
	निराकार ३७-१७ ।मन।	निरंजन ३७-१७ ।मन।
	निरमल ३५-३९ ।फूल।	
निर्	निर्दया २२०-१५ ।हि.ना।	निर्भीति २३४-६ ।हि.ना।

	निर्मल ४०-२४ ।हि.ना।	निर्जीव १०-१८ ।कु।, ६६-३ ।सब।
	निर्जोत १११-२२ ।सब।	निर्मोल ३०-१ ।कु।
निष्	निष्कल्मष ६६-७ ।हि.ना।	निष्कपट १७७-१८ ।हि.ना।
	निष्कलंक ४-२७ ।हि.ना।	निष्फलाँ ७६-२२ ।हि.ना।
वि	विध्वंस १३६-१४ ।हि.ना।	विमुक्त ७-२ ।हि.ना।
स	सकाल ३९-१९ ।सब।	सजीव १७४-२४ ।हि.ना।
	सत्वर १८२-१९ ।हि.ना।	सबिस्तर ७८-२ ।हि.ना।
	सशीघ्र १८२-१४ ।हि.ना।	
सु	सुजानी २७-२९ ।फूल।	सुगढ़ ४५-९ ।कु।
	सुधन ११९-६ ।कु।	सुमुहूर्त १९६-१ ।हि.ना।
	सुरंग ९-५ ।सब।	सुरूपवति ७९-१० ।हि.ना।
सौ	सौभाग्य १११-१९ ।हि.ना।	सौगंध्य १२३-२० ।हि.ना।

६.२.३.२) तद्‌भव उपसर्ग

अ	अजब २१-१७ ।सै।	अटक ८-१४ ।हि.ना।
	अमोलक १२-४ ।सै।	
कु	कुजात ३९-१९ ।सब।	कुबल १२३-२५ ।सब।
दु, दुर	दुकाल ३९-१९ ।सब।	दुर्भाषणाँ ८१-२३ ।हि.ना।
नि, निर्	निढाल ७६-१९ ।सै।	निडर ३-२१ ।सब।

निछल २१--१० ।सै।　　निर्मोल ३०-१ ।कु।
निधान १५३-६ ।कु।

सु　सुजान ८२-१८ ।सब।, १६६-९ ।हि.नान
सुजात १४९-६ ।कु।

६.२.३.३) उपसर्गवत प्रयुक्त संस्कृत शब्द और पद्यांश

तत्, तद　तत्पदार्थ ११-३ ।हि.ना।　तत्पट्टण २५८-२ ।हि.ना।
तत्लाभ ३७-६ ।हि.ना।　तत्सतियाँ १६३-१२ ।हि.ना।
तदनुकूल १७४-१३ ।हि.ना।　तदनंतर १७४-९ ।हि.ना।
तदुपयोग १०-२५ ।हि.ना।

बहु　बहुमान ६८-१६ ।सै।　बहुधात ८८-१६ ।सै।
बहुपुण्य १२९-१९ ।हि.ना।　बहुपयुक्ताँ ९०-१० ।हि.ना।
बहुलक्ष्य ११-३ ।हि.ना।　बहुपदेशौं ९०-९ ।हि.ना।
बहुतेरा १२७-१० ।सै।

सत, सद　सतगुरू १४-६ ।मन।　सत्कार्यों १७१-२७ ।हि.ना।
सतफल २४८-२५ ।हि.ना।　सद्गति ७७-५ ।हि.ना।
सद्भक्ति १३२-१६ ।हि.ना।　सद्गुण १३५-५ ।हि.ना।

६.२.३.४) अरबी-फ़ारसी उपसर्ग

अल　अलबत्ता ४१-२५ ।हि.ना।, ९७-२१ ।सब।
अलक़िस्सा ७९-७ ।सब।, ७६-२९ ।फूल।

ऐन	ऐनमस्ती ३१-३ ।सब।	ऐनखुशी २५-१८ ।सब।
	ऐनजात १०८-९ ।सै।	ऐनजागा १०७-२५ ।सब।
	ऐनविसाल १३-१३ ।सब।	ऐनसाअद १४१-८ ।सै।
कम	कमअक़्ली १८६-१२ ।सब।	कमज़र्फ़ ३०-३ ।सब।
	कमज़ात १५९-२३ ।कु।	
खा	ख़ाशाक २-१८ ।सै।	खासीर १०३-१ ।कु।
ख़ुश	ख़ुशनवीस ४३-८ ।कु।	ख़ुशख़बर ३६-१ ।सब।
	ख़ुशनुमा ३४-१८ ।सै।	ख़ुशरंग ५४-२ ।सब।
	ख़ुशढंग ५४-२ ।सब।	ख़ुशहवा ७६-११ ।सै।
	ख़ुशहाल ४६-३३ ।फूल।, २९-२ ।सै।, ४१-४ ।कु।, २४-६ ।सब।	
गुम	गुमराह ५८-२० ।सब।	गुमशुद ६४-१६ ।सब।
गैर	ग़ैरज़ात २१-१५ ।सब।	
ज़र	ज़रबख़्त ५६-९ ।सै।	
दर	दरअसल १२१-५ ।सै।	दर आसमाँ १४-१३ ।कु।
	दर ग़िरबाल ३३-१ ।सब।	दरहाल ४८-१७ ।सै।
	दरचमन ४७-२१ ।कु।	दरदिले ३३-१ ।सब।
	दरदीवार ५१-८ ।सब।	दरमहल ८७-४ ।सै।
	दरफ़ैज़ २०-९ ।सै।	दरसफाँ ८३-१५ ।सै।
ना	नाज़ुक १६०-२६ ।कु।, ७४-२८ ।फूल।	

	नातमाम १०९-२२ ।सब।	
	नाज़ात २१-५ ।सब।	नापाक ११६-१० ।कु।
	नालायक २१९-२३ ।हि.ना।	नाबिकार ८०-१ ।सै।
नेक	नेकक़िरदार ३६-१९ ।सब।	नेकनीयत ३६-१९ ।सब।
	नेकबख्त ३६-१९ ।सब।	नेकनामी ७९-१० ।कु।
पाक	पाकदामन ३५-२० ।सै।, १२४-१ ।कु।	
	पाकसूरत ७५-१२ ।सब।	
पर	परदेश १०-५ ।मन।	परदेस १७५-१७ ।कु।
	परलोक १३२-१ ।हि.ना।	परदेसी १७५-१७ ।कु।, ३६-१९ ।सब।
ब	बजिद १२९-१ ।कु।	बदम १-६ ।सै।
	बमंज़िल ३६-५ ।सै।	बसूरत २१-२१ ।सब।
	बदिल ४४-५ ।सै।, २५-८ ।मन।	बजुज ८३-३० ।फूल।
बद	बदकार ५६-१० ।सब।	बददुआ १०७-३ ।सब।
	बदगुमां ४५-३१ ।फूल।	दबनाम ७४-२० ।कु।
	बदबख्त ५५-४ ।फूल।	बदनसीब ६८-५ ।हि.ना।, ६२-३ ।सब।
	बदशक़ल ७५-१ ।सै।	
बा	बाख़बर ७४-६ ।सब।	बादर्द २६-८ ।सै।
बि	बिरहमान २६-२ ।मन।	
बिन	बिनक़रार ७४-१ ।सै।	बिनतख़्त ६३-११ ।सै।

	बिनताज ६३-११ |सै |	
बे	बेतदबीर १२८-४ |सब |	बेबदल ६०-२१ |सै |
	बेसुद ६०-२२ |कु |	बेहोश ७०-१७ |फूल |
	बेकरारी ४०-२० |फूल |	बेवफ़ाई २८-३१ |फूल |
	बेदर्दी ३०-१४ |सब |	बेख़बर २७-४ |मन |
	बेजरूर ११०-१२ |हि.ना |	बेनिशाँ ५२-५ |कु |
	बेशर्म ३८-२ |सब |	बेहया ४९-१९ |हि.ना |
मद	मदहोश २७-१ |मन |	
ला	लाइलाज ७९-९ |सै |	लाजवाब ६७-२० |सब |
	लाज़िम ८१-१२ |सब |	लामिलाया १४३-१२ |सै |
	लालाज़ार ६७-३ |सब |	
शह	शहपरी १८५-१४ |सै |	
सर	सरशोर ३२-५ |सब |	सरंजाम १३२-२२ |कु |
	सरहद १८४-१३ |कु |	सरमस्त ४-५ |सब |
हम	हमइन्स १०६-२२ |सै |	हमकलाम १२५-१४ |सै |
	हमज़ाद १४२-१० |सब |	हमज़ात १४३-२३ |सब |
	हमदस्त १२९-२२ |कु |	हमदम ५३-१८ |कु |
हर	हरएक १३-१ |सै |	हरचमन १४८-१८ |सै |
	हरदिल २९-२० |कु |, २-४ |मन |	हरनाम १९-१३ |मन |
	हरनिशा १५९-६ |हि.ना |	हररोज १०८-२१ |हि.ना |

हरवक्त १५९-७ |हि.ना|　　　　　　हरबाल ९-३ |सै|

हरसूरत १४६-१ |कु|　　　　　　हरसंग १३०-१८ |कु|

६.२.४) कारकीय व्यवस्था

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की कारकीय व्यवस्था के परिशीलन से यह विदित होता है कि उसके विधान में हिन्दी और उसकी विविध बोलियों का प्रभाव अवश्य है। इनमें ब्रज और अवधी अधिक द्रष्टव्य है। इसके साथ-साथ खड़ी बोली के विधान से अधिक तुल्य है। उपरोक्त सभी कारकों का कारकीय व्यवस्था रूप संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत है।

६.२.४.१) कर्ता कारक

हिन्दी में कर्ता कारक के लिए ने प्रत्यय का प्रयोग संज्ञा या सर्वनाम के साथ होता है। यह परसर्ग भूतकालिक सकर्मक क्रिया के साथ कुछ विधि निषेधों के साथ प्रयुक्त है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी ने ही कर्ता कारक प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त है। लेकिन इसकी व्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ विपर्यय अवश्य साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में परिलक्षित हैं। फिर भी परसर्ग के रूप में कर्ता कारक प्रत्यय ने के अलावा अन्य रूपान्तर आलोच्य कृतियों में प्रयुक्त नहीं है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में कर्ता कारक परसर्ग ने की प्रयोग व्यवस्था तो व्याकरणिक दृष्टि से प्राय: हिन्दी की व्यवस्था से तुल्य है। यथा -

कुबूल आपने जीवन दिल सूँ किया ३५-१८ |सै|

किया आपने मन में ग़म बेक़यास १४१-१२ |सै|

अंगूठी निशां उस दिए शाह ने १६०-२१ |कु|

सुन्या बात जब शह ने उस धात की ६३-७ |कु|

तुराब ने यूँ किया वस्फ दिल आराम १-६ |मन|

ये सब खेल उसने ही जग में किया है ३६-४ |मन|

मुनि ने अस्नान कु निलता था १०९-२ |हि.ना|

कर्ता कारक 'ने' प्रत्यय का विपथन या अव्यवस्थत रूप :

इस व्यवस्था के अनेक विपथन मिलते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है

खुदा के दोस्ताँ ने बोले हैं १७-१८ |सब|

नज़िक आपने प्यार सूँ वईं बुलाई १७९-१७ |सै|

सृष्टि ने सर्व-सलक्षण-समन्वित कें न होगा ? १७४-२६ |हि.ना|

अम्बर धरत ने हाल तुज ज्यास्त दाव २३-१ |कु|

आदमी ने खुदा के कामाँ समज कर चुप रहना ९२-४ |सब|

मँगाई कँदोरे शाह ने जिते ८८-७ |सै|

६.२.४.२) <u>कर्म कारक</u>

खड़ी बोली में कर्म कारक के लिए को परसर्ग प्रयुक्त होता है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में को के अलावा इसके अन्य रूपान्तर भी प्रयुक्त हुए हैं- को, कों, कु, कूँ। अन्य रूपान्तर ब्रज, अवधी स्रोतों के प्रभाव से आगत माने जा सकते हैं। जहाँ तक कु का सम्बन्ध है, कहा जा सकता है कि यह द्राविड़ भाषा स्रोत से दक्खिनी में आ गया हो। तेलुगु में तो इसका संप्रदान में बहुल प्रयोग है। निम्नलिखित उदाहरण कर्म कारक स्थिति की पुष्ट करते हैं -

को - तेरी बादशाही को कुछ अन्त नईं १-१७ |सै|

सैन्यों को संसिद्धां कर लेके १८१-१६ |हि.ना|

समद्दर को नईं खौफ़ कुच आग ते ८२-१८ |कु|

कों - तूँ आदमी कों वाँ भेज होर ले ख़बर १२५-८ |कु|

कु - मानस कु स्पर्धा उत्पन्न होना ८०-४ |हि.ना|

वैसा कहने कु अब तक अटक नहीं ८०-२५ |हि.ना|

कूँ - के यूसुफ की खूबी कूँ बिसर्या है जग १४८-१२ |कु|

नादान कूँ फ़ाम नईं ५१-२९ |सब|

कूं - चल्या फिरने कूं जूं आसमां वो माह ४९-३ ।फूल।

लगाया बात के पंखी कूं यूं पर ४७-४ ।फूल।

६.२.४.३) करण कारक

खड़ी बोली में करण कारक की विभक्ति 'से' या 'द्वारा' है। लेकिन साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी से है। इसके साथ-साथ विविध रूपान्तर भी मिलते हैं जो ब्रज और अवधी से आगत हैं। द्वारा विभक्ति का प्रयोग विवेच्य कृतियों में नहीं हैं। लेकिन करण कारक की विभक्ति के रूप में 'को' 'ते' 'सो' भी देखा जा सकता है। विवेच्य कृतियों के आधार पर कुछ उदाहरण इस प्रकार है:

से - तेरी ताकत से न होने काम...९७-१८ ।हि.ना।

आपसे मैं विज्ञापन करने का क्या है ? ८४-२४ ।हि.ना।

सती - ये सब खलूक को जिस सती काम हैगा २-१७ ।मन।

सिते - पछानत सिते खूब पहचान तूँ ५७-९ ।सै।

सीते - जँगल नूर सीते च बसता अहे ११६-६ ।सै।

सूँ - जवाहिर के मौजाँ सूँ भर्या हूँ मैं २३-६ ।सै।

सेती - आदमी वो ही है जो करे आदम सेती आदमगिरी ३७-२ ।सब।

सो - आरिफ़ाँ सो जहल मना है २६-१ ।सब।

सों - मलिक लक वज़ा सों सराने लगे ५९-१२ ।सै।

ते - तूँ ऐसी तरज़ दिल ते निपंजा नवी ३१-१९ ।कु।

सूरत ते गरम धूप तूँ पाड़ता २-८ ।सै।

पड़ी सू बाग ते पंखी नमन दूर ९७-३ ।फूल।

कों - कहाँ जाऊँ किस कों कहूं क्या करूँ १३७-५ ।कु।

६.२.४.४) संप्रदान कारक

हिन्दी में संप्रदान कारक रूप को और के लिए के योग से बनता है। लेकिन साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में इनके अलावा कुछ और भी परसर्गों का सहारा लिया गया है। इनमें कु, कू, कुं, कों, तई प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। उदाहरण प्रस्तुत है -

को - बेज़ान हत् दे सर को पछता के रो मत ४-८ ।मन।

कु - ...मेरा मानस कु इतना बाधक न होने का ९७-५ ।हि.ना।

कू - व्हीी पारवती कू तो परखत दिखाया २-३ ।मन।

कूँ - अपी मैं यहाँ शाह कूँ ल्याऊँगी १६५-१२ ।कु।

के तईं - के शह जाते इस मह की यारी के तईं १६४-१७ ।कु।

के लिए - वैसा मेरे के लिए देवेंदर ने ९९-१४ ।हि.ना।

६.२.४.५) अधिकरण कारक

इस कारक के रूपों के निर्माण में दक्खिनी साहित्यकारों मे प्राय में, मनें, मने, पर, पे, पै, पो आदि को परसर्ग के रूप में व्यवहृत किया है। आलोच्य कृतियों के आधार पर नीचे अधिकरण कारक के प्रमुख रूप संक्षेप में उदाहरण सहित प्रस्तुत है

में - अपने में आप ही कुछ कह तेते हैं ? ९८-१९ ।हि.ना।

मेरी अंतरंग में आपकी संगातीच रहती है ११०-१६ |हि.ना|

नजर में नजर कर बश के हुनर कूं ६-१ |मन|

साने में दम कूं अपने सांद लेकर ४३-१ |फूल|

मनें - मेरे मन मनें भर असर फ़ैज़ का ३-१० |सै|

लेवे तिल मनें तख़्त चन्द सूर का १४-१० |सै|

मने - तूँ मसजिद मने दीन की बांग होय २०-४ |कु|

न मस्ज़िद मने कर नमाज़ी सूं बाज़ी ५-२ |मन|

पर - मिले यक ठार पर ज्यूं रात होर दिस ७१-३१ |फूल|

मेरे पर अब तक रखे सो कृपा ११४-११ |हि.ना|

मेरे पर अनुग्रह पहुँचाके ११४-९ |हि.ना|

चली ख़ाक पर घर कहाँ पर बनाऊँ १८-१४ |मन|

पे - शहंशा पे जीवन भोत धरतियाँ ६१-३ |कु|

आदमी जिस पे मैं पड्या सो होता है ५२-२१ |सब|

पो - फिदा है मुख पो तेरे सब मेरी जात ६८-२३ |फूल|

किया नेमताँ जग पो नाज़िल हज़ार ६-१२ |कु|

हसूदां की तू बात पो घात कर मत ३-१६ |मन|

जो ग़र्ज़ वो अपस पो फ़र्ज़ करे ३७-२१ |सब|

६.२.४.६) अपादान कारक

प्राय: इस कारक के रूप करण कारक रूपों के साथ साम्य रखते हैं और केवल अर्थ-वैभिन्न के सहारे ही दोनों का अन्तर स्पष्ट होता है। से, सूं, सते, सेती, सो, ते, तें, थे, ताई आदि इस कारक के प्रमुख परसर्गो के रूप में व्यवहृत हुए हैं।

संक्षेप में साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की शब्दावली के अन्तर्गत उपलब्ध अपादान कारक रूपों का निर्देश आधारभूत कृतियों के आधार पर उदाहरण इस प्रकार है-

से - हमन सारे मिलककर उधर से इधर कूं ६-४ |मन|
...रोदल इच्छां से ही अहोरात्रियाँ रहते हैं। ११४-२ |हि.ना|
अंझु मोतियाँ के अपस से ढाल कर ढाल ५३-२९ |फूल|

सूँ - तन सूँ तन ६-११ |सब|
माशूक़ सूँ हमें तो भोत सन्द सूँ बार सँवार १३-५ |सब|

सते - निडर कर बड्याँ के बड़े डर सते ८-१२ |कु|
सो हिकमत सते खोल कर ढाँपना २०१-२० |कु|

सिते - निकल आये कर चाँद तार्यां सिते ४६-३ |सै|
झमकता अथा जगमगार्याँ सिते ४६-४ |सै|

सेती - सबूरी सेती काम होता है सब १७६-१४ |कु|

सों - चन्दर तारे दहशत सों छुप गए तमाम ८-९ |सै|
भुजंग धरत सों आ निकल ख़ाक थे ८-३ |सै|

ते - अक़्ल ते पीर १५-५ |सब|
निकल धड़ में जीव जावे उसे ४९-८ |सै|

तैं - निकलके गोपनजी तानीशा के तैं आया। २८-७ |हि.ना|
नदी के तैं जाएँगे आ। १३१-१६ |हि.ना|

थे - रह्या भार ले सर पे तुज धाक थे ८-४ |सै|

ताईं -		नको कर तूँ इस काम के ताईं हट ८१-४ |कु|

## ६.२.४.७)	संबंध कारक

इस कारक के रूपों का निर्माण साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की शब्दावली में जिन प्रमुख परसर्गों के सहारे हुआ है उनमें का, के, कें, केरा, केरी तथा केरे उल्लेखनीय है। विवेच्य कृतियों के आधार पर उक्त सभी रूपों के उदाहरण इस प्रकार है -

का -		देखत सिलह संजोत का लकलकाट १९१-१७ |सै|
		महादेव का रूप जिसने दिखाया २-२ |मन|
		जिस्म होर जान का एक माना ५-११ |सब|
		कते यक मिस्त्र का था शाहज़ादा ५७-२१ |फूल|

की -		नदीम इस जिन्स की ख़बर ल्याय कर ८१-११ |कु|
		कण्ठ अस्थान में माया की शक्ति की बस्ती १६-४ |मन|
		न चँदना समझता न सूरज की आँच १५२-१३ |सै|
		यू नाज़क फूल छंद के छब की छबीली ९८-१४ |फूल|

के -		किनारे उस नदी के थे कितक घर ६७-१ |फूल|
		अतारद दिया शह के तईं यूँ जवाब ९०-११ |कु|
		सदा बेटे के बिन तपता अछे वो ८७-१९ |फूल|

कें -		ख़ुशी सब कें तईं मुख दिखाई नवी ३०-१६ |सै|

केरा -		वो जिन ज्यूँ सुलेमान केरी निशान ११५-३ |सै|
		गया सूर केरा सिना फाट-फाट १९१-१८ |सै|

केरी -		वो शहज़ादी होर उस केरी साई थे १७३-२४ ।सै।

केरे -		कितेक बदशकल रींछ केरे मिसाल ८३-८ ।सै।
		सलासत नहीं जिस केरे बातें में २६-५ ।कु।
		शहाँ अज़िज़ है दिल केरे ज़ोर से ८८-१ ।कु।

६.२.४.८) <u>संबोधन</u>

संबोधन का अर्थ व्यक्त करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में हुआ है। विवेच्य कृतियों में प्रयुक्त कुछ संबोधनार्थ शब्द इस प्रकार है - अहो।, अरे, ऐ, ऐरे, ओ, दाद, बन्दी, भगवंता, भो, रे, हो, हे, आदि। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त उक्त संबोधनार्थक शब्दों में एक महत्वपूर्ण बात भी है कि प्राय अहो, ऐ, ओ, वस्सलाम, हा और हे शब्दों के प्रयोग में आत्मीयता और शिष्टता का भाव, अरे, अरेरे में आश्चर्य की भावना, दाद, बन्दा, भगवंता, भो शब्दों में अफसोस, श्रद्धेय की भावना, वाह रे वाह, होयरे शब्दों में प्रशंशागत भावना व्यक्त करने के उद्देश्य से किये गये हैं। 'रे' का प्रयोग धृणा और तुच्छता का भाव व्यक्त करने के उद्देश्य से किया गया है। 'रे' के द्वारा चेतावनी का भाव भी अभिव्यक्त होता है।

अहो -		अहो दोस्ताँ शह के शह दाँव तल १५-३ ।सै।
		अहो जनवरेण्याँ ! ३५-१९ ।हि.ना।

अरे -		अरे दिल कूँ शैतान कर अप नूर ते ८-७ ।कु।
		अरे मन यूं धन मान पर ना अकड़ना २३-११ ।मन।
		अरेरेरेरे। यह कहाँ का माया-व्याघ्र संगात लगा रे ! २१४-२२ ।हि.ना।

ऐ -		तुराब की सुनो बात तुम ऐ दिवानो ५-१६ ।मन।
		है तो उस देखने में क्या है सो देख ९४-१० ।सब।

ऐरे -		ऐरे रामा कैसा जाऊँ अंधेरी कोठिडी में ४७-२७ ।हि.ना।

ओ -	ओ मेरे मन के पूत ४५-४ |सै|

दाद -	अपै देवे अपनी दाद !दीन-दूनिया कूँ दिया इश्क़ ने आरायश ४-१६ |सब|

बन्दा -	इश्क है तो कोई साहब होता कोई बन्दा ! ४-१० |सब|

भगवन्ता -	भगवन्ता ! मैं पकाने न सकुँ खगवाहना ४८-१८ |हि.ना|

भो -	तु भी सुख से रहेगी भो पद्मनयना १७०-२५ |हि.ना|

रे -	अरे मन ये सब झूट संसार है रे ४-१३ |मन|
यह कहाँ का भयंकर मृग रे ! २१४-२५ |हि.ना|
यह क्या रे ईश्वरा ! १५४-२४ |हि.ना|

वस्सलाम -	वहाँ च खुदा है बल्के वों च खुदा है - वस्सलाम ! ५-१३ |सब|

वाहरे वाह -	वाहरे वाह ! बहुत बेहत्तर तरह से रहती थी। १००-१३ |हि.ना|

हा -	हा चन्द्रानना ! हा बेटा ! १३३-२५ |हि.ना|

होय रे -	रहीमा सचा तूँ गूनी होय रे ३-१ |सै|

हे -	हे पुरोहितवरा ! अब आपने यहाँ क्या करना? १३२-४ |हि.ना|
हे हरकारा ! अभी मुझकु कें मारेंगे भैया? ५०-१२ |हि.ना|

अहह् -	अहह् ! अहह ! आगे(अजी) मनोहारिणी ३५-९ |हि.ना|

६.२.५) <u>सार्वनामिक व्यवस्था</u>

भाषा संरचना में सार्वनामिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी के सार्वनामिक स्वरूप घटन में बहुरूपता मिलती है। यह सार्वनामिक प्रयोग के विभिन्न कारकीय स्थितियों में भी देखा जा सकता है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त सार्वनामिक मूल रूप और कारकीय रूप विविच्य कृतियों के आधार पर यहाँ प्रयुक्त हैं।

६.२.५.१) पुरूषवाची सर्वनाम :

६.२.५.१.१) उत्तम पुरूष : एकवचन

उत्तम पुरूष एकवचन व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल कर्ता रूप : मैं

संबंध कारक रूप : {मेर-} -आ
-ई
-ए

अन्य कारकीय रूप : {मुझ् -} ~ {मुज् -} ~ {मुंज्} ~ {मंज्} ~ {मुझे}

{मेर् -} {मेरे -} {मेरी -}

अन्य कारकीय तिर्यक रूपों में 'मेरे' और 'मेरी' रूप पु.लि. और स्त्री लिंग के साथ सम्बद्ध है। मेरी रूप का प्रयोग कर्म/संप्रदान में न होकर अन्य कारकों के साथ ही प्रयुक्त है। विवेच्य कृतियों के आधार पर उदाहरणों की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है -

एकवचन :

मूल/कर्ता रूप : मैं ५३-१३ ।कु।, ३-८ ।सै।, २-७ ।सै।
३९-१५ ।मन।, १०-६ ।सब।, ७३-१६ ।फूल।

संबंध : मेरा ४-१ |सै|, ६-१८ |हि.ना|, ४०-४ |फूल|

मेरी ३५-१९ |सै|, २७-९ |कु|, १३२-१४ |हि.ना|, ८३-५ |फूल|

मेरे ३-१९ |सै|, ५९-३४ |फूल|

अन्य कारक रूप :

मुझ ३-१२, २-१९ |सै|

मुज २-२०, ३-१४ |सै|, ६२-८ |फूल|, मुंज १२७-७ |सै|

मुँज ९-२१, ७-१५ |कु| मुँजे ७-१७ |कु|, १९-११ |सै|

मुजे ७-१८ |कु| मिजे ४९-३ |मन|

मुज कूँ १२७-९ |सै| मुज ते १२०-४ |सै|

मुज पे १४७-११ |सै| मुज सूँ १२७-१० |सै|

मुँज उपर ११०-८ |कु| मुज पर ५६-१ |सै|

मुजकूं ६२-१४ |फूल| मिंजकूं ७३-१५ |फूल|

मुझे ४४-८ |सब|, ३-१८ |सै| मुझको ७-७ |हि.ना|

मुझ कु १५३-२० |हि.ना| मुझ कूँ २३-१८ |सै|

मुझ पर ३८-४८ |फूल| मिंजे ७३-७ |फूल|

मेरे के लिए ९९-१४ |हि.ना| मेरे सूं ४३-१० |मन|

मेरे से १५९-७ |हि.ना| मेरे तैं ४७-५ |हि.ना|

मेरे कु १५३-१९ |हि.ना|

मेरे पर १५३-१९ |हि.ना|, ९४-८ |सब|

मेरे उपर ७०-१४ |सै|, ८२-१२ |कु|

मेरी से ९५-३ |हि.ना| मुझे कें ९८-८ |हि.ना|

उत्तम पुरूष : बहुवचन

उत्तम पुरूष बहुवचन व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मुल/संबंधेतर कारकीय रूप : हम, हमना, हमन, हमनाँ

संबंध कारक : {हमार्-} - - आ
- ई
- ए

बहुवचन सार्वनामिक व्यवस्था में सिर्फ दो ही रूप प्राप्त होते हैं - संबंध और संबंधेतर। उदाहरणों की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : हम २२-१३ |सै|, २१-८ |कु|, ६-१३ |मन|, ३-२१ |सब|, ५८-१६ |हि.ना|

हमन ५०-१७ |सै|, १-१० |मन|, ३-७ |कु|

हमना ११२-९ |कु|, ८-१२ |सब|

हमनाँ ५६-१४ |कु|

संबंध : हमारा १२७-२४ |सै|, ५२-३ |कु|, ९-११ |सब|

हमारी ७-१४ |सब|, १-१४ |मन|

हमारे १३३-२७, २५-८ |हि.ना|, १०३-६ |सब|

संबंधेतर कारकीय रूप :

हमको १३३-१९ |हि.ना|

हमकु ५९-२१ |हि.ना|, हमकूँ ३-७ |मन|

हमें १७-१६ |कु|, १७३-११ |सब|, ७५-१४ |फूल|

हमीं १२७-२५ |सै, ५५-६ |कु| हमन कूँ ५५-१६ |सै|

हमना कूँ ११२-९ |कु| हमनाँ कूँ ५६-१४ |कु|

हम सूँ २२-१३ |सै| हमन पर ८०-२१ |सै|

हम पर ७-४ |मन| हमारे पर ११८-२४ |हि.ना|

हमना ते ९-२३ |कु| हमनहेच ७-१० |मन|

६.२.५.१.२) मध्यम पुरूष : एकवचन

मध्यम पुरूष एकवचन व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : तु, तू, तूँ, तुः
संबंध : {तेर्-} - आ
- ई
- ए
{तुझ-} ~ {तुज-}

अन्य कारकीय तिर्यकरूप : तुझ, तुज, तुम, तेरी, तेरे।
विवेच्य कृतियों के आधार पर उदाहरणों की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है -

मूल/कर्ता : तु ५६-६ |हि.ना|
तू ६-१५ |सै|, १४९-१८ |कु|, १७-२ |सब|, ८७-२ |फूल|, ५-४ |मन|
तूं ७४-२३ |फूल|
तूँ २-७ |सै|, ५०-२० |कु|, ५१-२१ |सब|
तुः ९८-२० |हि.ना|

संबंध : तेरा ६२-९ |फूल|, ३-७ |सै|, ६-१३ |कु|, १००-३ |सब|, १०-१ |मन|
तेरी ५-४ |मन|, ४८-६ |सब|, १४०-१ |हि.ना|
तेरे ६२-१५ |फूल|, १०-१० |मन|, १४१-१४ |सब|, १४९-२२ |हि.ना|
तुझे २-१६ |सै|, ४८-७ |सब|, १३२-१७ |हि.ना|
तुज ८७-८ |फूल|
तुजे ५०-२० |कु|, १०-८,९,१३ |मन|, ८७-४ |फूल|

अन्य कारकीय तिर्यक रूप :

तुझको ४-४ ।हि.ना।, १२-२ ।मन।

तुझकु १३३-२० ।हि.ना।	तू के ५-४ ।मन।
तुज कूं २७-१५ ।फूल।	तुज कूँ ३५-२४, ६-२० ।कु।
तुज कों १३-१५ ।मन।	तुज सूं २४-५ ।फूल।
तेरी कु ६६-२८ ।हि.ना।	तेरे से ९४-६ ।हि.ना।
तेरे से ९३-२६ ।हि.ना।	तुज ते ३२-२ ।कु।
तुज ऊपर १२७-१३ ।सै।	तेरा तुज १०६-२७ ।फूल।
तुज अंगे २२-२१ ।कु।	तुज कनें १७३-१२ ।सै।
तुझ कन २५-५ ।फूल।	तुज में ९२-२१ ।फूल।, ४७-४ ।सब।

मध्यम पुरूष : बहुवचन

मध्यम पुरूष बहुवचन व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मुल/कर्ता रूप : तुम, तुमन, तुमना

संबंध : {तुम्हार्-} - आ

- ई
- ए

{तुमार्-} - आ

- ई
- ए

अन्य कारकीय तिर्यक रूप : {तुम-} तुमन, तुमे, तुमना, तुम्हारे।

उदाहरणों की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : तुम २१-८ ।कु।, ५८-१८ ।हि.ना।

तुमन १९३-२ ।सै।, ११-५ ।सब।, ११८-७ ।फूल।

संबंध : तुम्हारा ३२-१३ ।सै।, ९८-२४ ।हि.ना।

तुम्हारी ५८-७ |हि.ना| तुम्हारे ५-१२ |हि.ना|

तुमारा ८-१५ |मन|, १९०-१६ |कु|, ९४-२ |सब|, ३५-५५ |फूल|

तुमारे ४६-८ |मन|, १०३-६ |सब| तुमनाँ कूँ ३२-३ |सै|

तुमें ६६-२४ |सै|, तुमकु २०४-२० |हि.ना|

तुम्हारे में ५३-१६ |हि.ना|

६.२.५.१.३) अन्य पुरूष :

दूरवर्ती : एकवचन : अन्यपुरूष एकवचन सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूलकर्ता रूप : वह, वो, व्व, ओ, सो
तिर्यक रूप : {उस-}

उदाहरणों की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है -

मूलकर्ता रूप : वह ५७-१२ |सब|, २८-४ |सै|

वो ४७-३ |सै|, १०३-१० |सब|, ८८-१७ |फूल|

व्व २-३ |मन|, ओ १२-५ |मन|

सो १०२-७ |सै|, ४७-३ |कु|

अन्य तिर्यक रूप : उस ७४-२३ |फूल|, १०-२२ |कु|, २६-६ |सै|

उसी ९५-२० |फूल|

उसे २७-११ |सै|, ५-१५ |मन|, १०४-४ |सब|

उसका १२-२४ |कु|, १-४ |मन|, ५१-२२ |फूल|

उसकी ३६-१३ |सै|,१२-२३ |कु|, १-१ |मन|, ३५-२९ |फूल|

उसकु ५७-२८ |हि.ना| उसकूं ७७-९ |फूल|

उसके ४६-२० |फूल| उससे २५९-८ |हि.ना|

उसते ५२-१८ |सै|, ८१-१० |कु|, ४१-६ |सब|

उसमें ५४-२ ।सै।   उस सूँ ८०-११ ।कु।

उसपे ७४-२१ ।सै।   उसपर ९-११ सब, ९५-२९ ।फूल।

उस मने ४७-१२ ।कु।   उस कने १५१-१३ ।सै।

उस ऊपर ५९-१८ ।सै।, २५-२२ ।फूल।, १३-१७ ।कु।

दूरवर्ती : बहुवचन : अन्य पुरूष दूरवर्ती बहुवचन सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप: वे, वो, उन, उनन, उनो
अन्य तिर्यक रूप : {उन-}, {उनन-}, {उनें-}, {उनो-}, {उनोंने-}, {उनों-}

विवेच्य कृतियों के आधार पर उदाहरण इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : वे २४-१८ ।हि.ना।   वो ४५-२० ।कु।, ८७-१९ ।फूल।

उन ८-४ ।सब।   उनन २०-१८ ।सै।, ५८-४ ।कु।

उनने ६-२१ ।हि.ना।   उनों १९-२३ ।कु।

अन्य तिर्यक रूप : उनका ३-५ ।सै।   उनकी २७-२२ ।सै।

उनके ३-६ ।सै।   उनन के ३-८ ।सै।

उनन के १०६-१९ ।सै।   उनन कू ९०-२४ ।फूल।

उनों का १७-१६ ।कु।   उनो पर ३९-२० ।सब।

उनो की ४८-१२ ।सब।   उनो के ५४-२ ।कु।

उनें २२-२ ।कु।   उने ८-२ ।सब।

उनो की ३५-१७ ।सब।   उनोंके ६५-२२ ।हि.ना।

उनोंकु ५-७ ।हि.ना।   उनकु ५९-१५ ।हि.ना।

उनो कूँ ५४-१ ।कु।, १-६ ।सब।   उनों को ९-१४ ।सै।

उनो में १९-१६ ।कु।, १-६ ।सब।   उनों में ३५-८ ।फूल।

उनका ६०-१८ ।हि.ना।   उन पर ७-८ ।हि.ना।

निकटवर्ती : एकवचन : अन्य पुरूष निकटवर्ती एकवचन सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : यह, यू, या, यो, ये

अन्य तिर्यक रूप : {इस-}

मूल और कर्ता कारक रूप में प्रयुक्त सार्वनामिक भेदों में 'यह' को छोड़कर प्राय सभी अवधी और ब्रज की बोलियों से स्वीकृत हैं। प्राप्त उदाहरणों की सूची इस प्रकार है

मूल/कर्ता : यह ८०-२३ |हि.ना|, ५२-१२ |कु|

यू १६५-२३ |सब| या १७-७ |कु|

यो ७२-२१ |कु|, २-९ |मन|, ८-१६ |सब|

ये १३९-२० |कु|

अन्य तिर्यक रूप : इस ६-५ |मन|, १९-९ |सै|, ११-३ |कु|

इसी ६३-३ |कु|, ६-१० |मन|

इसे ८-१२ |सब|, ३०-५३ |फूल|

इसका १३०-१८ |कु|, ३३-१४ |मन|, १५१-१ |हि.ना|

इसकी ९३-१३ |कु| इससे ३७-२५ |हि.ना|

इसकु ३३-१५ |मन|, ६०-१४ |हि.ना|

इस ते ८१-१३ |कु|, ९२-१९ |फूल|

इस में ६९-१५ |कु|, ३०-५५ |फूल|

इसपे ४६-३३ |फूल|

निकटवर्ती : बहुवचन : अन्य पुरूष निकटवर्ती बहुवचन सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : ये, यू

अन्य तिर्यक रूप : {इन-}, {इनो-}

कतिपय उदाहरणों की वर्गीकृत सूची इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : ये ३८-३ |कु|, २७-८ |सै|
यू १६२-५ |सब|

अन्य कारकीय तिर्यक रूप : इन ११७-२० |कु| इनका ५९-१० |हि.ना|
इनो की १०६-९ |सब| इनों की ९०-३० |फूल|
इन कूँ ४५-१६ |कु| इन्हीं कूं ९१-३ |फूल|
इनों कु १५४-२ |हि.ना| इनकु ११२-२५ |हि.ना|
इनो कूँ १६६-५ |सब| इनो ते ६२-८ |कु|
इनों में ६२-७ |कु| इनो सूँ ३५-१७ |सब|
इनो से १०६-९ |सब|

६.२.५.२) **निजवाची सर्वनाम :**

दक्खिनी हिन्दी में निजवाचक तथा आदर वाचक सर्वनाम के लिए 'आप' के अलावा अपस, अप, अपन, आपन, अपे आदि मिलते हैं। 'अपन' केवल निजवाचक सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त न होकर उत्तम मध्यम पुरूषवाचक सर्वनाम के रूप में भी प्रयुक्त है। द्रविड़ भाषाओं में उत्तम पुरूष के लिए दो सर्वनाम प्रयुक्त होते हैं। जैसे तेलुगु में उत्तम पुरूष बहुवचन में 'मेमु' तथा 'मनमु' का प्रयोग होता है। अतः यह द्रविड़ भाषाओं से प्रभावित माना जा सकता है।

निजवाची सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : आप, अपस, अपन, आपन, अपे, अपें, अपै, अपैं, आपै।
तिर्यक रूप : {आप-}, {अपन-}, {अपस-}, {अपना-}, {आपना-}, {अपनों-}, {अप-}

कतिपय उदाहरणों की सूची इस प्रकार है -
मूल/कर्ता रूप :

आप ८७-१८ |फूल|, ४६-११ |सै|, ३३-२ |कु|, १-१० |सब|

अप २३-३ |सै|, ८-७ |कु| अपस १६८-३० |सब|, ५०-४ |फूल|

अपन ३९-१५ |सै|, ८४-९ |कु| आपन १३८-२१ |सै|

अपे २-२ |सै| अपें १०७-११ |सै|

अपैं १६-१० |कु| अपै १६८-२८ |सब|

आपै १४-८ |सब|, ७५-६ |कु|

कारकीय तिर्यक रूप :

अपी ११७-२ |सै|, ३०-२१ |कु|, ९-४ |मन|

आपी २१-१० |सब|, ४-१२ |कु|, १३६-९ |सै|

अपना ३३-१४ |सै| आपना ३३-१६ |सै|

अपनी ३४-७ |सै|, ७३-७ |कु| आपका ६९-३ |हि.ना|

अपस का ३१-३ |मन| अपस की ७-७ |मन|, ३१-२३ |फूल|

आपको १९१-१ |सै| आप कु ६९-४ |हि.ना|

अपने कु ३७-२ |हि.ना| आपनों कु २०७-२८ |हि.ना|

अपस कों १०-१६ |मन| अपसीं ४७-४१ |फूल|

अपस कूँ १६५-२८ |सब| आप में १-१० |सब|

आप से ७५-११ |हि.ना| अपने पर ३०-१८ |हि.ना|

अपसें ४८-१३ |सै| अपसे ७०-६ |कु|, ३४-५९ |फूल|

अपस में ३५-५ |फूल| अपस ते ११७-२ |सै|

अपस पर ३३-१८ |कु| अपस सूँ ८०-११ |कु|

अपस पो ३७-२१ |सब| अपस के ११७-१३ |फूल|

६.२.५.३) **सम्बन्ध वाचक सर्वनाम :**

संबंधवाची सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूल/कर्ता रूप : जो, जु, ज, सो

एकवचन तिर्यक रूप : {जिस-}

बहुवचन मूल तिर्यक रूप : जिन / {जिन-}

आधारभूत कृतियों के आधार पर उदाहरण इस प्रकार है -

मूल रूप : जो ८७-१७ |फूल|, ९८-४ |कु|, १-१० |सब|

जु ९९-५ |कु| ज १०७-२१ कु, १४-१२ |सब|

सो ३०-२१ |कु|, २४४-११ |हि.ना|, १२-१ |सै|, ३४-४ |सब|

तिर्यक रूप : एकवचन :

जिस ११४-२३ |फूल|, १५-१० |कु|

जिसे १५-१० |मन|, ५४-१७ |कु|, ११४-२३ |फूल|

जिसका ३४-७ |मन|, १३-५ |सब|

जिसकी ३५-१२ |मन| जिसके ४-५ |मन|

जिसकु ३७-२५ |हि.ना| जिसकूं ९१-२ |फूल|

जिसकूँ ९६-१९ |कु| जिसपर ८४-५ |कु|

जिसमें ४१-१६ |सब| जिस मने ४१-१७ |सब|

कुछ मूलरूपों का प्रयोग अन्य सर्वनामों के साथ भी देखा जा सकता है -

जकुच १०७-२१ |कु| जो कुछ ३३-१ |सै|

जुकुच ९८-१२ |कु| जकुछ ३५-१ |सब|

जो कोई ५०-१ |सब| जुकोई १२६-२३ |कु|

जकोई १४-२१२ |सब| जू कोई १०३-३१ |फूल|

बहुवचन : मूल रूप/कर्ता : जिस १५६-१ |सै|, ३०-४ |सब|

जिनो १६-७ |सब|

तिर्यक रूप : जिने १९५-१५ |कु|, १३-१६ |सब|, ८७-१५ |फूल|

जिनें ७७-१८ |सै| जिनों ९४-४ |कु|

जिन्ने १२-१७ |मन| जिनो की ६-१३ |सब|

जिनकु ३७-२५ ।हि.ना। जिनों कूँ १६०-१३ ।सब।

६.२.५.४) अनिश्चयवाचक सर्वनाम :

खड़ी बोली के अनिश्चयवाची सर्वनाम 'कोई' और 'कुछ', ज्यों के त्यों दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त हैं। इनके आलावा कोई के पर्यायवाची रूप में 'कोइ' और 'कोय' भी मिलते हैं। इस वर्ग की व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

एकवचन : मूल/कर्ता रूप : अ) कोई, कोइ, कोय
आ) कुछ, कुच, कुच्छ
तिर्यक रूप : {किसी-}

विवेच्य कृतियों के आधार पर उदाहरण इस प्रकार हैं -

अ) मूल रूप : कोई १-५ ।मन।(भूमिका), १६१-६ ।सब।, ३५-४६ ।फूल।
कोइ ६०-१२ ।कु।, ४-१४ ।मन।, १२८-१० ।सै।
कोय ४०-१० ।कु।

तिर्यक रूप: एकवचन किसी १०४-१८ ।सब।, २०-१८ ।कु।, ३०-२७ ।फूल।
किसी के १०४-१८ ।सब। किसी पर १३-४ ।मन।

आ) मूल रूप : कुछ ३४-१३ ।फूल।, ४८-१३ ।हि.ना।, १६५-१५ ।सब।
कुच २४-२ ।मन।, १३०-२० ।सै।
कुच्छ १२९-५ ।कु।

६.२.५.५) प्रश्नवाची सर्वनाम :

प्रश्नवाची सार्वनामिक व्यवस्था की रूप तालिका इस प्रकार है -

मूलरूप : अ) कौन ~ कोन आ) क्या

एकवचन तिर्यक रूप : {किस-}
बहुवचन तिर्यक रूप : {किन-}

विवेच्य कृतियों का आधार पर उदाहरण इस प्रकार है -

अ) मूल रूप : कौन १०५-२५ |फूल|, २२-१९ |सै|, १६४-२३ |सब|
कोन ९७-२४ |कु|

एकवचन : तिर्यक रूप : {किस-}

किस १०४-१८ |सब| किसूँ ५३-८ |सै|
किसका ५३-११ |सै|, ९-२ |मन| किसकी १०६-२२ |फूल|
किसकूँ ५१-१० |कु| किसकूं ९२-४ |फूल|
किससूँ १३-१६ |मन| किस के ३३-७ |मन|
किससे ८९-७ |सै| किस उपर ८९-१२ |सै|
किसमें ३८-१० |मन| किसते ९२-१८ |कु|
किससूं ३४-९ |मन|

आ) क्या ७५-१८ |कु|,१०-१ |सब|, ३१-१७ |मन|, ११४-२२ |सै|, ९५-१८ |फूल|

बहुवचन : मूलरूप : किन ५३-११ |सैन
तिर्यक रूप : {किन-}

किने २०-१७ |कु|, ४-१३ |सब|
किनकु २४-३ |हि.ना| किनको १३४-७ |हि.ना|

६.२.६) **विशेषण** : साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में अन्य शब्द रूपों की अपेक्षा विशेषण अधिक नियमित एवं मर्यादित व्यवस्था है। वैसे तो विशुद्ध कला पक्ष की दृष्टि से इसका महत्व है ही। दक्खिनी साहित्यकारों द्वारा विशेषणों के साहित्यिक प्रयोग अधिकांशतः सौन्दर्य-वर्द्धक उपयुक्त परिस्थिति में उपयुक्त संज्ञाओं के साथ हुए हैं। इनका विस्तृत विश्लेषण कला पक्ष के अध्ययन के अन्तर्गत होता है। किन्तु भाषा केन्द्रित

अध्ययन में भाषा तात्विक विश्लेषण ही अभिप्रेत होता है। दक्खिनी साहित्यिक कृतियों में प्रयुक्त विशेषणों का विवेचन यहाँ भाषा अध्ययन की दृष्टि से किया गया है। दक्खिनी हिन्दी में संस्कृत से आगत तत्सम, तद्भव विशेषण, तत्सम और तद्भव विशेषण पदबन्ध, अरबी, फ़ारसी तत्सम विशेषण, अन्य विशेषण प्राप्त होते हैं। इन विशेषणों के विवेचन के साथ साथ विशेषण व्यवस्था, व्युत्पन्न विशेषण, सार्वनामिक विशेषण और संख्यावाचक विशेषणों पर भी विवेचन आधारभूत कृतियों के आधार पर प्रस्तुत है।

६.२.६.१) **संस्कृत तत्सम विशेषण :**

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में संस्कृत से आगत विशेषण वाची शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त है। विवेच्य कृतियों के आधार पर कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -

अपार ५-१३ ।कु।　　अताल १-३ ।सब।

उत्तम २७-२१ ।कु।　　कपट ८०-४ ।सै।

कठिन १३-२ ।मन।, ७२-६ ।सै।, २१९-१२ ।हि.ना।

श्रद्धा ११-२३ ।हि.ना।　　गंभीर ७३-२१ ।कु।

चंचल ५८-१ ।सब।, ८९-१० ।सै।, ७-९ ।मन।

चतुर ७८-३ ।सै।　　चंचला १५३-९ ।कु।

निरंजन २४-१ ।सै।　　निर्मल ४१-४ ।सै।

ब्रह्माण्ड ५-१० ।मन।　　मृदु १६०-२ ।हि.ना।

उपयुक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि इनकी प्रकृति संस्कृत रूपा ही है।

६.२.६.२) **संस्कृत तद्भव विशेषण :**

अदीक ५२-१८ ।सै।　　अन्दकार ३२-१० ।फूल।

तिरलोक ३९-२ ।कु।　　तिर्जग २-३ ।सै।

निछल ४५-६ ।सै।　　निरमल ३५-३९ ।फूल।

निर्गुन २-२ ।मन।　　निरमला १५३-५ ।कु।

सुकी १९-१४ ।मन।　　चतर ३६-१७ ।सै।, ८-१० ।सब।

६.२.६.३) तत्सम विशेषण पदबन्ध :

विश्वविश्ववंभरा धर - प्रबल - पक्ष-विभेदी ८४-१४ |हि.ना|

काम - क्रोध - मद - लोभ-मोह १९-२ |हि.ना|

चंचल मन हरन १५३-९ |कु|

शोक - चंचल - उतम १९०-२४ |कु|

धन - कनक - वस्तु - वाहन - गज १७९-२६ |हि.ना|

६.२.६.४) तद्भव विशेषण पदबन्ध :

कुछ विशेषण पदबन्ध ऐसे भी मिलते हैं, जिनकी सामासिक व्यवस्था में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द गूंथे मिलते हैं। ऐसे उदाहरणों की संख्या तो बहुत कम है। लेकिन प्रवृत्ति निरूपण की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण है। विवेच्य कृतियों से प्राप्त कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

सुलक्खन - सुघड़ - चंचल अवतार १६६-१ |कु|

ध्यान, चतर सुघड़ दिल २३-१४ |सब|

गुनवन्त गुन निधान १५३-६ |कु|

६.२.६.५) अरबी फ़ारसी विशेषण :

अरबी, फ़ारसी स्त्रोती विशेषणों में प्राय: वे ही विशेषण प्रयुक्त हैं, जो शिष्ट जन व्यवहार में आये हैं। इनमें कुछ ऐसे भी विशेषण मिलते हैं, जो ध्वनि विकास के सहज परिवर्तन से भी गुजरे हैं। यद्यपि ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं, फिर भी भाषा के रूपायन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। स्वरागम और अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति से अनुशासिक एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है - सख्त ~ सकत ६३-११ |सै|

निम्न उदाहरण तत्सम वर्ग के विशेषण हैं, जो विवेच्य कृतियों से नमूने के तौर पर प्रस्तुत किये गये हैं -

करीम २-३ |कु| गफ्फार २-१२ |कु|

नरम ७९-१६ |सै|	नाजुक ८९-२९ |सब|
नूर १-५ |कु|, १७-१३ |फूल|	नेक ४४-९ |मन|, नेकी १७-७ |फूल|
महरम १६६-१९ |कु|	पाक २१-१ |फूल|, १८-८ |मन|
फहीम १८०-१३ |कु|	मिसकीं ६४-१२ |कु|
रसूल ५-४ |सै|	रहमत ४५-७ |सब|, २०-५ |फूल|
लानत २९-८ |मन|	वायज़ ५-१० |सै|
शकर ४-८ |सै|	सख़्त १२१-२५ |सब|

६.२.६.६) <u>अन्य विशेषण</u> :

इस वर्ग में वह विशेषण समुदाय आता है, जो भारतीय भाषा स्त्रोतों से आगत है। प्राप्त उदाहरणों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि ये विशेषण अवधी, खड़ी बोली और मराठी आदि हिन्दी प्रान्तीय बोलियों से आगत है। प्रवृत्ति निरूपण की दृष्टि से निम्न उदाहरण देखे जा सकते हैं -

अवधी रूप : मिठा (मीठा) १२-११ |मन| मिठे ३०-२६ |फूल|
पिरत (प्रीति) ३०-४ |फूल|

खड़ी बोली रूप : काला १३-१० |सब| मीठा ३९-१४ |सब|
लाल १३-१० |सब|, ६५-९ |फूल|
बुरा ६१-६ |सब| लम्बा ७५-११ |सै|

मराठी रूप : डोंग्या (गहरा) ७७-३ |सै|
बलकाये (जबरदस्ती से) ३२-२९ |फूल|
लइ-लइ (अधिक अधिक) ६१-१५ |सब|
आभूला (अबोला-न बोलने वाला) ५०-३० |फूल|

६.२.६.७) **विशेषण व्यवस्था :**

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की विशेषण व्यवस्था खड़ी बोली व्यवस्था के अनुरूप दो रूपों में मिलती है - लिंग, वचन, कारक व्यवस्था से प्रभावित। लिंग, वचन, कारक व्यवस्था से अप्रभावित। प्रथम वर्ग में वे विशेषण आते हैं, जो आकारान्त हैं। ऐसे विशेषणों के साथ लिंग, वचन, कारक का प्रभाव स्पष्टतः मिलता है। इनमें आकारान्त वाले विशेषण रूप एक० पु० संज्ञाओं के साथ इकारान्त विशेषण रूप स्त्री० एक० में तथा पु० एकारान्त बहु० के साथ ईकारान्त बहु० स्त्री० में मूलरूप में मिलते हैं। तिर्यक रूप में एकारान्त एक० और बहु० दोनों में मिलते हैं तथा स्त्री० में ईकारान्त दोनों वचन में समान हैं। इस व्यवस्था की तालिका इस प्रकार है -

विशेषण	पु०		स्त्री०	
(आकारान्त)	एक०	बहु०	एक०	बहु०
मूल -	-आ	-ए	-ई	-ई
तिर्यक -	-ए	-ए	-ई	-ई

अप्रभावित रहने वाले विशेषणों में कोई रूप संरचना नहीं होती अथवा भाषा वैज्ञानिक शब्दावली में कहा जाए तो शून्य प्रत्यय योग की स्थिति है।

६.२.६.८) **लिंग से प्रभावित विशेषण :**

काला रंजन (पु०) ७७-२ |सै|

ली कहीं ऐसी खुजाली (स्त्री०) ७७-२२ |सै|

मिठी चाल (पु०) १५३-७ |कु|

अंधेरी रात (स्त्री०) ५८-१७ |हि.ना| ठण्डी छाँव (स्त्री०) ८५-१९ |सै|

बड़ा मर्तबा (पु०) ५९-४ |कु| अंधारी रात (स्त्री०) ६८-६ |फूल|

झूठी बात (स्त्री०) ४६-५९ |फूल| झूठी हूर (स्त्री०) ६७-१६ |कु|

६.२.६.९) **वचन से प्रभावित विशेषण :**

लंबे बाल १५३-८ |कु| (बहु०) लंबा कद ७५-११ |सै| (एक०)

चौड़े बुलाख़ ७५-११ सै (बहु०) गर्म बाज़ार ३३-२ |मन| (एक०)
सुके झाड़ १४९-४ |कु| (बहु०) पीले पात ६५-९ |फूल| (बहु०)
अथा दिल साफ तिसका जूं के दर्पन ३६-१४ |फूल| (एक०)

६.२.६.१०) <u>कारक से प्रभावित विशेषण :</u>

बड़े लोकाँ की १०९-९ |सब| (बहु०)
बड़े आदमी कूँ १०९-१६ |सब| (एक०)
नहने लोकाँ के १०९-१० |सब| (बहु०)
देव काले मने ९६-९ |कु| (एक०)

६.२.६.११) <u>लिंग, वचन और कारक से अप्रभावित विशेषण :</u>

परी चेहर कूँ......... १३९-१५ |सै|
लाल कूँ काला कर समझता..... १३-१० |सब|
उत्तम हीरे......... २७-२१ |कु|
चंचल नज़र........ ५८-१ |सब|
नरम रूई............... ७९-१६ |सै|
कठिन वक्त............ १३-२ |मन|

६.२.६.१२) <u>व्युत्पन्न विशेषण :</u>

अ) <u>क्रिया अन्य विशेषण</u>
उदा० जल्या दिल....... १२१-२ |सै|

आ) प्रत्यय की सहायता से व्युत्पन्न विशेषण
उदा० डरालू १५-१९ |कु|

इ) संज्ञाओं का विशेषणगत प्रयोग

उदा० चंदर बदन...... १५३-९ |सै|, ४३-९ |फूल|

चंदा मुख........ ५८-२० |कु|

परी चेहर........ १३९-१५ |सै|

६.२.६.१३) <u>सार्वनामिक विशेषण :</u>

सार्वनामिक व्यवस्था शीर्षक के अन्तर्गत इसका विवरण विस्तार रूप से दिया गया है। यहाँ फिर से कहना पुनरावृत्ति ही होगी, इसलिए सिर्फ प्रवृत्ति निरूपण की दृष्टि से कुछ उदाहरण प्रस्तुत है. जिनमें मूल सार्वनमिक विशेषण, निश्चय वाचक, संबंध वाचक, प्रश्नवाचक विशेषण आदि उपस्थित हैं -

वह एक आफ़त है ५७-१२ |सब|

वो नरमी नाज़ की किस लाल में नैं ४२-२० |फूल|

चमन के नरगिसां में कां है वो नाज़ ४२-१२ |फूल|

वो कुदरत किसे फाम है ६-१० |कु|

किते जिन्स के यादगार ३५-२ |सै|

जेता अक़्ल, जेता ज्ञान है ५०-५ |सब|

केता में रखूँ दिल १४६-५ |कु|

६.२.६.१४) <u>संख्यावाची विशेषण :</u>

समस्त संख्या वाचक शब्द विशेषण की कोटि में आते हैं। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त संख्यावाचक, विशेषणों का हिन्दी के साथ निकटतम सम्बन्ध है। इनके अन्तर्गत पूर्णांक बोधक संख्यावाचक विशेषण, अपूर्णांक बोधक संख्यावाचक विशेषण, क्रमवाचक विशेषण, समुदायवाचक विशेषण विवेच्य हैं। मूल संख्यावाचकों का सामासिक रूप भी उल्लेखनीय है।

संख्यावाचक विशेषण विवेचन में संख्यावाचकों की त्रिविध रूपीय स्थिति प्रस्तुत की गयी है - १) मूल रूप २) संयुक्त संख्यावाचक रूप ३) सामासिक और अन्य रूप।

क) पूर्णांकबोधक गणनावाचक विशेषण

गणनावाचक विशेषण की कुछ संख्याओं में विविधता दिखाई देती है। दक्खिनी हिन्दी और खड़ी बोली के पूर्णांकबोधक गणनावाचक विशेषणों में अधिक साम्य है। उदाहरण इस प्रकार है -

एक - इसका संस्कृत मूल रूप एक[३] के साथ अन्य दक्खिनी रूपान्तर भी मिलते हैं। ये हैं - एक ११-१ |मन|, ३१-७ |फूल||

~यक ४५-३ |कु|, २३-१४ |सब|, २५-२५ |फूल|

~येक ११८-१० |हि.ना|

~एकस २-४ |सै| ~एक्स ६७-१३ |फूल|

~यकस ३३-६ |कु| ~यक्स ६७-१२ |फूल|

संयुक्त संख्यावाचक रूपों में इसका आदि अंश -ए के -इ और -य रूप मिलते हैं।[४] लेकिन इसके उदाहरण विवेच्य कृतियों में नहीं मिले हैं।

सामासिक रूपों में 'इक' प्राप्त होता है। लेकिन विवेच्य कृतियों में उदाहरण अप्राप्य है। एक और विशेषण पदरूप में इसका एक रूप जुड़ता हुआ मिलता है, जिसका अर्थ उस संख्या से लगभग कुछ कम या कुछ अधिक बोध कराता है; जैसे

भोतेक ३६-७ |कु| कितेक ३४-१९ |सै|

हरेक ३४-१९ |कु|, १८-१० |फूल|

हरयक ५५-११ |कु|, १०५-१ |फूल|

दो - मूल रूप में दो के साथ अन्य रूप भी प्राप्त होते हैं। इस संख्यावाचक के रूप हैं-

दो ११-१३ |कु|, ८-५ |मन|, ३८-१९ |सब|, २४-३१ |फूल|

~दुई ४३-७ |सै|, ७५-२० |सब|

~दोय ७९-१३ |सै|

संयुक्त संख्याओं में 'बा' रूप मिलता है। जैसा - बारह ९६-२१ |कु|। अन्य संयुक्त संख्याओं में संभावतः 'ब' रूप मिल सकता है। जैसे - बत्तीस, बयालीस आदि। किन्तु विवेच्य कृतियों में उदाहरण नहीं मिले हैं।

सामासिक और अन्य रूपों में दू, दो प्राप्त हैं-

दू - दूसरे १३८-१८ |सब| दुसरा २०-४ |सब|

दूजा ९-१ |मन|, ७८-३४ |फूल| दूजे ८५-२८ |फूल|

दूजी १०८-३१ |फूल|

दो - दोधारी ४२-१ |मन| दोजा ६४-१ |सै|

दोनों ४९-३ |सब|, ४३-३९ |फूल| दोनू ६७-११ |फूल|

तीन - इसका मूल रूप है -

तीन ७८-३१ |फूल|, ६४-१९ |सै|, ३८-१९ |सब|, ५९-२७ |हि.ना|

संयुक्त संख्याओं में ते रूप मिलता है। जैसा - तेरह १४२-२१ |सै|। अन्य संयुक्त संख्याओं में 'तें', 'तिर' रूप मिल सकते हैं। जैसे - तैंतीस, तिरपन आदि। लेकिन विवेच्य कृतियों में इस प्रकार के उदाहरण अप्राप्य हैं।

सामासिक शब्दों में 'तिर' और अन्य में 'तीट रूप मिलते हैं -

तिर - तिरलोक ३९-२ |कु| तिर्जग २-३ |सै|

ति - तिसरे १३८-१९ |सब|

चार - इसका मूल रूप एक ही है -

चार ३०-१० |सब|, १२५-३ |कु|, ९३-१३ |फूल|, ३७-२४ |हि.ना|

संयुक्त संख्यावाची शब्दों में चौ - मिलता है। जैसा - चौदह ४२-१० |सै|, चौबीस ३५-५० |फूल|, लेकिन अन्य प्रयोगों के अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि इसका यह रूप भी मिल सकता है - चौं। जैसा - चौंतीस। आलोच्य कृतियों में इसके उदाहरण नहीं है।

सामासिक रूप में भी चतुर, चार, चौ प्राप्त होते हैं -

चतुर : चतुर्मुख १८८-२० |हि.ना|

चार : चार पाई ३८-५ |कु|

चारों ७१-७ |सै| चारो ४७-२३ |फूल|

चौ : चौकधन ३९-१० |सै| चौदहवीं ३५-३९ |फूल|

चौफर १०३-१५ |फूल| चौफीर ६२-१५ |सै|

चौफेर १०३-२९ |फूल| चौगिर्द १०३-३० |फूल|

चौढल १०३-२९ |फूल|

पांच - इसके मूल संख्यावाचक शब्द हैं - पाँच और पंज। पंज रूप अरबी-फ़ारसी स्रोती है।

पाँच १०८-१ |सब|, १०५-२० |हि.ना|

~पंज ६९-८ |फूल|

संयुक्त संख्यावाचक शब्दों में पच - पैं रूप मिलते हैं -

पचीस २६-३ |कु| पचहत्तर ६७-२ |फूल|

पैंसठ ४०-४ |हि.ना|

अन्य उदाहरणों की दृष्टि में रखकर यह भी कहा जा सकता है कि संयुक्त संख्याओं में पन रूप भी मिल सकता है। जैसे - पन्द्रह आदि। लेकिन आधारभूत कृतियों में इस प्रकार के उदाहरण अप्राप्त हैं। सामासिक और अन्य रूपों में पंच और पाँच रूप प्राप्त हैं-

पंच - पंचभूत १३-९ |मन|

पाँच - पाँचवें ३८-२० |सब|

छः - इसके मूल रूप हैं - ~छे।

छे ३८-२७ |हि.ना|, ३६-१६ |फूल|

संयुक्त संख्याओं में 'छ' और 'छ्या' रूप मिल सकते हैं। जैसे - छत्तीस, छ्यालीस आदि। विवेच्य कृतियों में ऐसे उदाहरण अप्राप्य हैं। सामासिक और अन्य रूपों में 'छठ' रूप मिलता है।

छठा १६-८ |मन|

सात - इसका मूल रूप एक ही है -

सात ४३-२ |कु|, ८९-१२ |फूल|

संयुक्त संख्याओं में सात रूप मिलता है। जैसा - सातरा १३९-३ |सै||। अन्य संयुक्त संख्यावाचक शब्दों में सत्त - सत, सैं, रूप मिल सकते हैं। जैसे - सत्ताईस, सतासी, सैंतालीस आदि। लेकिन ये उदाहरण आधारभूत कृतियों से प्राप्त नहीं हैं। सामासिक और अन्य रूपों में 'सात' मिलता है-

सातों ३८-१४ |सै|, १४-२ |मन| सातवें १६-७ |मन|

आठ - इस संख्या वाचक शब्द का प्रयोग आधारभूत ग्रन्थों में नहीं हुआ है। लेकिन इस सम्बन्ध में डा.श्रीराम शर्मा जी का कथन यहाँ असमीचीन न होगा -

"आठ-आट = ख.बो. आठ<सं. अष्ट

उदा० - एक राजा के आट बेटे दो बेटियां थे (बोलचाल)।"[५] इसके संयुक्त संख्यावाचक शब्दों तथा सामासिक शब्दों का प्रयोग भी आधारभूत ग्रन्थों में अप्राप्य हैं। फिर भी एक उदाहरण है-

अठा - अठारा १९५-१६ |कु|

नौ - इसका मूल रूप है- नौ १२३-५ |सब|, ३९-७ |कु|, २४-१ |फूल|

संयुक्त संख्याओं में नौ रूप मिलता है। यह एक विशेष प्रयोग है। जैसे-

नवद नौ (निन्यानवे) १५-११ |कु| (नब्बे के लिए दक्खिनी हिन्दी में 'नवद' शब्द का प्रयुक्त है।)

लेकिन साधारणतः उन उपसर्ग लगाकर ही संयुक्त संख्याएँ बनती हैं। विवेच्य कृतियों में इस प्रकार के उदाहरणों का प्रयोग नहीं मिलता है। फिर भी डा.श्रीराम शर्मा जी का कथन है-

वन्नीस - द. वन्नीस, ख.बो. उन्नीस<एकोनविंशति।

उदा०- एक लड़की वन्नीस बरस की हुई(बोलचाल)।"[६]

सामासिक और अन्य रूपों में 'नव', 'नौ' रूप मिलते हैं-

नव-   नवरतन ३६-२१ |सै |

नौ-   नौबहार ६९-२ |सै | नौ लाख २६-११ |सै |

नौ आसमाँ ४-६ |कु |

दस - इसका मूल रूप है-   दस ५९-२३ |हि.ना |

ग्यारह से लेकर अठारह तक की संयुक्त संख्याओं में रह, रा, दह, दा रूप मिलते हैं-

-रह : अग्यारह ३१-३२ |फूल |, बारह १३९-२ |सब |, तेरह ३८-२९ |हि.ना |

-रा : ~बारा १६५-१३ |सै |, ~सातरा १३९-३ |सै |, ~अठारा १९५-१८ |कु |

-दह : ~चौदह ४२-१० |सै |

-दा : ~चौदा १४-३ |कु |

इनके अलावा 'लह' या 'ला' रूप भी मिलते हैं- सोलह, सोला। किन्तु आधारभूत कृतियों में इनके उदाहरण अप्राप्य हैं।

ग्यारह से लेकर उन्नीस तक और अन्य संयुक्त संख्यावाचक विशेषणों का रूप खड़ी बोली से मिलता है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं*(जो संख्यावाचक शब्द इस सूची में स्थान नहीं पा सके हैं, उनके संदर्भ में सादृश्यमूलक कल्पना की जा सकती है या अन्य दक्खिनी साहित्यिक कृतियों में ढूंढे जा सकते हैं। विवेच्य कृतियों में उदाहरण न मिलने के कारण इस सूची को इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है।)

बारह ९६-२१ |कु |, १३९-२ |सब |,   ~बारा ५४-३ |हि.ना |

तेरह ३८-२९ |हि.ना |, १४२-२१ |सै |

चौदह ४२-१० |सै |,   ~चौदा १४-३ |कु |

~सातरा १३९-२ |सै |,   ~अठारा १९५-१८ |कु |

बीस ३१-३२ |फूल |,पचीस २६-३ |कु |

तीस २१९-१५ |सै |, ४१-६२ |फूल | पैंतीस ४०-५ |हि.ना |

चालीस ११९-२४ |फूल |, २८-६ |सै | पचास ६१-४ |सब |

पैंसठ ४०-४ ।हि.ना।　　　　　सत्तर १००-२२ ।सब।

पचहत्तर ४५-२२ ।फूल।　　　　　नवद नौ १५-१ ।कु।

सौ २७-३ ।सब।, १५५-१८ ।कु।, ९७-२१ ।फूल।

एक सौ सत्तर ६९-१५ ।सै।　　　　　तीन सौ साठ ४६-१४ ।सब।

हज़ार २१३-१७ ।सै।, ८३-१५ ।सब।　　~हज़ारां ८८-३४ ।फूल।

लाख ३९-१ ।हि.ना।, ५३-१४ ।सब।　　~लाक ३९-१९ ।सै।, २५-१९ ।फूल।

~लाखां ८८-३४ ।फूल। ~लाखाँ ४१-१२ ।फूल।

लख २-१० ।सै।, तीन लाख ५९-२४ ।हि.ना।, पाँच लाख १०८-१ ।सब।

करोड़ ६५-७ ।सै। ~करुड़ ७०-१६ ।कु।

ख) अपूर्णांकबोधक गणनासूचक विशेषण

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में इनका प्रयोग बहुत सीमित मात्रा में हुआ है। विवेच्य कृतियों के आधार पर प्राप्त उदाहरण हैं-

१/४ पाव : पाव सेर ४८-९ ।हि.ना।

१/२ आदा : आदा(आधा) ४९-१० ।हि.ना।

१.१/२ देढ़ : देढ़(डेढ़) २८-२७ ।हि.ना।

ग) क्रमवाचक संख्या विशेषण

क्रमवाचक संख्या विशेषणों में दो प्रकार की शब्दावली मिलती है* (इनमें प्रथम चार रूप खड़ी बोली के रूपांतर हैं तो शेष में वाँ या आ प्रत्यय लगाकर क्रम संख्यावाचक शब्द सम्पन्न करते हैं। यह समस्त व्यवस्था खड़ी बोली की व्यवस्था से अभिन्न है, जो भी अन्तर मिलता है वह ध्वनि परिवर्तनगत है।) -

१) हिन्दी के क्रमवाचक विशेषण, २) अरबी-फ़ारसी क्रमवाचक विशेषण।

हिन्दी के क्रमवाची विशेषण

पहला = पैले १७-२२ ।कु।

दूसरा = दूसरे १३८-१८ ।सब।, दुसरा २०-४ ।सब।

दूजा ९-१ ।मन।, ७८-३४ ।फूल।, दूजे ८५-२८ ।फूल।

दूजी १०८-३१ ।फूल।

तीसरा = तिसरे १३८-१९ ।सब।, तिसरा ८६-१ ।कु।

चौथा = चतुर्थ ९८-१४ ।हि.ना।

चौथे १४०-३ ।सब।, १९-२४ ।कु।

पाँचवां = पाँचवें ३८-२० ।सब।

छठवां = छठां १६-८ ।मन।

चौदह = चौदवाँ १२-३ ।सै।

अरबी-फ़ारसी क्रमवाची विशेषण

पहला = अव्वल ५-५ ।सै।, १७-१ ।फूल।, ६-३ ।सब।

~अवल १४-१९ ।कु।, ४५-४३ ।फूल।

दूसरा = दूअम ६-३ ।सब।, ~दोयं १६-१४ ।मन।

~दुय्यम १७१-८ ।सब।

तीसरा = सोयं १६-१३ ।मन।, ~सुय्यम १७१-८ ।सब।

चौथा = चाहरूम १६-१० ।मन।

पाँचवां = पंजम १६-९ ।मन।

चालीसवां = चहल दिन ९०-१८ ।सै।

घ) समुदायवाचक संख्या विशेषण

संख्यावाची शब्दों के अन्त में 'ओं' प्रत्यय जुड़कर समुदायवाची विशेषण शब्द बनते हैं। कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं-

दोनो २४-३१ ।फूल।

दोनों ५८-१७ ।हि.ना।, ४४-९ ।कु।, ४९-३ ।सब।, ४३-३९ ।फूल।

चारो ४७-२३ |फूल|, चारों ७१-७ |सै|

सातों ३८-१४ |सै|, १४-२ |मन|

६.२.६.१५) अनिश्चयवाचक विशेषण :

कुछ शब्द अनिश्चयवाचक के अर्थ में अथवा परिमाणवाचक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जो संख्या के विभिन्न अन्तरों के ध्योतक हैं। इस पर अव्यय विशेषण में भी विचार किया गया है। कुछ उदाहरण हैं-

अदिक(अधिक) ५९-२५ |फूल| अधिक १६-२ |कु|

अनंत ४१-१७ |कु| चन्द ४६-५ |सब|

तमाम १-१ |सब| थोडा ४६-११ |हि.ना|

बहुत ६१-१३ |हि.ना| भोत ४६-३० |फूल|, ४-१३ |कु|

सब ३४-१८ |सै|, ३२-३३ |फूल|

सारे ६-४ |मन|, ३८-२८ |फूल|

सगल १२-५ |सै|

६.२.७) अव्यय :

जिन शब्दों में लिंग, वचन, विभक्ति आदि के प्रभाव से किसी प्रकार का विकार अथवा परिवर्तन न हो वे अव्यय कहलाते हैं। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में हिन्दी की विविध बोलियों से आगत अव्यय रूपों के अतिरिक्त देशी भाषाओं में पंजाबी, मराठी, गुजराती तथा विदेशी भाषाओं में अरबी-फ़ारसी के विविध अव्यय रूप मिलते हैं। राजस्थानी और पश्चिमी हिन्दी में प्रयुक्त कुछ अव्ययों में 'और' के विशेष रूप 'होर', 'हौर' उल्लेखनीय है। इस संबंध में सर जार्ज ग्रियर्सन के कथन का उल्लेख यहाँ असमीचीन न होगा। उनका कथन है- "पश्चिमी हिन्दी और राजस्थानी की बलियों में 'और' की जगह 'हौर' का प्रचलन है।"[७] विवेच्य कृतियों में प्रयुक्त विभिन्न स्रोतीय अव्यय-क्रिया विशेषण वाची, संबंध सूचक, समूच्चय बोधक, अवधारण सूचक का विवरण इस प्रकार है।

६.२.७.१) **क्रियाविशेषण वाची**

६.२.७.१.१) स्थानवाचक क्रियाविशेषण :

स्थानवाचक क्रिया विशेषण के अन्तर्गत हिन्दी की बोलियों से आगत, पंजाबी से आगत और अरबी-फ़ारसी के अव्ययों को देखा जा सकता है।

हिन्दी की बोलियों से आगत

जहाँ २३-१९ ।सै।, २५-१५ ।कु।, १-१८ ।सब।, १३७-२४ ।हि.ना।

~जाँ ८५-३ ।सै।, १३-१५ ।कु।, ३३-१७ ।सब।, ~जधाँ १४४-१५ ।सै।

यहाँ २६-१७ ।सै।, १७-१५ ।कु।, ८-२ ।मन।, २-३ ।सब।, ९७-२४ ।हि.ना।

~याँ ८०-२२ ।सै।, १२-५ ।कु।, ६-७ ।मन।, ३-१ ।सब।

वहाँ ७०-१७ ।सै।, १२-१० ।कु।, १०३-१८ ।सब।, ९४-२६ ।हि.ना।, ५४-१६ ।फूल।

वहां ६४-२२ ।फूल। ~व्हाँ १४-१२ ।कु।

~वाँ ५५-११ ।सै।, १२-१२ ।कु।, ३-१७ ।सब।,

~वां २८-१७ ।मन।, २६-२७ ।फूल।

वहीं ४७-४ ।सै।, ~वईं ४०-३ ।सै।

कहाँ १०४-२० ।सै।, ७-१ ।मन।, १४४-७ ।सब।, ~काँ १०४-१९ ।सै।

कहीं १२९-१५ ।कु।, २४-१५ ।मन।, ~कईं २८-४ ।कु।

आगे १२७-२५ ।सै।, १४४-६ ।सब। आँगे ३८-२१ ।सै।, ५२-२ ।कु।

~अंगे ७-११ ।सब।, १४६-८ ।कु।, ~अँगे ३६-१३ ।सै।

पीछे १०-१० ।मन।

उपर ३५-२२ ।सै।, ११-२ ।कु।, ऊपर ३१-५० ।फूल।,

ऊंचा ३१-१५ ।फूल।

भीतर १०७-२ ।कु।, ५१-१४ ।सब।, ~भितर ७७-४ ।सै।, ९३-१८ ।कु।

भार १६-८ ।सै।, ५१-१५ ।सब।

पास १८-१ ।सै।, ६०-२२ ।कु।, ७४-१० ।सब।, ६२-१५ ।फूल।

कन १८८-१२ |सै|, ५१-७ |कु|, ६९-६ |फूल|,

~कने २-१४ |सै|, १४४-५ |सब|

~कने ५-५ |मन|, ३१-३५ |फूल|, कना १२७-५ |सै|

इधर १७२-४ |सब| उधर १७२-४ |सब|

किधर ३५-७ |सब| जिधर ३५-७ |सब|

जां तां (जहाँ-तहाँ) ६७-३० |फूल|

पंजाबी से आगत पिछें ९२-१४ |सै|, ~पिछे ९१-३ |सै|

अरबी-फ़ारसी से आगत

नज़दीक ३६-९ |सै|, १३५-९ |सब|, ३-११ |कु|, १११-११ |फूल|

नज़ीक १८-८ |कु|, नज़िक २९-५ |सै|, ३०-८ |मन|

६.२.७.१.२) कालवाचक क्रियाविशेषण

हिन्दी की बोलियों से आगत

आज ३५-२ |कु|, ९८-६ |सब|, ~अझू १२-८ |कु|, ~अझूँ ६१-३ |सै|

~अजूँ ५०-४ |कु|, ~आजूँ ३३-७ |सब|, ~अजहूँ १२२-२४ |सै|

अब ८९-११ |सै|, १०८-२ |हि.ना|

अभी १०८-१५ |हि.ना| ~अधी ४६-१७ |सै|

तब ११६-१८ |सै|, १३-२१ |हि.ना| जब ३०-९ |कु|, ६४-२७ |फूल|

अचानक ८२-९ |सै| कल १५-२ |मन|

अरबी-फ़ारसी से आगत

दायम ३-१५ |कु|, ६६-२८ |फूल| रोज़ ६९-६ |फूल|, १०८-२१ |हि.ना|

जम(सदा) ३८-६ |कु|

हमेशा ५-१५ ।मन।, १३७-११ ।सब।, १७८-२ ।हि.ना।, ३३-१४ ।फूल।

६.२.७.१.३) <u>अवधिसूचक क्रियाविशेषण</u>

<u>हिन्दी की बोलियों से आगत</u>

(सं०) नित्य १३३-२३ ।हि.ना।, ~नित १३५-२२ ।सै।, १०-२३ ।कु।
सदा ५३-२ ।सै।, ३६-५ ।कु।
तलक १३०-१७ ।सै।, ३४-२४ ।कु।, १०९-१२ ।सब।

<u>अरबी-फ़ारसी से आगत</u>

अव्वल ६४-५ ।फूल।, ५-५ ।सै।, ~अवल १०६-१९ ।सै।
आख़िर ६३-११ ।कु।, १२-५ ।सब।
मुदाम ६-७ ।कु।

६.२.७.१.४) <u>पुन:वाचक क्रियाविशेषण</u>

यकायक ३४-३७ ।फूल।
हररोज़ ४३-७ ।मन।, ११५-१६ ।सब।
हरशब ४३-७ ।मन।
हरबार ४९-१९ ।कु।

६.२.७.१.५) <u>परिमाणवाचक</u>

<u>हिन्दी और उसका बोलियों से आगत</u>

सगल १२-५ ।सै।
सरासर ३३-१९ ।सै।, १६४-२२ ।कु।
बहुत ७०-९ ।फूल।, १०३-१ ।सब।, ४१-११ ।सै।
~बहोत ५०-८ ।मन।, ~भौत ६५-१५ ।कु।, १०७-२३ ।फूल।
~भोत २७-१७ ।सै।, २०-१३ ।मन।, ४६-३० ।फूल।
अधिक १६-२ ।कु।, ~अदिक ५९-२५ ।फूल।

कुछ १६-६ |सै|, १७-३ |कु|, २-१७ |सब|, ~कूच १६-१० |सै|

~कुच २५-१६ |कु|, ६३-१ |फूल|, ४-१२ |सब|

इता १३-४ |सब|, ~एता १२-२४ |सब|

<u>अरबी-फ़ारसी से आगत</u>

खूब २६-१० |कु|, १४-२८ |हि.ना|

सब ३२-३३ |फूल|, ७-१० |कु|, ८४-९ |सै|, १-८ |सब|

तमाम ३६-१८ |सै|, ४६-२ |कु|, १-१ |सब|

चन्द ४६-५ |सब| कई ३९-३ |सै|, ६०-८ |कु|, ४५-२७ |फूल|

ज़रा ४८-९ |सै|, १२३-२० |कु|, ९-९ |मन| ज़र्रा १६-५ |कु|

थोड़े २७-१९ |कु|, सारे ६-४ |मन| सो ७३-१५ |कु|

६.२.७.१.६) **<u>रीतिवाचक क्रियाविशेषण</u> :**

ज्यूँ १०-६ |कु|, २४-१० |सब| ज्यूं ५७-२५ |फूल|

जू ५४-२६ |फूल| जूँ १९-९ |कु|

यूं ५५-७ |फूल| यूँ ६-८ |सै|, २१-१४ |कु|

त्यूँ ७-१८ |सब|

एकाएक ९४-१२ |सै|, १९-३ |कु|, २९-११ |सब|

यकायक १८-२१ |कु|, ४०-९ |मन|, ३४-३७ |फूल|

भी १००-१० |कु| ~बी ४६-२४ |फूल|, ९६-२ |कु|

सो १९-७ मन, २६-१ |सब| सूं ३०-३० |फूल|

जो ३०-३९ |फूल|

क्यों ६२-१ |फूल|, १००-२२ |हि.ना|, ~कें ९२-१ |हि.ना|

जल्दी १०३-१७ |हि.ना| हल्लू १५-१५ |हि.ना|

६.२.७.१.६) निषेधवाचक, नकारार्थक, स्वीकारात्मक अव्यय

शायद ९२-२० |हि.ना| बेशक ८-२० |सै|, ५६-१८ |कु|

नहीं ७१-२० |फूल|, ८-९ |कु|, १४४-११ |सब|

~नईं ५६-१५ |सै|, ८-६ |कु|, १०३-१ |सब|

न ७१-१६ |फूल|, ९६-१ |कु|, ५-२ |मन|

~ना ९३-१३ |कु|, १०-३ |मन|, २-१६ |सब|

मत १०५-२१ |कु|, १९-१ |मन|, १४४-१ |सब|

मराठी से आगत

नको ५७-५ |सै|, ४०-५४ |फूल|, ९-४ |कु|, १२-१५ |सब|, ६-५ |मन|

विरोध दर्शक- अरबी-फ़ारसी से आगत

वले ४२-१५ |सै|, १४९-५ |कु|, १८-९ |मन|, १०३-१ |सब|

वलेकिन ३२-१० |सै| बल्कि १२२-२ |सै|, ~बल्के २७-१० |सब|

लेकिन १७१-१ |सै|, १५१-१७ |कु| पन ५-१२ |सब|

अलबत्ता ३३-४ |कु| हरगिज़ ६९-२ |फूल|

६.२.७.१.७) संकेतवाचक अव्यय - अरबी-फ़ारसी से आगत

अगर ६९-२५ |फूल|, ८-५ |कु|, १०-५ |मन|, ८-१ |सै|

~गर ७५-१६ |कु|, २-६ |सब|, ~अगरचे ३०-५ |सै|, ६९-१७ |फूल|

~गरचे १५७-३ |सै| यदी १४०-१५ |कु|

६.२.७.१.८) संयोजक अव्यय - अरबी-फ़ारसी से आगत

व ६४-३ |फूल|, १३-२० |कु|, १०३-१७ |सब|

६.२.७.१.९) **संबंधसूचक अव्यय**

हिन्दी और उसकी बोलियों से आगत

बिना ८३-१२ |कु|

~बिन ६-२२ |कु|, १९-४ |मन| सारका १९-७ |सै|

सरीक १३३-९ |हि.ना|

संग १०-१० |कु|, ३८-१३ |मन|, ७५-५ |सब|

~सँगात ३९-२० |सै|, १२-२४ |कु|, १६२-१५ |सब|

तईं ५-१२ |कु|, ३०-१ |मन|, ~ताईं २०-२१ |सै|, ८१-४ |कु|

अरबी-फ़ारसी से आगत

दुंबाल २६-११ |सब|, २२-१९ |कु|, ~दुंबल १४३-२४ |कु|, ~दुंबाला ४७-४ |सब|

बगैर १०१-११ |कु| ख़ातिर ८८-४ |सै|, ७०-२ |कु|, १३९-११ |सब|

मिसाल ८३-८ |सै| दुरूनी १२८-८ |सै| बज़ज़(बिना) २३-४ |मन|

६.२.७.१.१०) **समुच्चय बोधक अव्यय**

और १६-१८ |सै|, १-१५ |सब|

~होर ६५-१९ |कु|, ५६-१५ |फूल|, ~हौर ६३-३० |फूल|

पर २१-२२ |सब|

मगर ६६-३० |फूल|, ४८-१० |कु|, १५६-२१ |हि.ना|

या ८-२१ |सै| ताकि २७-१८ |सै| परन्तु १३९-१० |हि.ना|

जो १६३-६ |हि.ना|, ३०-३९ |फूल|

सो २३-२१ |सब|, ५३-१८ |हि.ना|

तो ७-१४ |सै|, ९०-१८ |हि.ना|, ६५-३ |फूल|, २१-१ |सब|

पश्चिमी हिन्दी से आगत

हौर १५८-२ ।सै।, ३-९ ।मन।, १०१-१ ।फूल।

होर १-८ ।कु।, २१-१७ ।सब।

६.२.७.१.११) विस्मयबोधक अव्यय

अरे ! ११-६ ।मन।, रे ! १०-१५ ।मन। ओ ! ४५-४ ।सै।

अहो ! ४८-२७ ।हि.ना। अहहा ! १५०-१ ।हि.ना।

अरे रे रे रे ! २१४-२२ ।हि.ना।

ऐ ! ३८-१३ ।मन।, ९४-१० ।सब।, १०२-८ ।सैन, १०-२१ ।कु।

के ए ! ३७-४० ।फूल।

६.२.७.१.१२) अवधारणवाचक अव्यय

यह अवधारणवाचक अव्यय साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रधानतः संज्ञा, सर्वनाम और विशेषणों के साथ हिन्दी ही के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह मराठी से आगत अव्यय है। इसके निम्न रूपान्तर प्राप्त होते हैं- ईच, ~इच, ~च।

उदा०

अवलीच ७३-१३ ।कु। अबीच ११९-४ ।हि.ना।

यहींच १६५-३ ।हि.ना। तुई च ७९-१३ ।सब।

वो ईच ५९-१ ।सब। सब हिच ४६-७ ।कु।

तेरी च १५२-१ ।सै। उसके च १२-२४ ।कु।

तू च १६८-५ ।सब। उतनाच ११२-१९ ।सब।

अपनाच १९०-६ ।सै। यूंच ७८-१८ ।फूल।

उपरोक्त अव्ययों का प्रयोग सर्वाधिक मिलता है उनके साथ-साथ हिन्दी और उसकी बोलियों से आगत इस वर्ग के अन्य अव्यय हैं-

ने (=ही), ही, भी~बी।

अब ने(ही) उनों नगर प्रवेश किये होंगे। १९५-११ |हि.ना|

बहुत ही....... ४४-२२ |सै|

जु कुछ हुवे भी हिम्मत कूं न सटना ७३-३१ |फूल|

करूं ज्यूं याद में वो बी करे याद ४३-२८ |फूल|

किया है तु हीं कर करीमा करम ७-११ |कु|

इस विवेचन के अन्तर्गत प्रस्तुत अध्याय में जो विश्लेषण किया गया है, उसके आधार पर साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की भाषागत पदरूप सम्बंधी विशेषताएँ कुछ उभरती हैं। सबसे पहले उल्लेखनीय विशेषता यह है कि क्रियेतर पदरूप सामान्यत: खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि हिन्दी की बोलियों के पदरूपों से प्रभावित हैं। किन्तु विशेष झुकाव खड़ी बोली की ओर है।

जहाँ तक संज्ञा का संबंध है, संज्ञा के मूल रूप, खड़ी बोली के मूल रूपों की प्रकृति से अधिक साम्य रखते हैं। तिर्यक रूपों में साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी कुछ अपनी विशेषताओं के साथ अग्रसर है। हिन्दी की वचन और कारक व्यवस्था में एकरूपता लाने की प्रवृत्ति साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में बलपाती दिखाई देती है। बहुवचन रूपों को निष्पन्न करने में 'आँ' प्रत्यय का बहुल प्रयोग हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दी बहुवचन प्रत्ययों का प्रयोग मंद दिखाई देता है। प्रयोग की दृष्टि से भी यह सिद्ध होता है। बहुवचन तिर्यक रूपों में (-ओं) के स्थान पर (-आँ) प्रत्यय का प्रयोग अधिक मिलता है। फिर भी बहुवचन व्यवस्था हिन्दी से तुल्य है। अरबी-फ़ारसी की व्यवस्था में तत्समता ही पाई जाती है।

लिंग व्यवस्था संज्ञा रूपों के साथ जो रूप परिवर्तन लाती है, वह हिन्दी की व्यवस्था से तुल्य है। लेकिन लिंग निर्देशन का क्षेत्र हिन्दी के समान ही जटिल अवश्य है। कुछ ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिनके प्राकृतिक लिंग व्यवस्था में भी विपर्यय है।

संरचनात्मक प्रत्ययों की व्यवस्था हिन्दी व्यवस्था के समान ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि कृदंत और तद्धित प्रत्यय विभाजित नहीं हो सकते। अनेक प्रत्यय ऐसे भी हैं जो तद्धित भी हैं और कृदंत भी। अरबी, फ़ारसी प्रत्ययों का आर्य भाषा शब्दों के साथ प्रयोग

भी उल्लेखनीय है, जो दो भाषाओं के बीच अभिसरण की प्रकृति को सूचित करता है। उपसर्गीय व्यवस्था के संबंध में वही बात कही जा सकती है, जो संरचनात्मक प्रत्ययों के सम्बन्ध में कही गयी है। जहाँ तक शब्द संरचना विधान है, उसमें संस्कृत तत्सम और तद्भव उपसर्गों की बहुलता है, जो हिन्दी की प्रकृति के नज़दीक साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी को ले जाती है। कारक प्रत्ययों में हिन्दी की बोलियों का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि व्यवस्थाओं में मिलनेवाले प्रत्ययों के साथ-साथ तेलुगु आदि संपर्क भाषाओं के प्रभाव से भी कुछ परसर्गीय रूप घटित हैं।

सार्वनामिक व्यवस्था में बहुलता दक्खिनी हिन्दी विशेषताओं में उल्लेखनीय है। खासकर उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष में यह विशेष दर्शनीय है। अन्य पुरुष में खड़ी बोली की विविध व्यवस्था द्विविध व्यवस्था में ढली है(वे, उन्हे, उन -- वे, उन(:) ये, इन्हे, इन -- ये इन)। इसका प्रभाव संबंधवाची, अनिश्चयवाची, प्रश्नवाची आदि सर्वनामों में भी मिलता है। ध्वनि परिवर्तन के स्तर पर अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति सार्वनामिक व्यवस्था में भी दिखाई देती है।

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में विशेषणों का प्रयोग नियमित और मर्यादित है। आकारान्त सामान्य विशेषण हिन्दी व्यवस्था को अपनाकर चलते हैं। सार्वनामिक विशेषण व्यवस्था भी हिन्दी व्यवस्था से तुल्य है। संख्यावाचक विशेषण अपनी आन्तरिक ध्वनिगत परिवर्तनों को लेकर अवश्य चलते हैं, लेकिन व्यवस्था हिन्दी की ही है। जन व्यवहार में प्रचलित रूप जो द्रविड़ीय प्रभाव से युक्त है, साहित्यिक प्रवेश नहीं कर पाये हैं।*(जन व्यवहार में बीस के बाद गिनती इस प्रकार चलती है। बीस पर एक(२१), बीस पर दो (२२), बीस पर तीन(२३), बीस पर चार(२४), बीस पर पाँच(२५), बीस पर छे(२६), बीस पर सात(२७), बीस पर आठ(२८), बीस पर नौ(२९), बीस पर तीस(३०)। इस प्रकार अन्य पूर्णांकबोधक संख्याएँ हैं।)

क्रमवाची, आवृत्तवाची संख्या विशेषण हिन्दी की व्यवस्था में ही ढले हैं।

अव्यय भी स्वाभाविक दक्खिनीगत ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को लेकर प्रयुक्त है। अरबी, फ़ारसी के साथ-साथ मराठी के अव्यय भी इस व्यवस्था में स्थान पा सके हैं। समस्त रूप में यह हिन्दी की व्यवस्था कही जा सकती है।

६.३) शब्द-भण्डार

साहित्यिक भाषा में शब्द प्रयोग का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहता है। शब्द प्रयोग अपनी अर्थवत्ता के साथ किसी भी साहित्यिक भाषा का निर्णायक अंश होता है। शब्दों के चयन और नियोजन से ही साहित्यिक कृति का आकर्षक रूप निखरता है। वही भाषा समृद्ध होती है जो दूसरी भाषा के शब्दों को आत्मसात कर आवश्यकतानुसार उनको अर्थ प्रदान करने की क्षमता रखती है। अगर भाषा अन्य भाषा स्त्रोतों से शब्द ग्रहण तेजी से करती है तो तेजी से ही समृद्ध और विकसित होती है। इस प्रकार भाषा अपने अस्तित्व को बनाए रखने अथवा सजीव रहने के लिए अन्य भाषा शब्दों को अपनाकर एक विशिष्ट रूप धारण करती है। जो भाषा अपनी निजी शब्दों की लक्ष्मण रेखा में बंधी रहती है, वह अपनी सजीवता भी खो बैठती है। अनेक स्त्रोतों से आदान-प्रदान के कारण शब्द समूह एक प्रकार से खिचड़ी ही है। इस संबंध में डॉ.धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि- "शब्द समूह की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है। किसी भी भाषा के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने आदि विशुद्ध रूप में आज तक चली आती है। भाषा के माध्यम की सहायता से दो व्यक्ति अथवा समुदाय अपने विचार एक-दूसरे पर प्रकट करते हैं। अतः भाषा का मिश्रित होना उसका स्वभाव ही समझना चाहिए।"[८] जब भाषा में शब्दों का आदान-प्रदान होता है तब शब्द उनके मूल रूप में स्वीकृत न होकर स्वीकृत भाषा के ध्वन्यात्मक, रूपात्मक और अर्थ सम्बन्धी स्तर पर परिवर्तन अवश्य पाते हैं। अर्थात् अन्य भाषा शब्दों को स्वीकृत करनेवाली भाषा अपनी प्रकृति के अनुसार उनको ढाल लेती है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि उधार लिए गए शब्द भाषा में भिन्न-भिन्न रूपों में अवतरित होते हैं। स्वीकृत भाषा के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिवेश से भी इसका सम्बन्ध रहता है। यह साधारणतः सांस्कृतिक अथवा भाषाई अभिसरण पर निर्भर रहता है।

६.३.१) <u>शब्द भण्डार- एक वर्गीकरण</u> :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की आधारभूत कृतियों के अध्ययन के आधार पर प्राप्त

शब्द-भण्डार का एक वर्गीरण इस प्रकार हो सकता है-

सामान्य शब्द

तत्सम

संस्कृत शब्द सामासिक शब्द

तद्भव

मराठी

हिन्दीत्तर आर्यभाषा गुजराती

साहित्यिक दक्खिनी स्रोत दक्खिनी

हिन्दी शब्द-भण्डार देशी भाषा शब्द

तेलुगु

द्रविड़ भाषा स्रोत

कन्नड़

हिन्दी क्षेत्रीय शब्द

अरबी

विदेशी शब्द

फ़ारसी

६.३.१.१) <u>संस्कृत शब्द</u> :

साधारणत: भारतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य रहता है। भाषा विशेष में इनको दो वर्गों में अवश्य विभाजित किया जा सकता है- तत्सम और तद्भव। तत्सम शब्द वे शब्द हैं जिनका रूप संस्कृत में प्रयुक्त रूपों से तुल्य होता है। भिन्नता केवल कारक प्रत्यय योग में पायी जाती है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत शब्द प्रयोग कुछ जगहों पर संस्कृत मूल शब्दों से कुछ भिन्न स्पष्ट गोचर होते हैं। यह भिन्नता भाषागत ध्वनि भाषा के स्वाभाविक विकास में स्थान पानेवाली विशेषताओं के आधार पर विहित है। चर्चित कृतियों के आधार पर साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्द संपत्ति की एक वर्गीकृत सूची यहाँ

प्रस्तुत है-

६.३.१.१.१) संस्कृत तत्सम शब्द :

अंग १७२-३ ।सब।, ७७-७ ।सै।	अँगुली १३१-४ ।कु।
अंत ४७-७ ।सब।	अंबर ३६-६ ।सै।
अंधकार ७१-७ ।सै।	अचपल ७१-३ ।कु।, ७-९ ।मन।
अखंड १७५-१५ ।सै।	अपार ५-१३ ।कु।
अन्तर १५३-१८ ।सै।	अधिक १०९-६ ।सै।, १६-२ ।कु।
अवतार १०१-१ ।सै।	अमृत ४५-१५ ।मन।, १२९-१८ ।कु।
अरण्य २१७-१ ।हि.ना।	अभीष्ट २६२-२० ।हि.ना।
उपाय २४१-१ ।हि.ना।	कलंक ४०-५ ।कु।
कुंज ५३-१२ ।कु।	गंगा २-४ ।मन।
गगन ६-१३ ।मन।	चंद्रभान ६०-१ ।सै।
दर्शन १५६-१६ ।सै।	धनपती १४-१६ ।मन।
दिवाकर ३७-७ ।मन।	निवारण ५७-२५ ।हि.ना।
भूषण ७०-५ ।हि.ना।	मद १५८-१२ ।सै।
महिमा १२३-२ ।हि.ना।	रंगस्थल १४३-७ ।हि.ना।
वाणी ८७-२० ।हि.ना।	शंख ३९-८ ।मन।
वार्ता १५१-१९ ।हि.ना।	लंघन १२१-२३ ।सब।
वरुण ९०-३ ।हि.ना।	सुदिष्ठान ४५-१८ ।मन।

६.३.१.१.२) तद्भव शब्द :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में संस्कृत के तद्भव शब्दों की संरचना ही प्रधान रूप से उल्लेखनीय है। जैसे विनती > विनुति।[१] इस प्रकार अल्पान्तरों के साथ अनेक संस्कृत तद्भव शब्दों का रूप घटित है। इनकी प्रकृति दर्शिका सूची इस प्रकार है-

अदीक ५२-१८ ।सै।	अमरीत ६२-१६ ।कु।	अमरोत ३८-१० ।कु।
उतम ३७-१८ ।सै।	कनैया २-१० ।मन।	किषन २-१३ ।मन।
चरन १४-१२ ।मन।	चितर १२९-१० ।कु।	जागरत ४४-१३ ।मन।
धरतरी ५९-४ ।सै।	पन्त १-१८ ।सै।	परिमित १०५-१४ ।हि.ना।
पिरथवी ४३-१३ ।मन।	पिरित १०८-१ ।सै।	पुत्तर १५८-२८ ।हि.ना।
मिरग ५-९ ।कु।	मित्तर २४८-२१ ।हि.ना।	यत्तन १८७-१३ ।हि.ना।
विषन(विष्णु) ७८-१८ ।हि.ना।	सेनेह ६१-७ ।कु।	

उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर तद्भवीकरण की दक्खिनीगत विशेषताओं को भी देखा जा सकता है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की सामान्य ध्वनिगत परिवर्तनों पर तो पहले ही विचार किया जा चुका है। उनमें उपर्युक्त उदाहरणों के आधार पर निम्नलिखित प्रवृत्तियों को दक्खिनी हिन्दी की विशेषताओं में रेखांकित किया जा सकता है। जैसे-

अल्पप्राणीकरण : ध > द - अदीक ५२-१८ ।सै।

दंत्यीकरण : ण > न - किषन ३-१ ।मन।
ष > श - दिश्ट १३-७ ।कु।

द्वित्वीकरण : पुत्र > पुत्तर १५८-२८ ।हि.ना।
पात्र > पात्तर १०-३ ।हि.ना।

इनमें से प्रथम द्रविड़ भाषाओं की प्रवृत्ति से प्रभावित माना जा सकता है। खासकर तेलुगु के संपर्कगत प्रभाव द्रष्टव्य है।

६.३.१.१.३) सामासिक शब्द : दो या दो से अधिक शब्दों के योग से बने बृहत्तर शब्द को समास कहते हैं। सामासिक शब्दों के मध्य कोई संयोजक या विभाजक शब्द नहीं रहता है। जहाँ संस्कृत छाया के दर्शन होते हैं वहाँ शब्द के स्थान पर लम्बे-लम्बे सामासिक विधान साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्राप्त है। इस तरह के प्रयोग में कुछ संज्ञा पदबन्ध तथा कुछ विशेषण पदबन्ध सम्मिलित हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है-

कंठमाल २१२-९ ।सै।

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह १९-२ ।हि.ना।

गुनवन्ता गुन निधान १५३-६ ।कु।

चंचल गुनवन्ती १४९-१३ ।कु।

तन मन सकल धन १०-१३ ।मन।

ध्यान चतर सुघड़ २३-१४ ।सब।

राजाधिराज ३५-१ ।कु।

संग्राम धन १९२-५ ।कु।

भोग संग्राम २१२-११ ।सै।

योगीश्वर-वर-प्रसाद-विशेष २०८-१ ।हि.ना।

भुजबल १४८-१५ ।कु।

रोमावली १७२-५ ।कु।

धन-कनक-वस्तु-वाहन-गज-उष्ट्र-रथ-तुरग-छत्र १७९-२६ ।हि.ना।

६.३.१.२) **देशी/देशजभाषा शब्द :**

किसी भी भाषा की सक्षमता या सफलता देशज शब्दों से भी बढ़ती है न कि सिर्फ विदेशी शब्दों से। देशी शब्द भण्डार को भाषा विशेष की शब्द-संपदा की महत्त्वपूर्ण निधि भी कह सकते हैं। दक्खिनी हिन्दी एक अनेक अवयव गठित भाषा होने के कारण इसमें संस्कृत के तत्सम, तद्‌भव तथा विदेशी शब्द ही नहीं बल्कि देशी शब्दों की भी भरमार है। प्राय: देशी शब्द दक्षिण की भाषाओं से आए हैं। यह भी कहा जा सकता है कि ये शब्द अपनी विशिष्टता तथा संपूर्ण शब्द गरिमा को लेकर ही भाषा में प्रविष्ट हुए हैं। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति मिश्रित बनी है, उसी प्रकार दक्खिनी हिन्दी भी मिश्रित बनी है, जिसका योगदान भाषा विकास में स्पष्ट परिलक्षित होता है। आगे इस प्रकार के शब्दों का विवेचन विविध स्रोतगत आधारों पर प्रस्तुत किया गया है।

६.३.१.२.१) मराठी शब्द :

दक्खिनी हिन्दी पर प्रान्तीय भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। दक्खिनी के विकास में हिन्दीतर आर्य भाषाओं का योगदान भी रहा है। इस योगदान में मराठी का स्थान प्रथम गण्य है। दक्खिनी हिन्दी में मराठी के न केवल संज्ञा रूप प्रयुक्त हुए हैं बल्कि क्रिया, अव्यय आदि पदरूप भी है।

अँपड़(मिल या प्राप्त) १११-१० ।सै।

अंट(छीन लेना या कम हो जाना) ५५-२१ ।सै।

एकट(अकेला) ४६-२० ।सै।

ऐलाड़(इस तरफ) १०८-२१ ।सै।

कोल्याँ(कोयला) १३९-१७ |सब| जिउड़ा(शरीर) ९६-४ |सै|

डोंगराँ(पहाड़) ४३-१६ |मन|, ७१-४ |कु| तराट(बजना) ३९-७ |सै|

पाड़ता(गिरता,निकलना) २-८ |सै| पैलाड़(दूसरी तरह) २१-१५ |सब|

थोबड़ा(जबड़ा) ७७-१ |सै| लइ(ज्यादा) १४४-२० |सब|

सगल(सब) १०-९ |सै| सँपड(मिल जाना) १३५-२२ |सब|

सटूँ(फेंक दूँ) ८-२२ |सै| होड़ी(नाव) ८१-२ |सै|

पैले(प्रथम) १७-२२ |कु| (यह शब्द गुजराती में भी है।)

माण्ड़या(अनाज आदि विक्रय स्थल) १२३-१३ |कु|

राजवट(राजा का आचरण,राजनीति) ७७-११ |कु|

६.३.१.२.२) <u>गुजराती शब्द</u> :

हिन्दीतर आर्यभाषाओं में प्रमुखतः मराठी और गुजराती से कुछ शब्दों का मूल रूप में तथा कुछ शब्दों को अल्पान्तर ध्वनि परिवर्तनों के साथ दक्खिनी ने आत्मसात की है। विवेच्य कृतियों के आधार पर दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त गुजराती शब्द इस प्रकार है। इस शब्दों की सूची डॉ.श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास[१०] में दी है जो इस प्रकार है-

अंझु(अंझुर < अंजु) १४१-१० |सै|, १५८-२२ |सब|

चाड़ी १०२-९ |सब| (चुगली के अर्थ में यह शब्द मराठी, कन्नड़ और तेलुगु में भी प्रयुक्त है)

पैले १७-२२ |कु| (प्रथम)

६.३.१.२.३) <u>दक्खिनी शब्द</u> :

'दक्खिनी शब्द' हम उन शब्दों को कहते हैं जो सामान्यतः खड़ी बोली में प्रचलित है। लेकिन खड़ी बोली के व्यवहृत रूप में अन्तर होता है। साहित्यिक दक्खिनी में प्रयुक्त शब्दों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि जो शब्द खड़ी बोली से दक्खिनी में आए हैं उनमें बहु आयामीय परिवर्तनों पर यथास्थान विचार किया गया है(ध्वनि

परिवर्तन की दिशाएँ)। यहाँ साहित्यिक दक्खिनी में प्रयुक्त शब्द और कोष्टक में उनका हिन्दी में प्रचलित रूप यहाँ दिया गया है। ये शब्द सामान्य व्यवहृत उच्चरित रूप के निकट हैं और इनमें दक्षिणी छाप अवश्य मिल जाती है। इस वर्ग कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

अंधारा(अंधेरा) १५-१८ ।कु।	अन्नार(अनार) १५३-२२ ।कु।, ११३-१९ ।सै।
उचाया(उठाया) १०२-११ ।सब।	ग़लबला(गड़बड़) ४-७ ।सब।
चचानी(चाची) १३९-४ ।सै।	चौदा(चौदह) १४-३ ।कु।
जाई(जगह) १६३-७ ।हि.ना।	न्हाट(भागना) १९७-२ ।सै।
न्हास(भाग) ९४-२२ ।कु।	पिरत(प्रीती) ४७-७ ।सब।
भान(बहन) ९८-७ ।कु।	भाता(लुभाता) १०१-१३ ।कु।
कने(पास) ५-५ ।मन।, २-१४ ।सै।	केरा(के लिए) ४९-१ ।सै।
केरे(के पास) २०-२० ।कु।	कें(क्यों) ३६-१० ।हि.ना।
जाँ(जहाँ) १३-१५ ।कु।	नको(नहीं) ९-४ ।कु।, ६-५ ।मन।
नईं(नहीं) ७-५ ।कु।, १-४ ।मन।	भोत(अधिक) ४-१३ ।कु।, २०-१३ ।मन।
वईं(वहीं) ४०-३ ।सै।	वाँ(वहाँ) १०४-२ ।सै।
याँ(यहाँ) १२-५ ।कु।, ६-७ ।मन।	संगात(साथ) ३९-१९ ।सै।
हमन(हम) ३-७ ।कु।, १-४ ।मन।	होर(और) २१-१७ ।सब।
हौर(और) ३-३ ।मन।, ५-७ ।सै।	

६.३.१.२.४) <u>तेलुगु शब्द</u> :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का विकास दक्षिण भारत खासकर आन्ध्र, महाराष्ट्र, कर्नाटक प्रान्तों में होने के कारण दक्षिण में प्रयुक्त द्रविड़ भाषा शब्दों का प्रयोग होना स्वाभाविक ही है। विवेच्य कृतियों में प्रयुक्त तेलुगु शब्दों की सूची इस प्रकार है, जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं वे बहुप्रचलित शब्द ही हैं। डॉ.श्रीराम शर्मा ने कुछ तेलुगु शब्दों की सूची दी है जो हैदराबाद की दक्खिनी में प्रयुक्त होते हैं; जैसे-

एट्टी(बेगार), कुप्पा(ढेर), गंपा(टोकरा), डोप्पा(टोपी), दोब्बा(मोटा),

पोट्टा(लड़का), बंडी(बैलगाड़ी), बोन्ता(गुदड़ी), मन्दम(मोटाई)।[११] इनके साथ जो दक्खिनी साहित्य कृतियों में जो शब्द मिलते हैं वे इस प्रकार हैं-

उपन्यास(भाषण) १७५-२२ ।हि.ना।	कोट(किला) ९७-२ ।कु।
जागा(जगह) ३-२१ ।सब।	ज्यास्त(अधिक) १९-१२ ।सब।
तग़ादे(झगड़ा) १०५-१५ ।सब।	तड़ख़्या(तटवा) ४८-१८ ।सै।

(इन शब्दों को डॉ.श्रीराम शर्मा ने मराठी शब्दों के अन्तर्गत रखा है। लेकिन तेलुगु और अन्य द्राविड़ भाषाओं में इनका प्रयोग मिलता है। इसीलिए इनको तेलुगु शब्दों के अन्तर्गत रखना समीचीन समझा गया है)

ताँटा तंट(टोना) १७२-२० ।सब।	तेडा(अन्तर) ७-११ ।हि.ना।
दोरानाँ(बड़प्पन) १९२-२ ।कु।	नील(पानी) ४४-१८ ।कु।
बाईं (बड़ा कुआं) ७७-९ ।कु।	बाट(मार्ग) ७४-४ ।कु।
बाटसारू(मुसाफिर) १२९-११ ।सै।	भले(श्रेष्ठ,उत्तम) २८-१ ।हि.ना।

६.३.१.२.५) कन्नड़ शब्द :

कन्नड़ भाषा स्त्रोती शब्द बहुत कम मात्रा में मिलते हैं। इन शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में इनका प्रवेश संपर्क के परिणामस्वरूप ही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार के शब्द कवि तुराब की कृति में ही प्राप्त है। इनका बहुल प्रयोग नहीं मिलता है।

खुडी(क० कुडरू) ७७-३ ।सै।	गोदड़ी(क० गुदडी) ३३-१३ ।मन।

तुकड़े(क० तुकडी) ३२-१६ ।मन।, १०३-२ ।सब।

६.३.१.३) हिन्दी क्षेत्रीय शब्द :

इस वर्ग में उन शब्दों को लिया गया है, जो अवधी, ब्रज, राजस्थानी, हरियाणवी आदि हिन्दी क्षेत्रीय स्त्रोतों से आगत हैं। यद्यपि इसमें भी संस्कृत के तद्भव शब्द हैं,

फिर भी उनके तद्भवीकरण की प्रकृति हिन्दी क्षेत्रीय विशेषताओं से युक्त है। इसलिए उन सभी शब्दों को इस वर्ग में संजोया गया है। इस वर्ग में वे शब्द भी है जो हिन्दी क्षेत्रीय देशज माने जाते हैं। इस वर्ग की शब्दावली में कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिनमें अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति है। यथा-

भिकारी (ख > क) ३५-६ |कु| हाती (थ > त) २३-१३ |मन|

इस वर्ग की शब्दावली के कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

अंगूठी १६०-२१ |कु|	आग १०९-२ |सै|	अकड़ना २२-५ |मन|
उजाला ८०-१७ |सब|	उमंग १४८-१ |कु|	ऊखली ७७-११ |सै|
औतार ६८-१९ |सब|	कंगूरे ९४-१७ |कु|	काड़ी ४५-५ |सब|
किवाड़ ९-१४ |सब|	खान १५३-१० |सै|	गाल ५५-८ |सब|
घूँघट १६१-३ |सै|	चंगुल ११०-१० |सै|	छिनाल ७८-९ |कु|
जग २-१ |मन|	जोगी २५-१६ |मन|	झट १५२-७ |हि.ना|
ठहर १६९-२० |हि.ना|	ठाँव २०-२० |कु|	ताड़ी ६४-१४ |सब|
धरती १६६-१ |सै|	धूल ९-७ |सै|	निढाल १६४-२० |सै|
नियारा २१-३ |मन|	पढ १७२-६ |हि.ना|	परधान १४-४ |कु|
परमेस ५३-२ |कु|	फुसला १७१-१ |सब|	बादल १७१-१४ |कु|
बिरह १६७-२२ |कु|	भँवर १०६-९ |कु|, ९-१० |मन|	
भरोसा १४२-१२ |कु|, ३१-१३ |मन|		भलाई १७६-५ |कु|
भुवंग ७१-२ |कु|	मतवाला ४१-३ |कु|	माटी १०-९ |मन|
रतन २७-२३ |कु|	रसोई ४७-८ |मन|	लबालब २९-१८ |सब|
लगन २२-१ |सब|	समन्दर ६२-१६ |कु|	सिंघासन ३३-४ |हि.ना|
सूरज १४-१४ |कु|	सेज १५८-८ |सै|	सोना ११-१ |मन|
हरन १४१-८ |कु|	हाती २३-१३ |मन|	हिरदय १५-१५ |मन|

६.३.१.४) **विदेशी शब्द :**

दक्खन प्रान्त में विदेशी लोगों के साथ विदेशी भाषाएँ भी आ गयी। जिस प्रान्त में

दक्खिनी हिन्दी का विकास हुआ वह प्रान्त मुसलमानों के शासन में रहने के कारण दक्खिनी हिन्दी में विदेशी-अरबी, फ़ारसी शब्दों का प्रयोग होने लगा। साहित्यिक दक्खिनी में इनकी भरमार है। विवेच्य कृतियों के आधार पर अरबी-फ़ारसी शब्द-सूची इस प्रकार है, जिसमें शब्द प्रारूप देखे जा सकते हैं। ये उदाहरण के तौर पर ही दिए गये हैं।

६.३.१.४.१) अरबी शब्द :

अनअहक़ २०-८ ।मन।	अफ़्लातून ७-२ ।सब।	सरअफ़राज़ ११-८ ।सै।
अफ़सार ११-२ ।सब।	अलबत्ता ११०-१ ।सब।	अहमक २७-१५ ।मन।
आक़िल ३१-४ ।मन।	इबादत २९-९ ।मन।	इलाज ५१-७ ।सै।
इश्क़ ५१-४ ।सै।	एतराज़ी १५४-७ ।सै।	क़रार १०३-६ ।सब।
क़ामिल ४७-२ ।मन।	ख़न्दक ९४-१५ ।कु।	ख़ाक १८-१४ ।मन।
खबर १०३-२ ।हि.ना।	खिलक़त १८-१६ ।मन।	ग़फ़लत ११-१ ।सब।
जाहिल ११-७ ।सब।	तदबीर ५२-३ ।सै।	तहक़ीक़ १२१-४ ।सब।
ताक़त ४६-८ ।सब।	तालीम ४२-२४ ।कु।	दुनियाँ १०२-१६ ।हि.ना।
दौलत २०-१४ ।मन।	फाजिल ३१-४ ।मन।	फ़ाम १०-१७ ।सै।
महल १२२-१ ।सै।	मुश्किल १३१-५ ।सब।	रिश्वत २९-८ ।मन।
शफ़ाअत ९५-१० ।सै।	शमा ६०-४ ।सै।	शराब ४६-१२ ।सै।
सरंजाम ५-१७ ।मन।	सलाम १७-२० ।हि.ना।	सलामत ११५-१४ ।सै।
हकीम १५१-२२ ।हि.ना।	हजरत १८०-२६ ।हि.ना।	हसरत ११-८ ।मन।
हाजिर ५०-४ ।सै।	हिकमत ४-३ ।मन।	हिर्स ३-७ ।मन।

६.३.१.४.२) फ़ारसी शब्द :

अदालत ४४-२२ ।सब।	अंदेशा २०१-२९ ।हि.ना।	अंजाम २-११ ।मन।
आख़िर १०२-१ ।हि.ना।	आसमान १२५-२ ।सब।	उस्ताद २९-१ ।कु।
खिलाफत ७-७ ।मन।	ख्वाहिश ९५-१४ ।हि.ना।	चमन ९-१३ ।मन।

जवाबदारी ३९-२ |हि.ना|	तमाशा १४०-२१ |हि.ना|	ताज़ा २४-४ |सब|
दिल १५०-१३ |सै|	दीदार ६७-२ |सब|	दुश्मन ११०-४ |सब|
दोस्त १६१-२ |सै|	नादान १२७-५ |सब|	निशान ११५-१ |सै|
फ़ाम १५०-१२ |सै|	बयान ९८-५ |हि.ना|	बेहत्तर ११०-१ |हि.ना|
मूर्दा १०-८ |मन|	मेहमान १०५-२ |सै|	म्यान ३७-१३ |सब|
लशकर ३८-४ |मन|	शहरेयार १३३-५ |सै|	शादी १८७-२५ |हि.ना|
सरकार ४९-२२ |हि.ना|	सायादार ८२-२१ |सै|	सैर १५०-१६ |सै|
हज़ार १९०-६ |सब|	हमेशा १४१-३ |हि.ना|	

शब्द विवेचन से सम्बन्धित इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में शब्द संपत्ति के स्रोतों को प्रमुखत: चार वर्गों में बांटा जा सकता है- संस्कृत स्रोती, देशी भाषा स्रोती, हिन्दी क्षेत्रीय बोलियों से आगत और विदेशी। संस्कृत स्रोत से आगत शब्दों को दो वर्गों- तत्सम और तद्‌भव में देखा जा सकता है। देशी भाषा शब्दों का विवेचन भी दो वर्गों में किया जा सकता है- एक हिन्देतर आर्य भाषा स्रोती और द्रविड़ भाषा स्रोती। हिन्दी क्षेत्रीय शब्द भण्डार के अन्तर्गत खड़ी बोली, अवधी, ब्रज आदि से आगत शब्द आ जाते हैं और विदेशी में अरबी, फ़ारसी शब्द। संस्कृत से आगत शब्दों के अन्तर्गत वे सामासिक पदबन्ध भी आ जाते हैं जिन्हें संस्कृत में सामासिक विधान के अन्तर्गत देखा जाता है। इस वर्गीकरण के आधार पर विवेचन के अन्तर्गत ली गयी शब्दावली के आकलन से दक्खिनी साहित्यिक भाषा के शब्द भण्डार से सम्बन्धित कुछ विशेषताएँ अवश्य उभरती हैं। वे इस प्रकार हैं-

i) जहाँ तक संस्कृत तत्सम शब्दों का सम्बन्ध है दक्खिनी साहित्यकार इनके प्रयोग में अधिक जागरूक रहे हैं। उन शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ की सीमाओं में ही किया गया है। शब्द संरचना भी प्राय: संस्कृतानुरूपी हैं।

ii) तद्‌भव शब्द प्रयोग के क्षेत्र में दक्खिनी साहित्यकारों में अवश्य शिथिलता दिखलाई पड़ती है। तद्‌भवीकरण की इस शिथिलता के कारणों की और अगर ध्यान

दिया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि दक्खिनी साहित्यकारों ने इन शब्दों को अपने श्रुत आधारों पर ही स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि इन्होंने शब्द विकास और उन शब्दों के तत्कालीन परिनिष्ठित रूप पर ध्यान न देकर व्यवहृत रूप को ही लिया है। इसीलिए इन शब्दों में विविध रूपीय स्थिति दिखाई देती है।

iii) सामासिक शब्द तो संस्कृत सामासिक संरचना के निकट हैं और उनके प्रयोग में साहित्यकारों ने अवश्य पूर्ण न्याय ही किया है। अर्थात् संस्कृत रूपों के निकट ही रहे हैं।

iv) हिन्देतर आर्य भाषा वर्ग के स्रोत से आगत शब्दों में मराठी, गुजराती शब्द ही मिलते हैं। इनमें मराठी से आगत शब्द अधिक हैं, गुजराती के कम। द्रविड़ भाषा स्रोत शब्दावली में तेलुगु के शब्द प्रथम ग्रहण करते हैं, कन्नड़ शब्दों की संख्या कम हैं। इनके अलावा शब्द भण्डार का एक तीसरा प्रकार भी उभरता है, जिसे सुविधा के लिए दक्खिनी शब्दावली की अभिधा दी जा सकती है। इनमें वे शब्द हैं जो खड़ी बोली से भिन्न रूपों में मिलते हैं। खड़ी बोली की भिन्नता ने इनको दक्खिनी शब्द भण्डार की सीमा में रखा है।

v) हिन्दी क्षेत्रीय शब्दों में अवधी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी और हरियाणवी के शब्द प्रमुख रूप से पाए जाते हैं। इनमें भी अधिकता की दृष्टि से यही क्रम मिलता है। समस्त शब्दावली इस शीर्षक के अन्तर्गत एक कोश का रूप धारण कर सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये शब्द प्रयोगगत विस्तार की दृष्टि से अधिक है।

vi) अरबी, फ़ारसी शब्दों के सम्बन्ध में तो कहना ही नहीं। एक ही वाक्य में अगर कहा जाए तो दक्खिनी की साहित्यिक शब्दावली में अरबी, फ़ारसी से स्वीकृत शब्दावली लगभग साठ प्रतिशत की होगी। इसीलिए दक्खिनी शब्दावली को अरबी, फ़ारसी शब्दावली से अधिक प्रभावित मान सकते हैं। यह प्रतिशत की सीमा रेखा दक्खिनी के मुसलमान साहित्यकारों के लिए लागू की जा सकती है। जबकि मुसलमानेतर दक्खिनी साहित्यकारों की भाषा का आकलन करते हैं तो अरबी, फ़ारसी शब्द प्रयोग पच्चीस प्रतिशत से भी कम दिखाई देती है। उदाहरण के रूप में पुरुषोत्तम कवि के दक्खिनी हिन्दी नाटकों को देखा जा सकता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी का शब्द भण्डार एक

ऐसी खिचड़ी है जिसमें अनेक भाषाओं की शब्दावली का यथेच्छ ग्रहण है। साथ-साथ यह भी देखा जा सकता है कि ये शब्द जिस रूप में प्रयुक्त हैं उनमें विविध प्रकार के ध्वनि परिवर्तन भी हुए हैं, जो प्रायः किसी एक भाषा के नियमों से नहीं जड़ते।

६.४) वाक्यगत विशेषताएँ

हिन्दी वाक्यगत विशेषताओं के अन्तर्गत वाक्य से सम्बन्धित मूल बातों की चर्चा की जा चुकी है। अतः यहाँ सीधे हम दक्खिनी हिन्दी के वाक्यों की विवेचना करेंगे।

६.४.१) पदबन्ध :

पदबन्ध के सम्बन्ध में चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। अतः यहाँ सीधे दक्खिनी हिन्दी रचनाओं में पाए जाने वाले पदबन्धों को दर्शाया जाएगा। वाक्य में उद्देश्य और विधेय अंश संज्ञापदबन्ध और क्रियापदबन्धों के योग से संपन्न होते हैं।

वाक्य विवेचन के लिए आधारभूत संज्ञापदबन्ध संरचनाओं का विवेचन यहाँ समीचीन ही होगा। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की पदबन्ध संरचना पर आगे प्रकाश डाला गया है। यह विवेचन संरचना के साँचों को आधार मानकर किया गया है।

६.४.१.१) संज्ञापदबन्ध : संज्ञापदबन्ध के निम्नलिखित सांचे हैं-

६.४.१.१.१) व्यक्तिवाचक संज्ञा = संज्ञापदबन्ध :

तानीशा ४६-३ |हि.ना| मनोरंजनी १०३-१२ |हि.ना|

तुराब १-६ |मन|

६.४.१.१.२) व्यक्तिवाचक संज्ञा + आदरसूचक पदांश = संज्ञापदबन्ध :

रामजी ५९-१० |हि.ना| महाराजजी ४६-५ |हि.ना|

६.४.१.१.३) संज्ञा + सम्बन्धसूचक का + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

सरकार का ख़जाना ४६-२३ |हि.ना|

आपकी पुत्र १६०-७ |हि.ना|

गोपन्नाजी के नौकर ५९-१२ |हि.ना|

शक्ति की बस्ती १६-४ |मन|

परियां के शहर १०९-३१ |फूल|

६.४.१.१.४) सर्वनाम = संज्ञापदबन्ध :

मैं १३९-१३ ।सब।, कौन ५८-११ ।सब।, हम ६-१३ ।मन।

६.४.१.१.५) विशेषण + संज्ञा =संज्ञापदबन्ध :

i) गुणवाचक विशेषण + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

हरे झड़ ११२-१४ ।सै।, अंधेरी रात ५८-१७ ।हि.ना।

निरमला नौजवान १५३-५ ।कु। कठिन हृदय २१९-१३ ।हि.ना।

मिठी चाल १५३-७ ।कु। काला रंजन ७७-२ ।सै।

गुलबदन ४०-९ ।फूल।

ii) संख्यावाचक + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

तीन लाख ५९-२७ ।हि.ना। पाँच दिलाँ १०५-२० ।हि.ना।

नौ तबक़ ४३-२ ।कु। दोनों मस्त ५५-२० ।सब।

सातों असमान १०३-१९ ।सै। तिसरे दीस १३८-१९ ।सब।

सात अम्बर ८९-१२ ।फूल।

iii) गुणवाचक + गुणवाचक + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

चतम चंचल मन १५३-९ ।कु। बड़ा बड़ा सजा ६०-१६ ।हि.ना।

निरमल चौदहवीं रात ३५-३९ ।फूल।

६.४.१.१.६) सर्वनाम + संज्ञा + विशेषण = संज्ञापदबन्ध

तुज नाँव यक १५-११ ।कु। वो महलाँ चतर ३६-१७ ।सै।

६.४.१.१.७) सर्वनाम + विशेषण + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

वह एक आफ़त ५७-१२ ।सब। हम निराकार जोगी ६-१३ ।मन।

६.४.१.१.८) सर्वनाम + विशेषण + संबन्धवाचक का + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

उनन दुई का दोस्ताँ २०-१७ ।सै।

६.४.१.१.९) सर्वनाम + विशेषण + संज्ञा + संबन्धवाचक का + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

हम दोनों गोपन्ना के नौकराँ ५९-१२ ।हि.ना।

वो चंचल शह परी १०८-२५ ।फूल।

६.४.१.१.१०) विशेषण + संज्ञा + संबंधवाचक + संज्ञा = संज्ञापदबन्ध

नहने आदमी का काम १०९-१६ ।हि.ना।

६.४.१.२) क्रियापदबन्ध : क्रियापदबन्ध में क्रिया रूप मुख्य होता है। इसमें मुख्य क्रिया तथा सहायक क्रिया सम्मिलित रह सकती है। क्रियापदबन्ध में क्रिया रूप के अतिरिक्त क्रिया विशेषण भी सम्मिलित हो सकते हैं। क्रियापदबन्ध के कतिपय साँचे इस प्रकार बनते हैं-

६.४.१.२.१) क्रियापद = क्रियापदबन्ध :

जीवाँ पर उठते २-१७ ।सब। उसके हुक्म पर चलता १४-१ ।सब।

सराँ ते गुज़रते २-१७ ।सब। आगे यह बोलो ५९-२ ।हि.ना।

६.४.१.२.२) सहायक क्रिया = क्रियापदबन्ध :

मैं आपकी पुत्र हूँ १६०-६ ।हि.ना।

जो कुछ शाह केरा जो ईमान था ४९-१ ।सै।

६.४.१.२.३) क्रियाविशेषण + सहायक क्रिया = क्रियापदबन्ध :

सौन्य का अनुकूल्य कैसा है ? २०९-२६ ।हि.ना।

६.४.१.२.४) मूलक्रियापद + सहायक क्रिया = क्रियापदबन्ध :

खुदा के दोस्ताँ ने बोले हैं १७-१८ ।सब।

वो राग जमाते अथे ४५-२० ।कु।

वो राते रात वां जाकर रह्या था ६४-२६ ।फूल।

६.४.१.२.५) संयुक्त क्रियापद = क्रियापदबन्ध :

बुला भेजिए २८-६ ।हि.ना।   जाएँगे आ १३१-१६ ।हि.ना।

देखता जाए ८६-२३ ।फूल।

६.४.१.२.६) संयुक्त क्रियापद + सहायक क्रिया = क्रियापदबन्ध :

मुँजे कौन आ फाड़ खाता है १०२-१७ ।सै।

६.४.१.२.७) क्रिया विशेषण + क्रियापद = क्रियापदबन्ध :

खुदा ने उसे यहाँ लाया ७४-१७ सब

६.४.१.२.८) क्रियाविशेषण + विशेषण + निषेधात्मक पदांश + क्रिया = क्रियापदबन्ध :

ऐसी खुजाली न थी ७७-२२ ।सै।

ऐसी काली न थी ७७-२१ ।सै।

६.४.१.२.९) पूर्वकालिक कृदन्त + मूलक्रिया + सहायक क्रिया = क्रियापदबन्ध :

भागकर जाता था १७-२८ ।हि.ना।

६.४.३) व्याकरण घटन के आधार पर वाक्य प्रकार :

६.४.३.१) साधारण वाक्य :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त सामान्य वाक्य का प्रकारान्तर विश्लेषण विवेच्य कृतियों के आधार पर संक्षेप में इस प्रकार है-

कर्ता + कर्म + क्रिया

रामदेव ने माल लाके दिया ७-८ ।हि.ना।

समुन्दर के तईं आग चारा किया ५-१२ ।कु।

शाह हिन्दी ने कला भेजा ९०-७ ।फूल।

कर्म + कर्ता + क्रिया

ये सब खेल उसने ही जग में किया है ३६-४ ।मन।

सूरत शह की तिल तिल बिझाने लगी १३७-१७ |कु|

कर्ता + क्रिया + कर्म

तुराब ने यूँ किया वस्फ दिल-आराम १-६ |मन|

करनहार ने यूँ किया पैदायश ४-१७ |सब|

कर्म + क्रिया + कर्ता

जवाहिर के मौजाँ सूँ भर्या हूँ मैं २३-६ |सै|

इसी नक़्श का ध्यान धरती हूँ मैं १४०-१९ |कु|

क्रिया + कर्म + कर्ता

रखे नाँव करतार कन मँग पनाह ३७-१५ |कु|

किया आशिक कूं बखशिश सुर्खरू १८-२५ |फूल|

कर्ता + करण + क्रिया

कुबूल आपने जीव दिल सूँ किया ३५-१८ |सै|

भगवत् संकल्प से आनुकूल्य मिले जाएँ १२७-४ |हि.ना|

कर्ता + विशेषण + क्रिया

ख़ज़ानेदार बी बेगी च धाया ७५-६ |सब|

कर्ता + (कर्म) संबंधकारक + क्रिया

मैं आज बंगाले के तरफ़ जाता हूँ १२२-५ |कु|

कर्ता + संबंधकारक + विशेषण + कर्म + क्रिया

क़ामत कूँ एक ग़ुलाम था ६५-९ |सब|

कर्ता + अधिकरण + कर्म + सम्बन्धकारक + क्रिया

तूँ मसजिद मने दीन की बांग होय २०-४ |कु|

कर्ता + अधिकरण + कर्म + क्रिया

वही हमारे पर भी प्रसार करा २०१-२६ |हि.ना|

कर्ता + क्रि०वि० + कर्म + क्रिया

मेरा राज्य सब लूटी कराता था। १९७-२६ |हि.ना|

कर्ता + अपादान + कर्म + क्रिया

मेरा जीव उसपर ते क़ुरबान है ६३-१८ |सै|

कर्ता + सम्बन्ध. + कर्म + प्रश्नवाचक अंश + क्रिया + संबोधन

यह नगर का राजा कौन है रे १५७-१९ |हि.ना|

कर्ता + सम्बन्धकारक + कर्म + क्रि०वि० + क्रिया + सम्बोधन

चंद्रांगद का शव कहाँ है रे १३१-२० |हि.ना|

कर्ता + सम्बन्धकारक + करणकारक + कर्म + अधिकरण + क्रिया

दिल बाप के मुलाहिज से चुप झगड़े में आता है। १४३-१७ |सब|

कर्म + संप्रदान + क्रिया + कर्ता

अंगूठी निशाँ उस दिए शाह ने १६०-२१ |कु|

क्रिया + कर्ता + अधिकरण + कर्म

किया आपने मन में ग़म बेक़यास १४१-१२ |सै|

क्रिया + कर्ता + संबन्धकारक (कर्म) + अधिकरण

दिसे शाह झगड़े के मैदान में ९६-११ |कु|

क्रिया + कर्म + अधिकरण + संबंधकारक

बनाया घराँ इस में बेघात के ४-७ |कु|

क्रिया + कर्ता + संबंधकारक + कर्म + अधिकरण

है सारा सक्त सतगुरु के चरण में १५-६ |मन|

क्रि०वि० + कर्ता + क्रिया

अब मैं जाऊँगा १९२-२ |हि.ना|

६.४.३.२) <u>मिश्र वाक्य</u> :

साधारणतः विचाराभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन साधारण वाक्य है। किन्तु विचार मिश्रित हैं, अर्थात् विचार एक दूसरे पर आश्रित हैं, तो उन्हें प्रधान विचार के अधीन उपवाक्य बनाकर व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार की स्थिति में भाषा की संरचना दृष्टि से वाक्य रचना मिश्रित होती है। मिश्रवाक्यों में संज्ञा, विशेषण या क्रिया विशेषण को उपवाक्यों के अन्तर्गत लाकर प्रमुखता प्रदान की जाती है। विवेच्य कृतियों के आधार पर साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त कतिपय मिश्र वाक्य इस प्रकार हैं-

कि इसका सृष्टि कैसा उझाड होकर है कि बोलूँगा सुन ८६-१९ |हि.ना|

वह क्या होते है कि क्या है कि खुदा जाने ४९-११ |हि.ना|

जो ज कोई यू चलन्त चलता है वो कामिल होता है १४-१२ |सब|

जो देखी निझा खूब उसका जमाल,
दिवानी हो दर-हाल हुई वईं निढाल १५०-९ |सै|

जुकोई बुलहवस होर तमादार है, जहाँ जाएगा वो वहाँ ख़ार है ९९-६ |कु|

जो....सो.. जो कुच ग़म है दिल में सो तूँ काड़ सट,
गरद दर्द का मुख पो थे झाड़ सट १६६-१७ |सै|

जिस ऐ दिल पादशाह, तूँ जिसकी ख़ातिर तलमल्या,
मैं तुझे देख जल्या ९९-३ |सब|

जिसे इस अपरूप मोती का व्वो भेद पाया
जिसे राम मारग गुरु ने बताया १५-१० ।मन।

जिने जिने चार नहन्याँ कूँ समेटा वो बड़ा हुआ १११-९ ।सब।

सो सारांदील के राज के घर कूँ आई
सो गुम हुई सो इस शाहज़ादी कूँ पाई १४६-७ ।सै।

सो...कि अब तक जमा होकर अपना खजाना कोठिडी में है
सो नकद सब गिनती कु कितना है कि हिसाब के
दाखला से बोल ३६-१२ ।हि.ना।

जब...तब... न था जब यो परपंच तब शून्य अथा सब ५-७ ।मन।

जो...जब...सब.. जो नजदीक आया खुशी सात जब
अपस ते अपी खुल पड़े कुफ़्ल सब ११७-१ ।सै।

कब...कि...तब..
अपना माल कब पहुँचाने सकेगा कि तब इसकु छोड़ देना ४७-९ ।हि.ना।

यदी यदी इस सूरत की दीवानी हूँ मैं
छुप्या भेद याँ कुछ जानी हूँ मैं १४०-१५ ।कु।

जहाँ जहाँ होवे मज़कूर यू दास्ताँ
दिलाँ कूँ देवे सूर यू दास्ताँ २३-१९ ।सै।

जाँ...वाँ... जाँ मुहब्बत है वाँ क्या बला करती है १९०-२० ।सब।

यां...वां... न यां रही ज़रीं तेरी आबरूई

न वां की कुच तूं पाया है न कोई ९५-१३ ।फूल।

यूं...जू... दिसे यूं लफ़ज़ में माने हूं पिन्हां
के जू ज़ुलमात में है आब है वां ११८-३ ।फूल।

जूं...यू...सू यकायक जूं के यू बातां किया गोश
सू मारया शौक़ का दरिया वहीं जोश ३१-३ ।फूल।

कते-सो वो वासित कते सो नगर बीच है १३२-८ ।सै।
कलेजा कते सो मेरा तूँ है आज १६८-१५ ।सै।

६.४.३.३) संयुक्त वाक्य :

एकाधिक उपवाक्यों से निष्पन्न वाक्यों को संयुक्त वाक्य कह सकते हैं। संयुक्त वाक्य के उपवाक्य एक दूसरे से आश्रित नहीं होते, किन्तु अर्थ परक दृष्टि से वे परस्पर सम्बन्ध अवश्य रखते हैं। साधारणत: समुच्चयबोधक अव्यय संयुक्त वाक्यों के संयोजक तत्वों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी के आधारभूत कृतियों में प्रयुक्त कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं-

और/होर/हौर किसे बास है और किसे रंग है ६५-१७ ।कु।
बड़े थोबड़े हौर बड़े ज़ात के ७४-८ ।सै।
हुआ तू रूह और आदम जसद है २१-८ ।फूल।

परन्तु भगवान का विलासाँ कौन जानने सकने का? परन्तु अत्यल्प काल
में ही यह ऐसा कैसी हुई कि? १३९-१० ।हि.ना।

वले मेरे बोल बहुत तते, वले दानायाँ के दिल में रते १०३-१ ।सब।

वलेकिन आशिक तो मुंज ऐसे सकी लाखाँ हैं व लेकिन माशूक़ सो इस दौर
में उस सार कहाँ है? १५१-१७ ।कु।

लेकिन किषन भोग लेकिन अभोगी रहेगा २-१५ |मन|

बल्कि शराब के मना करने में एक रम्ज़ है, बल्कि एक ग़र्ज़ है २७-४ |सब|

पन बात जुदा पन भेद वही च ५-१२ |सब|

मगर दिसे यूँ धन उस महल के फ़र्श पर
सूरज सार हुआ है मगर अर्श पर ४८-९ |कु|

अगर अगर दिल में है मर्दी का हवस,
तो मर्द कूँ दुनिया में नावँ च बस ११४-४ |सब|
अगर नैं इश्क़ तो वो बिरहनी धन,
चली क्यों आपना सर माल हौर धन ९९-२३ |फूल|

व कलम काफ़ व नूँन थे जो निकला बहार १६-१ |सै|

इसलिए नादार गए तो फाइदा नहीं रहने का। इसलिए इस साल का गुजस्त-साल का भी शिश्त सब बकै पड़कै है २७-१७ |हि.ना|

६.४.४) <u>भाव और अर्थ की दृष्टि से वाक्य प्रकार</u> :

भाव या अर्थ की दृष्टि से वाक्य के अनेक भेद हो सकते हैं, जिनमें प्रधान इस प्रकार हैं-

६.४.४.१) <u>विधान सूचक</u> :

दुनिया महमान है १०७-१२ |सब|
नाम मेरा रामजी कहते हैं। ५९-१० |हि.ना|

६.४.४.२) <u>निषेधसूचक</u> :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में निषेधसूचक शब्दों न, ना, नको, नहीं, मत का प्रयोग मिलता है। नहीं के नईं, नई रूप भी मिलते हैं।

ना ज़ोरावर कूं ज़ोर सूँ ना हुंकारना १०७-३० ।सब।

न न तो काबा गया हूँ, न गया हूँ कासी ४०-१६ ।मन।
न यां रही ज़रीं तेरी आबरूई ९५-१३ ।फूल।

नैं मवा नैं है वो जीता है ककर वो ९६-१८ ।फूल।

नहीं खुदा कूं खुश नहीं आते सू यू काम ९५-१६ ।फूल।

नईं अपै है गम्भीर होर मन धीर नईं ५५-५ ।कु।

नई नबी हौत तूं है दोनो यक नई दो २४-३१ ।फूल।

मत देर मत कर १०७-१४ ।हि.ना।
दो बाजू दो धर झाड़ दूर मत हो १०५-२१ ।कु।

नको मैं वह खाने मरता हूँ नको बावा ! ४८-१० ।हि.ना।

उपर्युक्त वाक्यों में यह देखा जा सकता है कि कहीं न, ना; कहीं नहीं, नईं और कहीं मत और नको का प्रयोग मिलता है और ये भी उल्लेखनीय है कि निषेधवाचक अव्ययों का स्थान भी भिन्न-भिन्न होता रहता है।

६.४.४.३) आज्ञासूचक वाक्य :

कता हूँ सुनो कान धर लोग हो ३३-१ ।कु।
करो जम दुआ जीव सूँ जग मिल उसे ३८-१९ ।कु।
देखो तरकटी महल संगम संवारा ४१-९ ।मन।
उठो जी उठो अब चलो जाएं घर कू ९-६ ।मन।

उपर्युक्त आज्ञासूचक वाक्यों के निरीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि सुनो, करो, देखो, उठो आदि वाक्य में भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रयुक्त हुए हैं।

६.४.४.४) इच्छासूचक वाक्य :

अच्छा महराज ! वैसा इच करेंगे। ५२-४ |हि.ना|

अताल खुदा शर्म रखे ३७-१३ |सब|

खुदा सब का करो उस धात दिल शाद ११९-१० |फूल|

६.४.४.५) प्रश्नसूचक वाक्य :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रश्नवाचक पद अनेक मिलते हैं- कौन, क्या, किस, कहाँ, कां, किधर, कितने, कब, कैसे। ये प्रश्नवाचक पद कभी वाक्य के अन्त में कभी वाक्य के आदि और कभी वाक्य के मध्य में जुड़ते हैं। इनके अलावा कुछ संबोधन शब्दों को जोड़कर प्रश्नवाचक वाक्यों की रचना भी मिलती है। कभी-कभी सामान्य वाक्य के अन्त में 'ना' अंश जुड़कर प्रश्नवाचक वाक्य बने हैं। नहीं, नको निषेधवाचक शब्दों को जोड़कर भी प्रश्नवाचक वाक्यों की संरचना हुई है।

'क' वर्ग प्रश्नवाचक वाक्य

कौन	के तूँ कौन है होर तेरा नाँवँ क्या? ९७-२४ |कु|
	आग में पानी है वो पानी कौन पिया है? ४३-१६ |सब|
कोई	उसका बोल कोई ठेल सक्या है? १५१-७ |सब|
कुई	करे क्या शुक्र कुई हक़ के करम का १२२-५ |फूल|
किस	यो फ़रयाद मैं किस कने जा करूँ? १४४-१९ |कु|
किसे	किसे मना करना? १६६-२८ |सब|
किसकूं	तेरी तारीफ करने किसकूं हद है २१-७ |फूल|
किसका	बस यहाँ समज कर आज लगन कूँ आशिक़ होर किसका था? १६३-१२ |सब|

क्या	क्या है वह? १२२-२२ |हि.ना|
	क्या हुनर धरता है? १००-२९ |सब|
कैसा	...अपन कु कैसा मालुम? १९३-१६ |हि.ना|
किधर	यकेली किधर जाती? १७४-११ |सब|
कहाँ	एती पाकी कहाँ है? १३२-१७ |सब|
काँ	वो भौंरा काँ है? ४३-१६ |सब|
कां	मैं अस्तुत तुमारा तो कां लग सराऊं? ४६-१० |मन|
क्यों	अगर नैं इश्क़ तो आलम हुवा क्यों? ९९-९ |फूल|
क्यूँ	दिल भोला भूल्या सो क्यूँ ना आये? ९७-२२ |सब|
कें	यहाँ कु कें आई है? ९८-२४ |हि.ना|
की	एरवादे वक़्त कुछ भला बुरा होता तो तूँ डरता की(क्या)? १६३-७ |सब|
	झूटे चुप के की(क्यों) मुँज कूँ रंजानते? ८२-१० |कु|
कितना	अबतक कितने कु पुत्र हुआ? १६६-१५ |हि.ना|
केती	वहाँ ख़िज़र होना केती बार? १४२-१ |सब|
केता	केता(कितना) बी कहो क्या फ़ायदा? ९०-१७ |सब|
	आदमी बिचारा केता(कैसे) पछाने? १७४-२२ |सब|

उपर्युक्त कुछ प्रश्न वाचक वाक्यों के अन्त में सम्बोधन वाची शब्द जोड़कर दक्खिनी हिन्दी नाटकों में प्रश्नवाचक वाक्य बनाये गये हैं। यथा-

क्या दुष्काल है रे? १२९-१६ |हि.ना|

अब मेरा सुता दुनिया में कैसी जीएगी रे? १३०-११ |हि.ना|

इसी प्रकार के सम्बोधनों में कभी-कभी वाक्य के अन्त में संबंधबोधक शब्दों को जोड़कर भी प्रश्नवाची वाक्यों की संरचना साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में हुई है। यथा-

तु: ही है ना अहल्या? ९८-१ |हि.ना|

तु: छपाया तो वह छुपा है बहन? ९८-२० |हि.ना|

'न' और 'ना' को सामान्य वाक्य के अन्त में जोड़कर प्रश्नवाची वाक्य बनाने की प्रक्रिया भी साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में मिलती है। यथा-

अखिल अदितेयाधिनाथ कु भी देखी थी न? १००-११ |हि.ना|

खूब समझी ना? १०४-१ |हि.ना|

'नहीं' वाक्य के आदि में जोड़कर वाक्य को प्रश्नवाच्य बनाने की प्रवृत्ति के उदाहरण भी प्राप्त हैं-

नहीं तो मेरी वाक् से ऐसे दुष्ट वचनाँ कें निकलेंगे? १२१-२६ |हि.ना|

नहीं तो चेतनारहित कलेबर क्यों नहीं दिसने का? १३२-१ |हि.ना|

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में 'नको' वाक्य के मध्य में जोड़कर प्रश्नवाची वाक्य बनाए गए हैं-

ताख़ीर नको कर ३६-२ |सब|

ग़म नको कर १५२-४ |सब|

६.४.४.६) <u>विस्मय तथा सम्बोधन सूचक वाक्य</u> :

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में विस्मय तथा संबोधन सूचक वाक्यों के अनेक प्रकार मिलते हैं। कौन, क्या आदि प्रश्नसूचक शब्दों के योग से कुछ वाक्य विस्मयसूचक वाक्य बने हैं। यथा-

अताल तुमें कौन हमें कौन! १७३-११ |सब|

अभी अंदेशा क्या है ! १४४-१५ |हि.ना|

छुपाती तूँ इस बात कूँ की(क्यों) ऐ नार ! १३९-७ |कु|

अरे मन तू इस तन कूं की(क्यों) प्यार करता! २२-७ |मन|

<u>संबोधन शब्दों से अंत होनेवाले वाक्य</u> :

इस प्रकार के वाक्यों के अन्त में कभी 'जी' का योग रहता है और कभी संबोधन शब्द के बाद 'जी' का योग। यथा-

आपके खजाना के रुपए हम लाए हैं जी! ५८-१६ |हि.ना|

कितना दिवाना हो गया जी! ९२-२१ |हि.ना|

आपीच मेरा गति है भगवान जी ! ५१-२३ ।हि.ना।

उपर्युक्त प्रकार के वाक्यों के अन्त में या आदि में नाथा, महात्मा, ईशा, पालनहार, मनोरंजिनी, यारो, दरेगा आदि शब्दों के योग से सम्बोधन वाक्यों की रचना साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में मिलती है। कतिपय उदाहरण इस प्रकार है-

आदाब बंदेगी अय पालनहार ! ४५-२६ ।हि.ना।

तु: सावधान होके आकर्णन करना भला मनोरंजिनी ! ९५-१० ।हि.ना।

अहे रामदास होर केसूदास यारो ! ४८-१५ ।मन।

दरेगा बड़ा ग़म है मुज दिल मने ! २७-१३ ।सै।

इसी वर्ग में वाक्य की आदि मध्य में या अन्त्य में रे, अरे, अहे, ऐ, हाय, वाह आदि शब्दों को जोड़कर विस्मयबोधक वाक्य संरचना हुई है। यथा-

आदि अरे मन उसे क्या है दुनिया का झांसा ! ३३-१७ ।मन।

ऐ पीर सलाम, साहब-तदबीर सलाम ! ४२-१६ ।सब।

मध्य कहीं त्यूँ करेगी जो ऐ जान तूँ ! १६५-१७ ।सै।

हुआ कुन सूँ सुन ऐ बचा सारा बस्तारा ! ४५-१२ ।मन।

अन्त्य गुरुबिन जो मैपन में मर जाएँगे रे ! २१-९ ।मन।

नकारार्थक शब्दों को साधारण वाक्यों को जोड़कर विस्मयसूचक वाचक संरचना भी मिलती है, जो नाटकीय भाषा के लिए आवश्यक है। यथा-

अभी संदेशा क्या है ! देवतोपमा ! आह्लादसंधायका ! वरदा ! १४४-१५ ।हि.ना।

अब मेरी सूरत भी न देखता है कें रे पुत्रा का !

अरे कुमारा ! हा कुमारा ! कुमारा ! १६२-२३ ।हि.ना।

संबोधन शब्द वाक्य के पहले और बाद में भी मिलती है। उदा०

हे अबला ! मैं जितने सन्मार्गों से, जितने तार्काणों से....१६९-८ ।हि.ना।

हे राजा ! मैं तुझे हर एक वाक्य में भी कठिन ह्रदया....२१९-१२ ।हि.ना।

संबोधन शब्दों की श्रृंखला और बाद में वाक्य; उदा०

सांबा ! सदाशिवा ! जगद्रक्षका ! राजमौली ! प्रपंच में बहु-महाजनाँ आपने कु अपकृति किए २१६-२६ ।हि.ना।

६.४.४.७) संभावनार्थक सूचक

उदा० उठ्या फ़तह के ज्यूँ दमामे कूँ ठोंक
हुए शाद तिरलोक म्याने के लोक २०१-२ ।सै।

यदि इस सूरत की दिवानी हूँ मैं,
छुप्या भेद याँ कुछ जानी हूँ मैं १४०-१५ ।कु।

इस काम का सरंजाम क्यूँ होवेगा? ३७-६ ।सब।

६.४.४.८) प्रतिबन्दतार्थक वाक्य

अगर रामदास होर कैसुदास होते
हमारा भी दुख दर्द व्व सुनको रोते २८-७ ।मन।

अगर दीन होर दुनिया का उम्मीद पाने मँगता है
तो यो किताब देख। ९-१८ ।सब।
अगर वस्ल टुक आके सँबालता,
तो बिरहा मुंजे क्या सबब जालता १५५-५ ।कु।

६.४.५) अन्य वाक्य :

६.४.५.१) परसर्ग वाक्य : कुछ वाक्यों में परसर्ग लोप की विशेषता साहित्यिक

दक्खिनी हिन्दी में स्पष्ट परिलक्षित होती है। यह प्रवृत्ति विशेषता सम्बन्ध कारक में मिलती है। इस वर्ग के कुछ वाक्य इस प्रकार हैं-

महल शह (का)* सिगांरे यूँ उस काज कूँ ३९-१३ |कु|

जो यक ठार (पर) उतरे थे इस ठारते ९४-५ |कु|

बात कर (ने के) ख़ातिर निशान किया १४४-१९ |सब|

हुस्न (के) ख़ातिर जीव पकड़ कर रह्या १४७-२२ |सब|

अली (का) नाम लेने सूं आराम हैगा २-१४ |मन|

*(कोष्टकों में दिए गए परसर्ग वाक्यों में प्रयुक्त नहीं हुए हैं।)

६.४.५.२) <u>तेलुगु वाक्य संरचना से प्रभावित वाक्य</u> : दक्खिनी हिन्दी का विकास क्षेत्र प्रमुखतः गोलकुण्डा होने से इस पर तेलुगु का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। यह प्रभाव वाक्य के स्तर पर भी परिलक्षित होता है। सामान्यतः भाषाभिसरण दो भाषाओं के अनवरत और दीर्घकालिक संपर्क के कारण होता है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी यह अभिसरण प्रक्रिया देखी जा सकती है। विवेच्य कृतियों में से कतिपय उदाहरण तेलुगु के अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनमें संरचनागत समानांतरता देखी जा सकती है-

i) अब मुझकु क्या होना? १८-२७ |हि.ना|
ते० (इंका नाकू एमि कावालि)

ii) यह बात खूब है। ७-१३ |हि.ना|
ते० (ई माटा चाला बाउंदि)

iii) खुदा है कर तो बोल्या जाता है कि कुछ बी दिस आता है। १६-२३ |सब|
ते० (भगवन्तुडु उन्नाडु अनि अंटारू कानी एमि कनिपिंचडु)

iv) तूँ नईं तोड़ता सो तुटता क्यूँ? ७९-१ |सब|
ते० (नुव्वु विरचकपोते अदि एन्दुकु विरूगुतुन्दि)

v) चार बाताँ करते हमारा क्या जाता? १०४-२४ ।सब।
तें० (नालुगु माटलु माट्लाड़िते मनदि एमि पोतुंदि)

vi) कौन है यहाँ पूछतेवाला ६७-२४ ।हि.ना।
तें० (एवडुन्नाडु इक्कड़ा अड़िगेवाडु)

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त वाक्य विधान के निरीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि दक्खिनी हिन्दी भाषा संरचना के साँचे खड़ी बोली की संरचनाओं के साँचों से मिलते हैं। प्राय: सामान्य वाक्य संरचना खड़ी बोली संरचना के साथ मिलती ही है। वाक्य के घटकों में पदक्रम, लिंग, वचन का खड़ी बोली से तुल्य परिलक्षित होता है। जो विशिष्ठताएँ हैं वे निषेधात्मक वाक्य, प्रश्नवाची वाक्य और विस्मयसूचक वाक्यों में मिल जाती है। यह विशिष्ठता प्रान्तीय प्रभावों को लेकर हैं। तेलुगु के प्रभाव से युक्त संरचनाओं की ओर आलोच्य कृतियों में झुकाव है। वाक्य संरचना में यत्र-तत्र व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन मिलता है, जिसकी और संकेत मात्र किया गया है, वह भाषा के विस्तुत व्यवहार और एक विशिष्ठ व्यवस्था में ढलने की प्रवृत्ति के कारण ही माना जा सकता है। संयुक्त वाक्य संरचना में संरचना की व्यवस्था में अधिकतर खड़ी बोली वाक्य संरचना की व्यवस्था का अनुसरण ही मिलता है।

१ तजविद ए लतीफ़- मीर मुर्तज़ा अलिशाह क़ादरी, पृ.१३

२ दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.४८

३ इसके साथ अन्य संख्या वाचकों का विकास भी संस्कृत रूपों से ही है। इस संबंध में द्रष्टव्य है: हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, अध्याय ७-संख्यावाचक विशेषण।

४ विवेच्य कृतियों में यह रूप नहीं मिलता है, लेकिन डॉ.श्रीराम शर्मा जी के द्वारा

दिए गए उदाहरणों को यहाँ उद्धृत किया गया है- "जब बीस, तीस आदि के साथ एक जुड़ता है तो उसका रूपांतर 'इक' में होता है- इक्कीस, इकतीस आदि। कहीं कहीं फ़ारसी के यक से भी संयुक्त वाचक शब्द बनते हैं- यक्कीस बच्चे हुए।" दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास, पृ.२२२।

[५] दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.२२१

[६] वही, पृ.२२२

[७] भारत का भाषा सर्वेक्षण(भाग-१) - सर जार्ज ग्रियर्सन, अनुवादक- निर्मला सक्सेना, पृ.१२९

[८] हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ.धीरेन्द्र वर्मा, पृ.६९

[९] श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक, पृ.४

[१०] दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास - डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.१३५

[११] वही, पृ.१४०

प्रस्तावना

पूर्व पाँचवे तथा छठे अध्यायों में हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी के भाषाई अध्ययन के आधार पर समानताएँ एवं असमानताएँ लक्षित होती हैं, जिन्हें प्रस्तुत अध्याय में दर्शाया गया है। इसके अंतर्गत ध्वनिगत, व्याकरणिक, शब्द तथा वाक्यगत विवेचन में दोनों भाषाओं की तुलना की गई है।

७.१ ध्वनिगत विवेचन

साहित्यिक भाषा के रूप में दक्खिनी का उपयोग १४वीं शती से आरम्भ होता है। जैसा कि विदित है कि दक्खिनी पर अनेक बोलियों एवं भाषाओं का प्रभाव पड़ा जिनमें मराठी, गुजराती, ब्रज, अवधी, पंजाबी, खड़ी बोली, अरबी-फ़ारसी प्रमुख हैं। चाहे उच्चारण हो या लेखन इन बोलियों का स्पष्ट प्रभाव दक्खिनी पर देखने को मिलता है। यही कारण है कि जब हम दक्खिनी की ध्वनियों के बारे में बात करते हैं तो हमारे सामने इस संदर्भ में कई मसाएल सामने आ खड़ी होती हैं। इतनी बोलियों, भाषाओं एवं उच्चारण-लेखन में भिन्नता के बीच यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि किन ध्वनियों को दक्खिनी के अंतर्गत मान्यता दी जाए और किन्हें छोड़ दिया जाए। हिन्दी की ध्वनियों के सम्बंध में तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दक्खिनी में कई ऐसी ध्वनियाँ हैं जो मानक हिन्दी में नहीं मिलती। वहीं हिन्दी की अन्य बोलियों को अगर देखा जाए तो ये ध्वनियाँ हिन्दी की बोलियों में पाई जाती हैं। अतः पहले अध्यायों में विश्लेषित विषयों के आधार पर जो भाषागत समानताएँ और असमानताएँ स्पष्ट रूप से उभरकर मेरे सामने आई हैं, वे निम्नलिखित हैं-

१) मानक हिन्दी में जो स्वर मिलते हैं वहीं दक्खिनी में इन स्वरों के अलावा भी कुछ स्वर मिलते हैं। जैसे इ, ऍ, ओ। इ की फुसफुसाहट वाली ध्वनि है जिसके नीचे शून्य लगाकर लिखा जाता है। उ और ए ध्वनियाँ भी फुसफुसाहट वाली हैं। डॉ.श्रीराम शर्मा ने अपनी पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास' में ए और उ फुसफुसाहट वाली ध्वनियों को चिह्नित किया है। हिन्दी की बोली अवधी में ए की फुसफुसाहट वाली ध्वनि के साथ इ और उ की फुसफुसाहट ध्वनियाँ पाई जाती हैं।[१] लेकिन मानक हिन्दी में ये नहीं हैं।

'ए' से सम्बन्धित कई स्वर हैं जो हिन्दी की बोलियों में ही पाए जाते हैं और जो मानक हिन्दी में प्रयोग में नहीं आते हैं। जैसे- ऍ, ॅ, ए। इन्हें इसी रूप में विद्वानों ने चिह्नित किया है। दक्खिनी साहित्य में ऍ का प्रयोग मिलता है। अतः यहाँ केवल इसकी चर्चा की जा रही है।

'ऍ' अर्द्धसंवृत, अग्र ह्रस्व स्वर है। द्रविड़ भाषाओं में 'ऍ' के लिए पृथक् लिपि-चिह्न है। इस भाषा में इसे 'अइ' के रूप में स्वीकार किया गया है। यह संयुक्त

स्वर ही उच्चारण की सुविधा के लिए ह्रस्व हो गया है। ह्रस्व 'ए' और दीर्घ 'ए' के कारण द्रविड़ भाषाओं में अर्थभेद होता है। दक्खिनी में इसे केत्ती(कितनी), यक्का(इक्का), बेज्जार आदि शब्दों में देखा जा सकता है। दक्खिनी में एकार के साथ 'य्' श्रुति सुनाई देती है, उदा० येक(एक)। येक उच्चारण तेलुगु के प्रभावस्वरूप है। तेलुगु में 'ए' के पूर्व 'य्' लिखते हैं।

ओ ध्वनि के संबंध में डॉ.ज़ोर का कहना है कि- "There is another kind of o in dialected forms,which is neither o nor u, but has a middle position and may be written like o."[२] उदाहरण के रूप में उन्होंने पोट्टा,डोप्पा शब्द दिए हैं। इस संदर्भ में डॉ.श्रीराम शर्मा के अनुसार "मुख्य रूप से दक्खिनी में प्रयुक्त 'ओ' ध्वनि द्रविड़ शब्दों में भी मिलती है।"[३] साथ ही उनका मानना है कि "दक्खिनी में 'ओ' की स्थिति ओ से भिन्न नहीं है। दोनों में केवल उच्चारण-काल का अन्तर रहता है।"[४]

यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि हरियाणवीं में भी इन 'ऍ' और 'ओ' के ह्रस्व और दीर्घ रूप पाए जाते हैं।

२) डॉ.धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार 'ऐ' संयुक्त स्वर हिन्दी में 'अए' के रूप में उच्चारित होता है। जीभ के दोनों पार्श्व तालु का किंचित् स्पर्श करते हैं। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में यह स्वर मूलस्वर के रूप में प्रयुक्त है। यह प्रयोग प्राय: अरबी-फ़ारसी भाषाओं के शब्दों में पाया जाता है। दक्खिनी में इसका उच्चारण 'अइ' के रूप में होता है। उदा० तै(तइ), ऐसा(अइसा), हैं(हइं) उच्चारित किया जाता है। अन्यत्र यह संयुक्त स्वर ही माना जा सकता है। द्रविड़ भाषाओं में 'ऐ' लिपि चिह्न 'एइ' ध्वनि का परिचायक है। इसमें हिन्दी की तरह 'अइ' नहीं होता।

दक्खिनी में 'औ' तीन ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है- 'अओ', 'अउ', 'अवु'। उदाहरण के लिए औधान(अओ), दौड़(अउ), कौंली(अवु)। इनमें 'अवु' द्रविड़ भाषा का उच्चारण है। डॉ.धीरेन्द्र वर्मा ने इसे संयुक्त दीर्घ स्वर मानकर इसका उच्चारण 'अओ' निरुपित किया है। जबकि डॉ.ज़ोर ने 'औ' को स्वतंत्र मूल स्वर माना है और इसके उच्चारण के सम्बन्ध में जो लक्षण बताया है उसके बारे में डॉ.श्रीराम शर्मा का कहना है कि- "यह लक्षण संस्कृत 'औ' के उच्चारण पर लागू होती है। संस्कृत में 'औ' 'अओ' के संयोग से बना हुआ संयुक्त स्वर है, जिसका उच्चारण-स्थान कण्ठतालव्य है।"[५] दक्खिनी में हम देखें तो मौटे रूप से यह बात सामने आती है कि इसका उच्चारण हिन्दी की तरह संयुक्त है; जैसे- सौ(सओ), तौर(तओर), और(अओर)।

३) हिन्दी की 'ओ' ध्वनि दक्खिनी में भी 'ओ' की तरह ही उच्चरित होती है। द्रविड़ भाषा के प्रभाव के कारण यह आदि में 'व्' की भांति उच्चारित की जाती है। तेलुगु भाषा-भाषी व्यक्ति इसका उच्चारण 'वो' करता है जैसे- वोड़ना(ओड़ना)। लेखन में भी कई स्थलों पर 'ओ' से 'व्' लिखा जाता है। हिन्दी में ग्रहीत अंग्रेज़ी की 'ऑ' ध्वनि दक्खिनी में नहीं मिलती है।

ऋ और ष् का उच्चरण रि, रु, रो और श् के समान होता है। ये ध्वनियाँ केवल चिह्नित रूप में दिखाई देती हैं, उच्चारण में इनका प्रयोग लुप्त है। दोनों भाषाओं में इनकी यही स्थिति मिलती है।

विसर्ग का प्रयोग प्राय संस्कृत तत्सम शब्दों में ही किया जाता है। दक्खिनी में इसका प्रयोग मिलता है जैसे- 'तुः'। जो अन्य स्वर हैं वे हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं। इनके उच्चारण रूप में समानता है।

४) हिन्दी की तरह ही दक्खिनी का प्रत्येक मूल स्वर सानुनासिक भी है। जैसे- अँधारा(अंधकार), धाँदल(अन्याय), इँचना(खींचना) आदि। इसके साथ संयुक्त स्वर का प्रथम अंश सानुनासिक न होकर द्वितीय अंश सानुनासिक होता है। उदा० जातैं(जातइँ)।

५) जहाँ तक व्यंजनों की बात है दक्खिनी में व्यंजनों की स्थिति हिन्दी के समान है। हिन्दी बोलचाल के सभी व्यंजन दक्खिनी में भी मौजूद हैं। पढ़े-लिखों की भाषा में अरबी-फ़ारसी की भी कुछ ध्वनियाँ आ गई हैं; जैसे क़्, ख़्, ग़्, ज़्, फ़्। इनका प्रयोग अरबी-फ़ारसी तत्सम शब्दों मे होता है। जैसे- मग़ज़, बेख़बर, हक़, नज़र, हाफ़िज़ आदि।

दक्खिनी के व्यंजनों का उच्चारण हिन्दी व्यंजनों से मिलता है या यूं कह सकते हैं कि दोनों की उच्चारण-प्रकृति एक ही है। दक्खिनी में ट्वर्ग स्पर्श व्यंजनों का दो प्रकार का उच्चारण प्राप्त है- एक मूर्द्धन्य और दूसरा वत्स्र्यतालव्य। हिन्दी में ट्वर्ग का केवल मूर्द्धन्य उच्चारण मिलता है। दक्खिनी के इस वत्स्र्यतालव्य उच्चारण के बारे में डॉ.श्रीराम शर्मा कहते हैं कि "मूर्द्धन्य अक्षरों के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग ऊपर उठकर पलटता है, फिर अग्रतालु का स्पर्श करता है, किंतु दक्खिनी में ट्वर्ग का जो उच्चारण है उसमें जीभ का अग्रभाग तालु की ओर अग्रसर होकर नहीं मुड़ता। इस प्रकार का उच्चारण प्रायः शब्द के आरम्भ में सुनाई देता है। जीभ का अग्रभाग वत्स्र्य और तालु की सन्धि का स्पर्श करता है, अतः इन ध्वनियों को वत्स्र्यतालव्य कहा जा सकता है।"[६] वत्स्र्यतालव्य ट्-ड् का उच्चारण अंग्रेज़ी ट(t) और ड(d) से साम्य रखता

है। डॉ.शर्मा का यह मानना है कि दक्खिनी का मूर्द्धन्य ट्वर्ग भी हिन्दी के अन्य बोलियों की अपेक्षा कोमल है। चवर्ग के उच्चारण-स्थल और वत्स्र्यतालव्य ट्वर्ग के उच्चारण-स्थान में थोड़ा-सा अन्तर है। मूर्द्धन्य और वत्स्र्यतालव्य ट्वर्ग की पृथकता को सूचित करने के लिए उन्होंने वत्स्र्यतालव्य ट्वर्ग ध्वनियों के नीचे शून्य लगाकर उन्हें चिह्नित किया है- ट, ठ, ड, ढ।

६) हिन्दी की मूर्द्धन्य 'ष्' ध्वनि दक्खिनी में नहीं है। इसका एक कारण यह है कि दक्खिनी ने अपनी शब्दावली मुख्य रूप से मध्य भारतीय आर्य भाषा तथा आरम्भिक नव्य भारतीय आर्य भाषा से प्राप्त की है जिसमें मूर्द्धन्य 'ष्' का अभाव है। दूसरा कारण यह है कि- दक्खिनी का साहित्य फ़ारसी लिपि में लिखा हुआ है। फ़ारसी लिपि में मूर्द्धन्य 'ष्' के लिए पृथक चिह्न नहीं है। इसी कारण दक्खिनी में प्राप्त उदाहरण जैसे- बरक(वर्षा), भूकन(भूषण), मूस(मूष), पुहुप(पुष्प) शब्दों में मूर्द्धन्य 'ष्' की जगह क्, स्, ह् का प्रयोग मिलता है। जो भी मूर्द्धन्य 'ष्' युक्त उदाहरण प्राप्त हैं वे संस्कृत तत्सम शब्द हैं। जैसे- निष्फलाँ (७६-२२,हि०ना०)। इस 'ष्' का प्रयोग श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक नामक पुस्तक में काफ़ी संख्या मिलते हैं। इसी तरह साहित्यिक मानक हिन्दी में संस्कृत शब्दों की वर्तनी में यह ध्वनि लिखी जाती है। "किन्तु मानक हिन्दी में यह ध्वनिग्राम नहीं है, बल्कि तालव्य 'श' की एक सहध्वनि है।"[७] इसलिए भले 'ष' लिखा जाए लेकिन उच्चारण वास्तव में तालव्य 'श' का ही होता है।

७) फ़ारसी में ङ्, ञ् और ण् के लिए चिह्न नहीं हैं। इसका प्रभाव दक्खिनी में भी देखने को मिलता है। ञ् का दक्खिनी में प्रयोग ही नहीं है। ङ् का जो उदाहरण प्राप्त है(वाङ्गधुर्य.७५-२५,हि०ना०)। उसे देखने पर कहा जा सकता है कि यह संस्कृत अनुनासिक संधि के पर्यवसान में ही मिलती है। 'ण्' के स्थान पर 'न्' का प्रयोग दक्खिनी में होता है। हिन्दी भाषा के प्रभाव स्वरूप कुछ शब्दों जैसे-

कण्ठ (१६-४, मन)
कुण्डलाँ (१६०-७, सै)

में यह ध्वनि दक्खिनी की रचनाओं में दिखती है। जबकि द्रविड़ भाषाओं में ङ्, ञ्, ण् और न् के स्थान पर 'म्' का उच्चारण होता है। लेकिन साथ ही महाराष्ट्र और कर्नाटक क्षेत्र के लोग दक्खिनी बोलते समय 'ण्' का उच्चारण करते हैं। डॉ.ज़ोर की पुस्तक 'हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स' में भी 'ण्' की चर्चा

नहीं है। डॉ.श्रीराम शर्मा कहते हैं कि- "विशेष रूप से 'ण्' के संबंध में निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि ब्रज की तरह दक्खिनी में 'ण्' का अभाव रहा है अथवा उसका उच्चारण किया जाता था। इस समय 'प्' वर्ग से संयुक्त होने वाले अनुनासिकों को छोड़कर शेष अनुनासिकों को स्थान पर 'न्' लिखा जाता है।"[८] और वैसे भी दक्खिनी की प्रवृत्ति अनुनासिकों के स्थान पर पूर्वस्वर को अनुस्वरित करने की ओर है। हिन्दी की तरह दक्खिनी में भी न् और म् ध्वनियाँ स्वररहित और स्वरसहित दोनों प्रकार से उच्चरित होती हैं। आज हिन्दी में भी ञ् और ण् के स्थान पर न् का ही प्रयोग होता जा रहा है, जैसे- चञ्चल, पण्डित की जगह चंचल, पन्डित। इसी प्रकार ङ् तथा अन्य पंचम अनुनासिक व्यंजनों के स्थान प्रयोग देवनागरी लिपि में अनुस्वार लिखा जाता है।

८) दक्खिनी में अनुनासिकों का महाप्राण रूप प्राप्त होता है। मराठी के प्रभाव से ऐसा देखने को मिलता है कि न्- न्ह्, म्- म्ह्, ल्- ल्ह्, र्-र्ह का रूप दक्खिनी में आ गया है। हिन्दी के विद्वानों ने भी इन्हें महाप्राण रूप माना है। उदा०[९]

म्ह्- ब्राम्हण(ब्राह्मण), म्हाड़ी(मैड़ी, अटारी)
ल्ह्- ल्हउ(रक्त)
र्ह्- मर्हाटा(मराठा), र्हास, र्हना(नहीं तो मूंच ले मूं चुप र्हना है- फूल)

डॉ.ज़ोर ने इन्हें स्वतंत्र स्वर नहीं माना है। उनका कहना है कि इनके लिए कोई अलग चिह्न नहीं है। 'ल्ह्' के संबंध में कहते हैं कि- "It has no separate symdol in orthography and is generally produced when a final l,is followed by a syllable begining with an h sound."[१०] यही बात वे अन्य र्ह्, म्ह्, न्ह् के सम्बन्ध में भी कहते हैं। हिन्दी में म्ह्, न्ह्, ल्ह् का प्रयोग शब्द के आदि में नहीं होता है, जबकि दक्खिनी में शब्द के आदि में इनका प्रयोग मिलता है।

हिन्दी की कुछ बोलियों में लुण्ठित 'र्' के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का 'र्' बोला जाता है। इस 'र्' को कठोर 'र्' की संज्ञा दी जा सकती है। दक्खिनी में इस तरह का कठोर 'र्' नहीं है। दक्खिनी में जो 'र्' उच्चरित होता है वह कई बोलियों के 'र्' की तुलना में कोमल है। मराठी और कन्नड़भाषी क्षेत्र के ग्रामीण जन बोलचाल की दक्खिनी में मूर्द्धन्य 'र्' का उपयोग करते हैं।

९) अरबी ध्वनि 'हमज़ा' दक्खिनी में अरबी-फ़ारसी शब्दों में प्रयुक्त हुई है। हिन्दी में

विसर्ग का प्रयोग प्राय: संस्कृत शब्दों के साथ ही होता है, अन्यथा नहीं। दक्खिनी में विसर्ग है ही नहीं। हिन्दी की तरह दक्खिनी में विसर्ग संस्कृत शब्दों के साथ ही आया है। 'हिन्दुस्तानी नाटक' पुस्तक में ही ये देखने को मिलता है।

१०) ह् के पहले हिन्दी के शब्दों में जो 'अ' होता है उसका उच्चारण दक्खिनी में पंजाबी की तरह 'ऐ' रूप में होता है। जैसे- टहलता, ठहरते, पहला, शहर की जगह टैलता, ठैरते, पैला, शैर में 'ह्'-ध्वनि ग़ायब होकर अगले अक्षर में जा मिली है। कह्-धातु के रूपों में 'ह्' का लोप ही हो गया है। उदा० कया(कह्या), कता(कहता) आदि। डॉ.शर्मा का कहना है कि- "'य्' के पूर्व हलन्त 'ह्' कण्ठय न रहकर औरस्य हो जाती है। वायु झटके के साथ कण्ठ से बाहर निकलती है।"[११] इसी प्रकार 'न्ह्' की जगह 'न्' और 'म्ह्' की जगह 'म्' ध्वनियाँ भी मिलती हैं-

पिनाना(पिन्हाना), पैनना(पैन्हना-पहनना), कुमलाते(कुम्हलाते)।

११) दक्खिनी की यह विशेषता रही है कि यदि पास-पास के दो अक्षरों में दोनों दीर्घ स्वर हों तो पहले का उच्चारण कभी-कभी ह्रस्व हो जाता है- अदमी, अस्मान, सुँगना(सूँघना), सफ़ई आदि। यह प्रवृत्ति पंजाबी में भी है।

१२) दक्खिनी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अल्पप्राण में मिलती हैं-

- मुँज, देक, मूरक, लाक
- पिगल, घूँगट
- बिचड़ावे, कुच, पूच
- उट(उठ)
- आदा, अन्दकार, सादना
- जीब, बी
- बड़ाई, सीड़ी(सीढ़ी), गड़(गढ़), आदि।

दूसरी ओर अपेक्षकृत कम शब्दों में महाप्राणीकरण की प्रवृति भी विद्यमान है-

लट्ठू(लट्टू), उल्ठे, फंखड़ियाँ, भोत(बहुत), भार(बाहर), धई(दही), भैलाना(बहलाना), र्‌हैता(रहता) आदि।

१३) उत्तर भारत में बोलचाल की भाषा में जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्द्धन्य ध्वनियाँ पास-पास के अक्षरों में आती हैं, वहाँ दक्खिनी में पहली के स्थान पर दन्त्य ध्वनि आ जाती है। जैसे- तूटे, तेडीच(टेड़ी ही), थंडी, दबटना(डपटना), धूँड़ते(ढूँड़ते), तुकड़ा(टुकड़ा), थुड्डी(ठुड्डी) आदि।

१४) द्वित्व व्यंजन और उसके पहले प्राकृत का ह्रस्व स्वर भी दक्खिनी के बहुधा शब्दों में मिलता है। जबकि मानक खड़ी बोली में शब्द के मध्य का दीर्घ व्यंजन ह्रस्व हो जाता है और प्रतिकार में पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ। उदा० हत्ती(हाथी,२८-२४सब), मिट्ठा, फिक्का, सुक्का, उप्पर, दुक्कान, रुक्का(रुक)। यह प्रवृत्ति पंजाबी में भी पाई जाती है। या यूं कह सकते हैं कि पंजाबी का प्रभाव दक्खिनी पर है। दक्खिनी में दीर्घ व्यंजन(द्वित्व) मिलता है; जैसे- डल्ली(डली), तल्ला(तला), गुल्लाब(गुलाब), गल्ली(गली), तव्वा(तवा), नद्दी(नदी) आदि। यह विशेषता उत्तर भारत की है जो दक्खिनी में भी मौजूद है।

१५) हिन्दी के 'न्द्', 'न्ध्' के स्थान पर दक्खिनी में 'न्' रह गया है; जैसे- चाननी(चान्दनी), फुनना(फुन्दना), गुनना(गुन्धना), बानना(बान्धना)।

१६) हिन्दी का 'म्ब' की जगह दक्खिनी में 'म्म' बोला जाता है। जैसे- गुम्मज़(गुम्बद), कम्मल(कम्बल), समालना(सम्भालना)।

१७) दक्खिनी में 'ड़्' की अपेक्षा 'ड्' का प्रयोग अधिक व्यापक है।

१८) दक्खिनी हिन्दी की संयुक्त व्यंजन व्यवस्था हिन्दी की व्यवस्था के तुल्य है। आदि, मध्य और अंत्य संयोग लगभग समान हैं। हिन्दी का आदि व्यंजन संयोग छः प्रकार का है जबकि दक्खिनी में आदि व्यंजन संयोग के चार प्रकार मिलते हैं।

द्वित्व व्यंजन संयोग में भी दोनों भाषाओं की प्रकृति एक है। त्रि-व्यंजन संयोग में दक्खिनी में हिन्दी, दक्खिनी और अरबी-फ़ारसी के शब्द दिखाई देते हैं। लेकिन हिन्दी में अधिकतर तत्सम शब्दों में ही यह संयोग उपलब्ध है। इसके अलावा चार व्यंजनों का संयोग शब्द भी हिन्दी में आया है, परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं है।

१८) ध्वनि परिवर्तन के अन्तर्गत स्वरागम और व्यंजनागम की तीनों स्थितियाँ दोनों भाषाओं में मिलती हैं। स्वर भक्ति के कारण मूल शब्द बोलचाल का शब्द बन गया है। साथ ही इसमें अल्पप्राणीकरण भी हुआ है। जैसे- मूर्ख का मूरक। ये प्रवृत्ति दोनों

भाषाओं में दिखती है। हिन्दी में बोलचाल एवं उसकी बोलियों में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है।

लोप की प्रकृति भी दोनों भाषाओं में लगभग समान है। ये तीनों आदि, मध्य और अंत्य स्थितियों में पाई गयी है। स्वर-व्यंजन लोप में दक्खिनी में केवल मध्य और अंत्य स्थिति मिलती है। जबकि हिन्दी में ये तीनों स्थितियों में मौजूद है।

१९) उच्चारण की सुविधा के लिए ध्वनियों का स्थान विपर्यय दक्खिनी की एक विशेषता है। जैसे- होदा(ओहदा), जनावर(जानवर), उलंग(उंगल), नहना(नन्हा), पशेमान(परेशान)। हिन्दी में अक्षर विपर्यय पाया जाता है लेकिन दक्खिनी में इसका अभाव है।

२०) दक्खिनी में क्षतिपूर्ति के रूप में पूर्व ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण प्रायः पाया जाता है-

मुख > मुह > मूँ १७०-१८ |कु|

हस्ती > हाती २३-१३ |मन|

२०) ह्रस्वीकरण एवं दीर्घीकरण की प्रवृत्ति दक्खिनी में बहुतायत में मिलती है। कह सकते हैं कि यह इस भाषा की पहचान है। दक्खिनी में अधिकतर ये आदि और मध्य में पाई जाती है। हिन्दी में यह तीनों स्थितियों में आती है।

आसमान > असमान ३७-८ |कु|

चींटी > चिमटी २८-२४ |सब|

२१) समीकरण की दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ दोनों भाषाओं में समान रूप से मिलती हैं।

२२) दक्खिनी में हिन्दी के समान नासिक्य व्यंजन का लोप होकर उसकी जगह अनुनासिकता आ गई है।

२३) अन्य अनेक प्रवृत्तियाँ जैसे कंठ्यीकरण, अघोषीकरण, सघोषीकरण, दंत्यीकरण, मूर्धन्यीकरण, स्वरादेश, संधिकरण, ऊष्मीकरण आदि के उदाहरण दोनों भाषाओं में कम-ज़्यादा रूप में पाए जाते हैं। दंत्यीकरण के उदाहरण इन अन्य प्रवृत्तियों के उदाहरणों के बीच अधिक पाए जाते हैं। ध्वनि परिवर्तन में संधिकरण दक्खिनी में न के

बराबर है या है ही नहीं। अघोषीकरण और सघोषीकरण की दिशा में दोनों भाषाओं में उदाहरण प्राप्त हैं।

[१] हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास - डॉ.उदयनारायण तिवारी, पृ.३२०-३२१

[२] हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स - डॉ.मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर, पृ.५३

[३] दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास- डॉ.श्रीराम शर्मा, पृ.३१

[४] वही, पृ.३२

[५] वही, पृ.३२-३३

[६] वही, पृ.३८

[७] मानक हिन्दी का ऐतिहासिक व्याकरण, पृ.२१

[८] दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास, पृ.४२

[९] वही, पृ.४५

[१०] हिन्दुस्तानी फॉनेटिक्स, पृ.९०

[११] दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास, पृ.४६

७.२ व्याकरिणक विवेचन

१) साहित्यिक खड़ी बोली में व्यंजनान्त पुलिंग संज्ञाओं की अविकारी विभक्ति के एक० और बहु० दोनों में एक ही रूप रहता है जैसे चोर आया, चोर आए। पर दक्खिनी में बहु० के लिए अविकारी में भी -आँ जोड़ दिया जाता है, यथा- फूल-फूलाँ, गुलाम-गुलामाँ, दोस्त-दोस्ताँ आदि उदाहरण पिछले अध्याय में देखे जा सकते हैं।

२) व्यंजनान्त स्त्री० संज्ञाओं की अविकरी विभक्ति का बहु० साहित्यिक खड़ी बोली में -एँ, -ऐं जोड़ कर बनाया जाता है जैसे किताब-किताबें। पर दक्खिनी में पुलिंग की तरह -आँ ही जोड़ कर बनाए हुए रूप बहुधा मिलते हैं, जैसे- किताब-किताबाँ, औरत-औरताँ।

३) साहित्यिक खड़ी बोली की इकारान्त-ईकारान्त स्त्री० संज्ञाओं में इस अविकारी विभक्ति के बहु० में -याँ जुड़ता है, उसी तरह दक्खिनी में भी, यथा- लड़की-लड़कियाँ, सखी-सखियाँ, अंतड़ी-अंतड़ियाँ। इसके अलावा दक्खिनी में ईकारान्त स्त्री० न, र, ल, व सहित कुछ शब्दों में ईकारान्त का लोप होकर अन्त में -याँ जुड़ जाता है और अन्त व्यंजन अध्याक्षर हो -याँ से जुड़ता है; जैसे- परी-पर्या/पर्याँ, कली-कल्याँ, गवी-गव्याँ, दीवानी-दीवान्याँ।

४) साहित्यिक हिन्दी में आकारान्त पुलिंग का बहु० -आ के स्थान पर -ए(लड़का-लड़के) आदेश करके बनता है जो कि दक्खिनी में भी कई जगह प्राप्त होते हैं। पर साथ ही दक्खिनी में -याँ जोड़कर भी पु० बहु० के उदाहरण मिलते हैं; जैसे- भला-भल्याँ, तलवा-तलव्याँ।

५) साहित्यिक खड़ी बोली की विकारी विभक्ति के बहु० में सब संज्ञाओं में -ओं या -यों जोड़ा जाता है, पर दक्खिनी में -ओं रूप अपवाद हैं, सब कहीं -आँ, -याँ रूप ही मिलता है, यथा- औरताँ, अँखियाँ, मुसल्मानाँ आदि। कारक प्रत्यय के साथ प्रयुक्त होने पर -ओं, -औं का प्रयोग मिलता है, जैसे- आँखों से, पात्रों कु, मनुष्यौं कु, हाथौं कु।

६) हिन्दी में जहाँ संज्ञा को दुहरा देते हैं; जैसे- घर-घर, वहाँ दक्खिनी में दुहराते समय पहली संज्ञा के अन्त में -ए, -एँ जोड़ देते हैं, यथा- घरे घर, राते रात।

७)   दक्खिनी में कई जगहों पर जैसे देशों, शहरों, ग्रहों, नदियों में हिन्दी की लिंग-व्यवस्था के नियम का पालन हुआ है। अकारान्त, आकारान्त और इकारान्त शब्दों में हिन्दी के यथावत पु० और स्त्री० का व्यवहार देखा जा सकता है। लेकिन दक्खिनी में लिंग का बहुधा व्यत्यय(उल्लंघन) ही मिलता है। हिन्दी की पु० संज्ञा कहीं स्त्री० में और कहीं स्त्री० संज्ञा पु० में पाई जाती है। विदेशी शब्दों में यह बहुधा देखा गया है। उदा० के लिए-

मेरा रूह परवाने के १९-७ सै।
शराब माशूक़ का मुशाता २५-२ सब।
दही का छाच हुआ ९१-२१ सब।
उनका इच्छा मंजूर १००-८ हि.ना।
मेरी रूप कितना है? १८-७ हि.ना।

८)   जहाँ कारक-व्यवस्था की बात है दक्खिनी में हिन्दी कारक-व्यवस्था से मिलती है। कर्ता कारक प्रत्यय 'ने' के प्रयोग में व्यवस्थ और अव्यवस्थत रूप दोनों मौजूद हैं। उदाहरण के लिए-

कबूल आपने जीवन दिल सूँ किया ३५-१८ ।सै।
खुदा के दोस्ताँ ने बोले हैं १७-१८ ।सब।

अन्य कारकों के परसर्गों का प्रयोग हिन्दी के समानान्तर है। अन्तर केवल इतना ही है कि इन कारकों के विभिन्न रूप दक्खिनी में मिलते हैं। जैसे- कर्म कारक का 'को' परसर्ग दक्खिनी में कों, कु, कूँ रूप में आया है। साथ ही संप्रदान कारक को, के लिए के अतिरिक्त कु, कू, कूँ, के तईं का प्रयोग दक्खिनी में हुआ है। दक्खिनी में करण कारक का परसर्ग 'से' के अलावा सती, सिते, सूँ, सो, ते आदि परसर्ग प्रयुक्त हुए हैं। करण कारक का 'द्वारा' परसर्ग दक्खिनी में नहीं मिलता। इसी तरह अन्य कारकीय रूपों में पो, पे, मने, ताईं, कें, केरा, केरी, केरे जैसे परसर्गों का प्रयोग दक्खिनी में हुआ है। संबोधन कारक में हिन्दी के परसर्गों के साथ तत्सम परसर्ग भगवन्ता, अरबी-फ़ारसी परसर्ग वस्सलाम, बन्दा प्रयुक्त है। भो, होय रे, ऐरे, दाद, हा -परसर्ग संबोधन-कारक में आए हैं।

९)   हिन्दी में चार प्रकार के प्रत्यय हैं- तत्सम, तद्‌भव, देशज, विदेशी। दक्खिनी में भी लगभग ये प्रत्यय मिलते हैं। देशज के अन्तर्गत ड़ा, ड़ी प्रत्यय दक्खिनी में प्राप्त हैं। जबकि अक्कड़, आकू जैसे देशज प्रत्ययों का इस्तेमाल नहीं दिखाई देता। बाकी तीनों

प्रकार के प्रत्यय दोनों भाषाओं में प्रायः समान हैं। दो या अनेक प्रत्ययों के योग से बने शब्द हिन्दी और दक्खिनी में हैं। उदाहरणतः-

हिन्दी-	रंगीनी (रंग+ईन+ई),	भारतीयता(भारत+ईय+ता)
दक्खिनी-	जलनहारी(जल+न+हार+ई),	दुनियादारी(दुनिया+दार+ई)

दोनों भाषाओं के प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी प्रत्ययों में समानता है। अरबी-फ़ारसी शब्दों में दो या अधिक प्रत्यय के उदाहरण भी मिल जाते हैं। जैसे- यादगारी(याद+गार+ई), खानदानी(खान+दान+ई)।

१०) उपसर्ग के संबंध में भी यही कह जा सकता है कि हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त उपसर्ग समान हैं। किन्तु हिन्दी में जहाँ अंग्रेज़ी उपसर्गों का प्रयोग हुआ है वहीं दक्खिनी में उनका सर्वथा अभाव है। खासतौर से तत्सम शब्दों में ही उपसर्ग और प्रत्यय का योग है, जो दोनों भाषाओं में दिखता है।

११) साहित्यिक खड़ी बोली के अन्य पुराने ग्रन्थों की तरह दक्खिनी में सर्वनाम शब्दों की बहुरूपता मिलती है।

उत्तम-पुरुषवाचक सर्वनाम में बहु० में हम, हमैं के अलावा हमन, हमना, हमनाँ -रूप भी इस्तेमाल में आए हैं और इनका अर्थ विकारी विभक्ति का या अविकारी का या विशेषण का हुआ है जैसे- हमन(हम) ते, हमना ते, हमन पर, हमन(हमारे) ख़्वाब में, हमना कूँ(हमको), हमनहेच(हम ही)। एक० के रूप मुजकों, मुँजे, मुज कूँ, मिजे आदि में 'झ' का 'ज' हो जाना दक्खिनी में स्वाभाविक ही है।

मध्यमपुरुष में भी तुमन, तुमना, तुमनाँ, तुमारा, तुमे रूप उत्तमपुरुष के हमन, हमना के वज़न से मिलते हैं, जैसे तुमनाँ कूँ, तुमकु, तुमें। तुमारे, तुमारी रूप में महाप्राणत्व का लोप हो गया है। एक० में तुज, तुझे, तुजे आदि रूप हैं और 'तुज' रूप तेरा, तेरे के अर्थ में भी इस्तेमाल हुआ है, जैसे- "तुज सूँ(तेरे से) कुछ मुहब्बत धरेगा"(५७-१५, सब)।

अन्यपुरुष के एक० में अक्सर 'वो' रूप मिलता है और कभी कभी 'ओ', 'सो' और ' 'वह'। कर्मवाचक उस, उसे के स्थान पर कई रूप मिले हैं, यथा- "अथे घोड़े पागाह में नौलाख उसे(उसके)"(२६-११, सै)।

बहु० में विकारी और अविकारी दोनों विभक्तियों में उनो, उनों रूप बहुधा मिलता है, जैसे- "ऐसी च अक़्ल ते उनो की बढ़ाई(४८-१२, सब)।" उनो के, उनन कू, उनो में

आदि रूप हैं।

दूरनिर्देशवाचक सर्वनाम भारतीय भाषाओं में अन्यपुरुषवाचक के ही रूप ग्रहण करता है। निकट-निर्देशवाचक के यो, ये, ए, यह, इने रूप मिलते हैं।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम के एक० में जो, जु, ज, सो, जिसे और बहु० में जिने, जिनो, जिन्ने आदि रूप हैं।

निजवाचक सर्वनाम के बहुतेरे- आप, अपस, अपन, आपन, अपें, अपै, आपै आदि रूप मिलते हैं। जैसे- "नज़ाकत को मैं आपने(अपने) ख़्याल थे"(२२-७, सै)।
"दोनों किये अपस कूँ फ़रामोश"(५५-१९, सब)।

प्रश्नवाचक सर्वनाम अप्राणिवाचक 'क्या' और प्राणिवाचक 'कोन', 'कौन' हैं। बहु० का रूप किन है, यथा- किनने, किनकु।

सर्वबोधक सर्वनाम 'सब', 'सभी' हैं।

अनिश्चयवाचक अप्राणिबोधक कुछ, कुच, कुच्छ और प्राणिवाचक किने, कोइ, कोय, किस आदि।

सम्बन्धवाचक और अनिश्चयवाचक को जोड़कर बोलने का जो चलन उत्तर भारत में है वह दक्खिनी में भी मौजूद है। इनमें 'जो' का कभी 'जु', 'ज' हो गया है, यथा- जु कोई, जकुच।

१२) सर्वनाम-विशेषणों में साहित्यिक खड़ी बोली में ना, नी वाले रूप (जितना, जितनी, जितने) ही मान्य हैं, पर दक्खिनी में ये कम मिलते हैं और साधारण बोलचाल के (-ता, -ती, -ते) रूप अधिक, जैसे- जेता, केता, किते।

१३) संख्यावाचक शब्दों के भी कई ऐसे रूप मिलते हैं जो साहित्यिक खड़ी बोली में मान्य नहीं है। एक के लिए एकस, यक, येक, यक्स, एक्स रूप दक्खिनी में हैं। सामासिक रूपों में भोतेक, हरेक, कितेक, हरयक उदाहरण प्राप्त हैं।

दो के लिए दोय, दुई रूप मिले हैं। दू(दूसरे, दुसरा, दूजा), दो(दोधारी, दोजा,

दोनू) इसके सामासिक रूप विवेच्य कृतियों में मिलते हैं।

तीन, चार, सात, नौ, दस अपने मूल रूप ही हैं। पाँच के साथ पंज का प्रयोग हुआ है। छः का छे, छठा -रूप मिलते हैं। 'आठ' साहित्यिक रचनाओं में नहीं है। जबकि इसका सामासिक शब्द 'अठारा' एक रूप मिला है। नौ का सामासिक रूप नव(नवरतन) और नौ(नौबहार) हैं। ग्यारह की जगह अग्यारह और पच्चीस के लिए पचीस शब्द आए हैं। नब्बे के लिए 'नवद' और निन्यान्वे के लिए 'नवद नौ' ये रूप प्रयोग में आए हैं। ग्यारह से लेकर उन्नीस तक और अन्य संयुक्त संख्यावाचक विशेषणों का रूप खड़ी बोली हिन्दी से मिलता है। दोनों, तीनों, चारों के लिए अनुस्वार-रहित और अनुस्वार-सहित रूप मिले हैं।

अपूर्णांकबोधक गणनासूचक विशेषण हिन्दी और दक्खिनी में अपने मूल रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। अतः ये दोनों भाषाओं समान हैं। क्रमवाची विशेषणों में दक्खिनी पर अरबी-फ़ारसी का प्रभाव अधिक है। लेकिन हिन्दी के भी रूपों का प्रयोग बराबर हुआ दिखता है।

अनिश्चयवाचक विशेषण में 'अधिक' की जगह 'अदिक' का प्रयोग हुआ है।

१४) 'ही' का अर्थ साहित्यिक खड़ी बोली में पूरा शब्द जोड़कर किया जाता है(किताब ही, आप ही, सभी) पर बोलचाल में केवल -ई बहुधा 'ही' की जगह ले लेता है(किताबी, आपी आदि)। दक्खिनी में भी कहीं कहीं -ई या -ईं ही मिलता है, जैसे- आपी, आपीं, हमी, हमीं(१२७-३६, सै), तू ई(७९-१५, सब)। अन्यथा 'ही' वाले रूप तूँहीं, तुहीं भी मिलते हैं। इनके अलावा -च में अन्त होने वाले इसी अर्थ के द्योतक रूप बहुतायत से मिलते हैं, यथा-

तू ई च है...(७९-१५, सब),
बात एकी च।(७८-१४ सब)

'ही' के साथ भी -च का प्रयोग हुआ है, जैसे- "इश्क़ करते सो दीवाने ही च"(८०-१,सब)।

१५) दक्खिनी में क्रियाविशेषण, समुच्चयबोधक आदि अव्ययों के बहुतेरे प्रयोग स्टैंडर्ड हिन्दी से भिन्न हैं।

स्थानवाचक क्रियाविशेषणों में जधाँ, जाँ, याँ, व्हाँ, वाँ, वां, वईं, काँ, आँगे, अंगे,

भितर, कना, जां तां, पिछें, नज़िक आदि पाए जाते हैं।

'संग' के लिए सँगात, 'साथ' के लिए सात, 'पास' के लिए कन, कने, 'तरह' के लिए धात और 'नीचे' के लिए तल तथा 'ऊपर' के लिए उपर, उपराल शब्द इस्तेमाल हुए हैं।

परिमाणवाचक में बहुत के लिए भोत, भौत, बहोत आया है। साथ ही कुच, इता(इतना), एता(इतना) का प्रयोग मिलता है। अरबी-फ़ारसी से आए हुए परिमाणवाचक विशेषण खूब, सब, तमाम, ज़रा, थोड़े, सारे, चन्द आदि हिन्दी में भी प्रयोगरत हैं।

समयवाचक अव्ययों में आज के लिए अझू, अझूँ, अजूँ, अजहूँ प्रयुक्त हुए हैं। अब के लिए अताल, अभी के लिए अधी का प्रयोग मिलता है। तक के लिए अरबी-फ़ारसी से आगत 'तलक' शब्द का प्रयोग हुआ है।

अवधिसूचक अव्ययों में अरबी-फ़ारसी से आगत शब्दों अव्वल, अवल, आख़िर, मुदाम आदि का प्रयोग है।

-ए के स्थान पर -य का प्रयोग दक्खिनी की अपनी विशेषता है। एकाएक के स्थान पर यकायक का इस्तेमाल द्रविड़ भाषा के प्रभाव स्वरूप है।

साहित्यिक खड़ी बोली में समुच्चयबोधक अव्यय 'और' है पर दक्खिनी में परवाचक और' है तथा समुच्चयबोधक हौर/होर में काफ़ी अस्पष्टता दिखाई देती है। कहीं समुच्चयबोधक 'और' हौर/होर के रूप में आया है तो कहीं अपने मूल रूप में भी इस्तेमाल किया गया है। यथा-

"सो करनाटक होर(और) गोर गुजरात कियाँ।"(५८-४, कु)
"...और क़तरा जोश नहीं खाता।"(१०६-२५, सब)

'हौर' का प्रयोग पश्चिमी हिन्दी के प्रभावस्वरूप है।

रीतिवाचक में ज्यूँ, ज्यूं, जू, जूँ, यूँ, त्यूँ, सो, सूं, कें, हल्लू क्रियाविशेषणों का प्रयोग हुआ है। इनके अलावा अन्य रीतिवाचक विशेषण हिन्दी के ही हैं। हिन्दी के 'भी' के स्थान पर 'बी' का प्रयोग साहित्यिक दक्खिनी में सामान्य है।

नकारात्मक तथा स्वीकारात्मक अव्यय में हिन्दी के शब्दों के अलावा नईं, वलेकिन, वले, नको जैसे शब्दों का प्रयुक्त हुए हैं। बेशक, शायद, हरगिज़, अलबत्ता अरबी-फ़ारसी शब्द आए हैं।

अरबी-फ़ारसी से आगत अन्य अव्ययों में गरचे, गर, व, दुंबाल, दुंबाला, मिसाल, बगैर, बज़ज़, ख़ातिर आदि शब्दों को देखा जा सकता है।

विस्मयादिबोधक अव्यय अहहा !, के ए !, के अलावा अधिकांशतः हिन्दी में प्रयोग आने वाले अव्यय ही हैं।

दक्खिनी हिन्दी में अवधारणावाचक अव्ययों पर मराठी का प्रभाव पड़ा है।

विशेष- उल्लेखनीय है कि दक्खिनी हिन्दी के बोलचाल रूपों में ऐसी कुछ विशेषताएँ हैं जो साहित्य में नहीं मिलती हैं। जैसे -सी, -गा, -गी रूप दक्खिनी की आम बोलचाल में सुनाई देती हैं। बोलचाल में 'हेगा, हेगी' सम्बोधन अव्यय है।

ऊपर दिए गए विवरण से दो बातें साफ़ मालूम होती हैं। एक कि इस साहित्यिक दक्खिनी में रूपों की विभिन्नता है जो कई बोलियों का सम्मिश्रण जतलाती है। '-सी' वाले भविष्यकाल के रूप पंजाबी के से लगते हैं, पर इनकी निस्बत -गा, -गी रूप ही अधिक हैं जो खड़ी बोली हिन्दी के ही निजी हैं। कारकों में केरा, केरी तथा अपेक्षित स्त्री० के स्थान पर पु० का प्रयोग पूरबीपन का द्योतक है, पर ऐसे प्रयोग कम ही हैं। -आँ में अन्त होने वाले, संज्ञाओं के बहु० के रूप, विशेष रूप से खड़ी बोली से भेद प्रकट करते हैं। पर सभी विभेदों पर सामान्य दृष्टि से विचार करने से नतीजा यही निकलता है कि दक्खिनी, खड़ी बोली का ही पूर्वकालीन रूप है। प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने वाले जानते हैं कि अन्यत्र भी इस तरह का बोली-भेद मिलता है। उदाहरणार्थ पालि भाषा में ही व्याकरण और ध्वनि संबंधी एक-रूपता नहीं है।

७.३ शब्द विवेचन

पूर्व अध्यायों में हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी के शब्द-भण्डार के विश्लेषण के बाद यह कहा जा सकता है कि स्वभावत: दक्खिनी के शब्द-भण्डार में अन्य हिन्दी बोलियों की अपेक्षा अरबी-फ़ारसी शब्दावली की अधिकता है, किन्तु बोलचाल में इन शब्दों के प्राय: तद्भव रूप चलते हैं, जैसे दरद(दर्द,८०-२२,सै), वखत(वक़्त), बिचारा(बेचारह), जागा(जगह), बलक(बल्कि), जनावर(जानवर)। हिन्दी की शब्दावली अपनी निकटतम बोलियों के शब्दों का उपयोग करती रही है। इसमें तत्सम तथा तद्भव शब्दों का उपयोग बराबर हुआ है। लेकिन तद्भव शब्दों के प्रयोग की ओर लेखकों का ध्यान ज्यादा रहा। बोलचाल की भाषा में भी तद्भव शब्दों का उपयोग सामान्य व्यक्ति करता है। दक्खिनी के ग्रन्थों में भारतीय शब्दों का केवल अनुपात ही अधिक नहीं है, बहुतेरे शब्द तत्सम रूप में मिलते हैं जो आज साहित्यिक उर्दू में मतरूक हैं, जैसे अंग, अखंड, अरण्य, चंद्रभान, दिवाकर, निवारण, रंगस्थल, शंख आदि। दक्खिनी में हिन्दी व अरबी-फ़ारसी के शब्द जितनी मात्रा में पाए जाते हैं उतनी मात्रा में हिन्दी में अरबी-फ़ारसी शब्दों का नहीं दिखाई देता। दक्खिनी हिन्दी में हिन्दी की बोलियों का रूप-बाहुल्य मिलता है। इसी तरह शब्दावली में रूप-बाहुल्य हैं। एक ही शब्द तत्सम(संस्कृत अथवा फ़ारसी-अरबी) रूप में एक जगह मिलता है तो दूसरी जगह तद्भव रूप अनेक हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं- अदिक, अदिख(अधिक); अमरीत, अमरोत(अमृत); उलास, उलासा(उल्लास); उसास(साँस); पहिराना, पैनाना, पिन्हाना(पहनाना); अवकल(बेकल); अलक(अलख, अलक्ष्य); अँधारा, अँधार(अँधेरा); उरगन(उडुगण-तारे); पिरित, पिरत(प्रीती); जालना(जलाना); दुकाल(दुष्काल); धरत, धरती, धरतरी (धरित्री); अभाल(बादल); पतियारा(विश्वास); बैसना(बैठना); पैसना(घुसना); उतराई(बदला); चूला(चूल्हा); हिरदय(हृदय); घिउ(घी); जिउ(जी, जीव); न्हाटना, न्हासना(नाश करना) आदि।

जिस तरह फ़ारसी शब्दों के रूप विकृत अवस्था में मिलते हैं उसी तरह भारतीय शब्दों के भी मिलते हैं। यथा-

म्हाड़ी(मढ़ी), मंधिर(मन्दिर), सिंघार(सिंगार), नियारा(न्यारा), परधान(प्रधान), सुन्नार(सुनार), हत, हस्त(हाथ), घरदार(घरबार), घाबरा(घबराया) आदि।

कुछ क्रिया-शब्द जो साहित्यिक शैली में हिन्दी में नहीं मिलते, दक्खिनी में मौजूद हैं, जैसे- उचाना(ऊपर उठाना), दिसना(दिखाई देना), सपड़ना(बनना), चितरना(चित्रित करना), माना(समाना), निझाना(देखना) आदि।

दक्खिनी के ग्रन्थों में बहुत से ऐसे शब्द हैं जो उत्तर भारत की साहित्यिक हिन्दी में क्या, बोलचाल में भी नहीं मिलते। इनमें से कुछ आर्य-भाषा परिवार के हैं, पर कुछ अवश्य द्राविड़ या मुंडा परिवार की भाषाओं से लिए हुए जान पड़ते हैं। उदाहरण के लिए- अँपड़ना(पहुँचना,५६-६,सब), अँपाड़ना(पहुँचाना,८८-७,कु), अंझू(आँसू), अड़नाँव(उपनाम), आभाल(छलांग, बादल), झाड़(वृक्ष) आदि। इनके अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रत्यय भी लिए गए हैं, जैसे ये शब्द- डरालू(डरने वाला), उतारू(तैयार), तैरालू(तैरने वाला) आदि।

७.४ वाक्य विवेचन

हिन्दी वाक्य-रचना मुख्यतः मध्यकाल में फ़ारसी से तथा आधुनिक काल में अँग्रेज़ी से प्रभावित हुई है। दक्खिनी हिन्दी पर आरंभ से ही अरबी-फ़ारसी और देशी भाषा का प्रभाव रहा। इन्हीं का सहारा लेकर दक्खिनी का भविष्य रूप निखरा एवं विकास की ओर बढ़ी।

हिन्दी भाषा के तत्व एवं लक्षण देखने पर यह लगता है कि दक्खिनी हिन्दी में भी इनका निर्वाह काफ़ी हदतक हुआ है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में लिंग, वचन और पुरुष का अन्वय हिन्दी के अनुसार तीन वाक्य घटकों के बीच में मिलता है- संज्ञा, विशेषण, क्रिया। यहाँ वाक्य की स्थिति में इसका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है।

१) सामान्यतः संज्ञा के लिंग वचन के साथ क्रिया का अन्वय तभी जुड़ता है, जब संज्ञा कर्ता कारक में प्रयुक्त होती है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी यह अन्वय पाया जाता है। उदा०

अ) हरेक शै मने जल्वा देता है नूर उसका १-१९ ।सब।
उसका जलवा - कर्ता,
देता है - क्रिया, पु०एक०

आ) सुराँ पे वो रागा जमाते अथे ४५-२० ।कु।
वो - कर्ता
जमाते अथे - क्रिया, पु०बहु०

२) जब संज्ञा कर्ता कारक में प्रयुक्त होती है, लेकिन उसके साथ कर्ता कारक प्रत्यय(ने) जुड़ता है तो संज्ञा के लिंग वचन का समन्वय क्रिया के साथ हिन्दी में नहीं जुड़ता। लेकिन यह कर्म के साथ सम्बद्ध रहता है। यही स्थिति साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में भी है। उदा०

अ) अंगूठी निशाँ उस दिए शाह ने १६०-२१ ।कु।
(कर्म बहु०) (क्रि०) (कर्ता एक०)

आ) तुराब ने यूँ किया वस्फे दिल-आराम १-६ ।मन।
(कर्ता) (क्रि०)(कर्म एक०)(कर्म एक०)

३) इसी प्रकार द्वितीय स्थिति में क्रिया का समन्वय कर्म के लिंग वचन के आधार पर जुड़ता है। इस स्थिति में जब कर्म भी कारक प्रत्यय के साथ युक्त होता है तो क्रिया लिंग, वचन समन्वय से निरपेक्ष की ये स्थितियाँ मिलती हैं। उदा०

यो राकस ने आ बन्द पकड्या मुंजे १००-५ ।कु।
(कर्ता) (क्रिया) (कर्म)

खुदा ने उसे यहाँ लाया ७४-१७ ।सब।
(कर्ता) (कर्म) (क्रिया)

४) संज्ञा और संज्ञा के बीच सम्बन्ध कारक स्थिति में भी लिंग, वचन की स्थिति प्रभावकारी होती है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी भी इससे भिन्न नहीं है। उदा०

नहने आदमी का काम घर में आना-जाना १०९-१६ ।सब। (पु० एक०)
आप की पुत्री रत्न हो सीमंतिनी १४५-३ ।हि.ना। (स्त्री० एक०)

५) दक्खिनी हिन्दी के वाक्यों में खड़ी बोली की व्याकरणिक व्यवस्था का उल्लंघन मिलता है। व्याकरण नियमोल्लंघन के उदाहरण खड़ीबोली समकालीन स्थिति को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किए गये हैं। समकालीन स्थिति में हो सकता है कि ये मान्य रूप हों, फिर भी प्रवृत्ति भाषा के विकास की दिशाओं को स्पष्ट करती है। इस दिशा में गहरा अध्ययन और रोचक हो सकता है। कुछ दिशा निर्देशक उदाहरण इस प्रकार हैं-

ने प्रत्यय सम्बन्धी अव्यवस्था :

खुदा के दोस्ताँ ने बोले हैं १७-१९ ।सब।
इस ख़ातिर ज़ुलेखा ने क्या क्या करी ४६-१८ ।सब।
सृष्टि ने सर्वे-सलक्षण-समन्वित कें न होगा १७४-२६ ।हि.ना।
भोताँ ने इस मुहब्बत के बाट में अपना सर ल्याये ९३-२४ ।सब।

लिंग संबंधी अव्यवस्था :

मेरी रूप कितना है? ९८-७ ।हि.ना।
हतेली तेरा लौह उँगली क़लम ६-९ ।सै।
तेरा याद दायम है चारा उसे ७-१२ ।सै।
मेरा जीब बुलबुल हो बोलन लग्या १९-१७ ।सै।
बड़ा खुशी मिलाया ११-१२ ।हि.ना।
बाँद्या दरवाज़ा खोलता ९०-२२ ।सब।
समज थोड़ी लोगाँ में छल भोत है ३३-२२ ।कु।

६)   दक्खिनी की वाक्य रचना में कईं ऐसी विशिष्ठताएँ हैं जो तेलुगु से प्रभावित हैं। सर्वनाम रूपावली में अपन, कोन भी, कोन-सा भी, क्या भी, क्या तो भी, कोन तो भी, क्या कि आदि तेलुगु के प्रभावस्वरूप है। हिन्दी और दक्खिनी वाक्यों में इनके प्रयोग स्तर को नीचे दर्शाया जा रहा है(विवेचित दक्खिनी रचनाओं में निम्न उदाहरण तो नहीं हैं लेकिन भाषा प्रकृति को और अधिक स्पष्ट रूप समझने के लिए बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले वाक्यों को प्रस्तुत किया गया है)-

हिन्दी	दक्खिनी
कोई नहीं है	कोन भी नई
कोई नहीं हैं	कोन भी नई
किसी ने नहीं किया	कोन भी नई करे
इसे कोई नहीं खाता	यो कोन भी नई खाते
जब मैं आई थी,तब कोई नहीं था	मैं आई जब कोन भी नई
कुछ भी खाओ मत	कोई भी खाओ नको
मैंने कुछ भी नहीं किया	मैं क्या भी नई करा
कौन आया? पता नहीं	कोन आया? क्या कि?

उपर्युक्त वाक्यों सहायक क्रिया है, था का लोप दक्खिनी में होता है। इसी तरह कथनात्मक के रूप में बोलके, करके का प्रयोग दक्खिनी में दिखाई देता है। जैसे-

अम्मा ने मुझसे कहा कि तुम जाओ	अम्मा मेरे को जाओ बोलके बोली

प्रश्नवाचक वाक्यों में 'क्या' की स्थिति इस प्रकार है-

क्या शाम को कपड़े लाओगे?	शाम को कपड़े लाते?
क्या रात को घर आओगे?	रात कू घर कू आते?

इसी प्रकार स्थानवाचक और समयवाचक पूरकों के साथ 'कु' और 'कि' प्रयोग दक्खिनी के वाक्यों पाया जाता है या कभी-कभी इनका प्रयोग अदृश्य रूप में किया जाता है जिनके अर्थ को वाक्य पढ़कर ही जाना जा सकता है।

हिन्दी का 'के पास' के लिए दक्खिनी में 'कने' का प्रयोग तेलुगु के कारण है। सम्बन्धवाचक रचना में 'जो....वह' के स्थान पर 'सो' का प्रयोग होता है। इसी तरह अन्य सम्बन्धवाचकों की स्थिति दक्खिनी में हिन्दी से भिन्न है।

उपसंहार

हिन्दी भाषा का इतिहास बहुत रोचक है। इस रोचकता का सम्बन्ध उन कठिनाइयों, मतभेदों से है जो किसी एक मत को स्थिर करने नहीं देतीं एवं जिज्ञासा बनाए रखती हैं। यही बात हिन्दी शब्द के उद्‌भव को लेकर है। इन तमाम विचारों के बीच हिन्दी शब्द का विश्लेषण बहुत जटिल-सा दिखता है। परन्तु यह सर्वमान्य है कि हिन्दी शब्द की उत्पत्ति हिन्द, हिन्दीक से हुई है। 'हिन्द' शब्द ईरानियों के उच्चारण-दोष का परिणाम है जो भारत को मिला और यहाँ इसी रूप में स्थापित हो गया। लेकिन इनके द्वारा यह दूषित अर्थ में प्रयोग होता था। भारतीय पण्डितों ने इसे विपरीत अर्थ में परिभाषित किया जो भिन्न गुणों, अच्छाइयों को समेटे हुए था। इसी अर्थ के साथ यह विकास की सीढ़ी चढ़ता गया। इस विकास में कभी यह हिन्द से जाने वाली वस्तु का पर्याय बना तो कभी यहाँ बसने वाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ। आधुनिक काल में यह भाषा के रूप में उभरा तथा क्षेत्रीय खड़ी बोली का मानक रूप बना। इसके अंतर्गत कई बोलियों को रखा गया जिन्हें हिन्दी क्षेत्र की बोलियाँ माना गया। इससे हिन्दी के भौगोलिक क्षेत्र की सीमा का निर्धारण भी निश्चित हुआ।

दक्षिण में इसके एक रूप का विकास राजनैतिक कारणों से हुआ जो साहित्य में दखनी, दक्खिनी, हिन्दवी, हिन्दुई आदि नाम से जानी गई। दक्षिण के जिस प्रदेश में दक्खिनी का विकास हुआ वह प्रदेश मराठी, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं का समीपवर्ती प्रदेश था। दक्खन प्रदेश में रचनाकारों ने जो साहित्य लिखा उस भाषा को दक्खिनी हिन्दी कहा गया। उत्तर की खड़ी बोली, हरियाणवी, पंजाबी, मराठी, ब्रज, अवधी, गुजराती आदि भाषाओं के समन्वय से इस भाषा का रूप हिन्दी बना। इसके अलावा मुस्लिम-संस्कृति के प्रभावस्वरूप इसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों का समावेश हुआ। लेकिन दक्षिण में उद्‌भुत होने के कारण तेलुगु, कन्नड़ भाषाओं के शब्द भी इसमें आ गए।

यदि मानक हिन्दी का इतिहास लिखा जाए तो वह आधुनिक काल से ही शुरू होगा। परन्तु हिन्दी भाषा के इतिहास का आरम्भ १०००ई. से माना जाता है। इसके इतिहास को अधिकांशतः सभी विद्वानों ने तीन खण्डों में विभाजित किया है। हिन्दी अपने आदि रूप में अपभ्रंश के निकट थी लेकिन उसी समय १०००ई. के आसपास ये अपभ्रंश के प्रभाव से धीरे-धीरे मुक्त हो रही थी। मध्यकाल तक आते-आते हिन्दी का अपना व्याकरण बनने लगा था। वचन, लिंग दो रह गए थे। भाषा वियोगात्मक हो गयी थी।

भक्ति-आंदोलन के प्रभावस्वरूप भाषा तत्समता की ओर झुकने लगी और विदेशी प्रभाव के कारण अरबी-फ़ारसी के शब्द भी उपयोग में लाए जाने लगे थे। आधुनिक काल में हिन्दी का व्याकरणिक रूप स्पष्ट हो गया। हिन्दी-उर्दू खड़ी बोली की दो शैलियाँ बन गईं। हिन्दी में अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, लैटिन आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग बढ़ा। उर्दू अरबी-फ़ारसी के शब्दों से बोझिल हो गई।

हिन्दी का आदिकाल दक्खिनी हिन्दी के उद्भव का काल है। केवल स्थान भेद है। जहाँ हिन्दी उत्तर में विकास कर रही थी, वहीं दक्षिण में इसकी बोलियों का सहारा लेकर दक्खिनी उत्पन्न हो रही थी। अन्तर केवल इतना है कि हिन्दी के नाम पर इस आदिकाल में उत्तर में डिंगल, पिंगल तथा अवधी, ब्रज, खड़ी बोली भाषा में कुछ रचनाएँ हो रही थीं, वहीं दक्षिण में हिन्दवी, हिन्दुई, दक्खिनी के नाम से साहित्य रचना का आरम्भ हो रहा था।

दक्खिनी हिन्दी भाषा के इतिहास के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसका आरम्भिक रूप १४वीं शती से ही बनने लगा था। १५वीं शती से १७वीं शती तक इसका विकास भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में अनवरत होता रहा है। १७वीं शती के बाद लगभग १५० वर्षों तक का समय निष्क्रिय रहा है। यह समझा जा सकता है कि इस समय की राजनीतिक परिस्थितियों तथा अन्य कारणों से भाषा का साहित्यिक रूप न उभरा हो। लेकिन आधुनिक युग में १९वीं शती के अन्त में दक्षिण भारत में नाटकों की रचना से दक्खिनी हिन्दी का साहित्य क्षेत्र में फिर प्रवेश हुआ।

हिन्दी और दक्खिनी हिन्दी के भाषाई अध्ययन के आधार पर इनकी अनेक विशेषताएँ उभरती हैं। हिन्दी ध्वनि व्यवस्था में ग्यारह स्वर, सत्रह स्पर्श व्यंजन (गृहीत ध्वनि क़् को मिलाकर), चार स्पर्श-संघर्षी व्यंजन, आठ संघर्षी व्यंजन, सात अनुनासिक स्पर्श व्यंजन, पार्श्विक ल्, ल्ह्, लुंठित र्, उत्क्षिप्त ड़्, ढ़्, अर्द्धस्वर य् और व् प्राप्त होते हैं। दक्खिनी में चौदह स्वर, इक्कीस स्पर्श व्यंजन, छः अनुनासिक स्पर्श व्यंजन, नौ संघर्षी व्यंजन, पार्श्विक ल्, लुंठित र्, उत्क्षिप्त ड़्, ढ़्, अर्द्धस्वर य् और हमज़ा मिलते हैं। अतः हिन्दी के सभी स्वर और व्यंजन दक्खिनी में भी मौजूद हैं। न्म्, न्ह् ध्वनियों का अस्तित्व भी दोनों में उल्लेखनीय है। दक्खिनी में कुछ बोलचाल के स्वर साहित्य में भी पाए जाते हैं जो मानक हिन्दी साहित्य में नहीं मिलते। ये स्वर हिन्दी की बोलियों एवं साहित्य में पाए जाते हैं। ऋ और ष् का उच्चारण रि, रु, रो और श् के समान हैं। इसके बावजूद वर्तनी के रूप में इसका प्रयोग अपने शुद्ध रूप में होता है। हिन्दी और दक्खिनी में दोनों

भाषाओं में सानुनासिकता सभी स्वरों के साथ पाई जाती है। यह ध्वनि व्यवस्था भारतीय और विदेशी भाषाओं के परस्पर आदान-प्रदान से बनी हुई है, जिसमें प्रान्तीय प्रभाव भी पाया जाता है।

हिन्दी में व्यंजन संयोग की लगभग सारी स्थितियाँ दक्खिनी में भी मिलती हैं। आदि और मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग सभी प्रकार के शब्दों में पाया जाता है जबकि त्रि-व्यंजनात्मक संयोग संस्कृत और फ़ारसी की स्थिति में ही मिलता है। इसके अतिरिक्त चार व्यंजनात्मक संयोग हिन्दी व्यवस्था में मिलता है जो संस्कृत निष्ठ है। साधारणत: द्वित्व व्यंजन की स्थिति शब्द के मध्य में ही पायी जाती है। आदि स्थिति में भी इसका एक उदाहरण दक्खिनी में मिलता है- व्वह।

ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न स्थितियाँ भी पाई गयी हैं, इनके अध्ययन से कुछ ऐसी दिशाएँ भी प्राप्त हुई हैं, जो दोनों भाषाओं की अपनी विशेषताएँ कही जा सकती हैं। इसी क्रम में हिन्दी में संधीकरण, अक्षर-विपर्यय, ऊष्मीकरण और दक्खिनी हिन्दी में नासिक्कीकरण, व्यंजन द्वित्व, अल्पप्राणीकरण, महाप्राणीकरण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जहाँ तक व्याकरणिक विशेषताओं का सम्बन्ध है दक्खिनी का पदरूप खड़ी बोली, ब्रज, अवधी आदि हिन्दी की बोलियों से प्रभावित है। दक्खिनी हिन्दी संज्ञा के मूल रूपों और मानक हिन्दी संज्ञा के मूल रूपों में अधिक साम्य है। तिर्यक रूपों में दक्खिनी हिन्दी अपनी विशेषताओं के साथ अग्रसर है। हिन्दी की वचन और कारक व्यवस्था में एकरूपता लाने की प्रवृत्ति साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में बल पाती दिखाई देती है। बहुवचन रूपों को निष्पन्न करने में 'आँ' प्रत्यय का प्रयोग बहुल है। बहुवचन तिर्यक रूपों में भी -ओं के स्थान पर -आँ प्रत्यय का प्रयोग अधिक मिलता है। फिर भी दक्खिनी हिन्दी की बहुवचन व्यवस्था हिन्दी के तुल्य है।

लिंग व्यवस्था संज्ञा रूपों के साथ मिलकर जो रूप परिवर्तन लाती है, वह हिन्दी की व्यवस्था से तुल्य है लेकिन लिंग निर्देशन का क्षेत्र हिन्दी के समान ही जटिल अवश्य है। कुछ ऐसे भी उदाहरण प्राप्त हुए हैं, जिनके प्राकृतिक लिंग व्यवस्था में विपर्यय है।

संरचनात्मक प्रत्ययों की व्यवस्था हिन्दी व्यवस्था के समान है। अरबी-फ़ारसी प्रत्ययों का आर्यभाषा शब्दों के साथ प्रयोग उल्लेखनीय विशेषता है, जो दो भाषाओं के बीच अभिसरण की प्रकृति को सूचित करती है। उपसर्गीय व्यवस्था के सम्बन्ध में वही बात कही जा सकती है, जो संरचनात्मक प्रत्ययों के सम्बन्ध में कही गयी है। जहाँ तक शब्द संरचना विधान है, उसमें संस्कृत तत्सम और तद्भव उपसर्गों की बहुलता है, जो

हिन्दी की प्रवृत्ति के नज़दीक साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी को ले जाती है।

कारकीय व्यवस्था में हिन्दी की बोलियों का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। ब्रज, अवधी परसर्गों के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव से भी कुछ परसर्गीय रूप घटित हैं।

सार्वनामिक व्यवस्था में विविधता दक्खिनी हिन्दी की विशेषताओं में उल्लेखनीय है, खासकर उत्तम और मध्यम पुरुष में यह विशेष दर्शनीय है। अन्य पुरुष में खड़ीबोली की त्रिविध व्यवस्था द्विविध व्यवस्था में ढली है। वे, उन्ह, उन- वे, उन; ये, इन्ह, इन- ये, इन। इसका प्रभाव सम्बन्धवाची, प्रश्नवाची, अनिश्चयवाची सर्वनामों में भी मिलता है। ध्वनि परिवर्तन के स्तर पर अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति सार्वनामिक व्यवस्था में भी दिखाई देती है।

साहित्यिक दक्खिनी में विशेषणों का प्रयोग नियमित एवं मर्यादित रूप में हुआ है। आकारान्त सामान्य विशेषण हिन्दी व्यवस्था को अपना कर चलते हैं। सार्वनामिक विशेषण व्यवस्था भी हिन्दी व्यवस्था के तुल्य है। संख्यावाचक विशेषण अपनी आन्तरिक ध्वनिगत परिवर्तनों को लेकर अवश्य चलते हैं, लेकिन व्यवस्था हिन्दी की ही है। जन व्यवहार में प्रचलित रूप जो द्रविड़ भाषा प्रभाव से युक्त है, साहित्यिक दक्खिनी में प्रवेश नहीं कर पाए हैं। जैसे- बीस पर एक, तीस पर चार, सात पर पाँच आदि। क्रमवाची, आवृत्तिवाची संख्या विशेषण हिन्दी की व्यवस्था में ढले हैं।

अव्यय में दक्खिनी हिन्दी अपनी ध्वन्यात्मक परिवर्तन से युक्त है। अरबी-फ़ारसी के साथ-साथ मराठी के अव्यय भी इस व्यवस्था में स्थान पा सके हैं। 'नको' और 'इच' या 'च' के प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं। समस्त रूप में वह हिन्दी की व्यवस्था ही कही जा सकती है।

शब्द विवेचन से सम्बन्धित अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के शब्द-भण्डार मुख्यत: चार वर्गों में विभाजित है- तत्सम, तद्‌भव, देशज, विदेशी। इसके अलावा कुछ शब्दों को अनुकरणात्मक और संकर शब्द वर्गों में भी रखा गया है। विदेशी भाषाओं में अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, लैटिन, पुर्तगाली, जर्मन, अरबी-फ़ारसी आदि के शब्द हिन्दी में बहुतायत मिल जाते है एवं इनका साहित्य में भी प्रयोग होता रहा है। साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त शब्द सम्पत्ति के स्रोतों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है- संस्कृत, देशी भाषा, हिन्दी क्षेत्रीय बोलियों से आगत और विदेशी स्रोत। संस्कृत के तत्सम और तद्‌भव शब्द, देशी भाषा शब्दों में हिन्दीतर आर्य भाषा शब्द और द्रविड़ भाषा शब्द, हिन्दी बोलियों से आगत शब्दों में प्रमुखत: अवधी, ब्रज, पंजाबी, मराठी शब्द आते हैं, विदेशी भाषा शब्दों में अरबी-फ़ारसी के। यूरोपीय भाषाओं के शब्दों का इसमें

सर्वथा अभाव है। शब्दावली के आकलन से दक्खिनी साहित्यिक भाषा के शब्द भण्डार से सम्बन्धित कुछ विशेषताएँ अवश्य उभरती हैं। वे इस प्रकार हैं-

i) जहाँ तक संस्कृत तत्सम शब्दों का सम्बन्ध है दक्खिनी साहित्यकार इनके प्रयोग में अधिक जागरूक रहे हैं। उन शब्दों का प्रयोग प्रचलित अर्थ की सीमाओं में ही किया गया है।

ii) तद्भव शब्द प्रयोग के क्षेत्र में दक्खिनी साहित्यकारों में अवश्य शिथिलता दिखाई देती है। इस शिथिलता के कारणों से यह स्पष्ट होता है कि इन्होंने इन शब्दों को अपने श्रुत आधारों पर ही स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि इन्होंने शब्द विकास और उन शब्दों के तत्कालीन परिनिष्ठित रूप पर ध्यान न देकर व्यवहृत रूप को ही लिया है। इसीलिए इन शब्दों में विविध रूपीय स्थिति दिखाई देती है।

iii) हिन्दीतर आर्य भाषा वर्ग के स्रोत से आगत शब्दों में मराठी के अधिक और गुजराती के कम हैं। द्रविड़ भाषा स्रोत शब्दावली में तेलुगु के शब्दों का प्रयोग कन्नड़ शब्दों से अधिक हैं। इसके अलावा शब्द-भण्डार का एक तीसरा पक्ष भी उभरता है, जिसे सुविधा के लिए दक्खिनी शब्दावली की अभिधा दी गयी है। इनमें वे शब्द हैं जो खड़ी बोली से भिन्न रूपों में मिलते हैं। खड़ी बोली की भिन्नता ने इनको दक्खिनी हिन्दी शब्द-भण्डार की सीमा में रखा है। इन शब्दों में पाए गए ध्वनि परिवर्तनों के आधार पर उक्त कथन सिद्ध होता है।

v) हिन्दी क्षेत्रीय शब्दों में अवधी, ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी और हरियाणवी के शब्द प्रमुख रूप से पाए जाते हैं।

vi) अरबी, फ़ारसी से स्वीकृत शब्दावली साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में लगभग साठ प्रतिशत की होगी। इसीलिए दक्खिनी शब्दावली को अरबी, फ़ारसी शब्दावली से अधिक प्रभावित मान सकते हैं। इस प्रतिशत की सीमा रेखा दक्खिनी के मुसलमान साहित्यकारों के लिए लागू की जा सकती है। जबकि मुसलमानेतर दक्खिनी साहित्यकारों की भाषा का आकलन करते हैं तो अरबी, फ़ारसी शब्द प्रयोग पच्चीस प्रतिशत से भी कम दिखाई देती है। उदाहरण के रूप में पुरुषोत्तम कवि के दक्खिनी हिन्दी नाटकों को देखा जा सकता है।

दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त वाक्य विधान के निरीक्षण से यह स्पष्ट होता है कि भाषा संरचना के साँचे हिन्दी की संरचनाओं के साँचों से मिलते हैं। प्रायः सामान्य वाक्य संरचना हिन्दी वाक्य संरचना के समान है। वाक्य घटकों में पदक्रम, लिंग, वचन हिन्दी के तुल्य हैं। निषेधात्मक वाक्य, प्रश्नसूचक वाक्य और विस्मयादिसूचक वाक्य दक्खिनी विशेषताओं के साथ भी व्यवस्थित हैं। ये विशेषताएँ प्रान्तीय प्रभावों को लेकर हैं। संयुक्त वाक्य संरचना में हिन्दी वाक्य संरचना की व्यवस्था का अनुसरण मिलता है। उपवाक्यों को संयुक्त वाक्य बनाने में समुच्चयबोधक अव्यय- और, किन्तु, परन्तु, इसलिए, या, वा, होर, बल्कि, पन आदि प्रयुक्त हुए हैं। वाक्यों में कते का प्रयोग तेलुगु वाक्य संरचना से प्रभावित है। वाक्य संरचना में यत्र-तत्र व्याकरणक नियमों का उल्लंघन मिलता है।

कुछ चुनी हुई साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की रचनाओं के साथ हिन्दी के सर्वमान्य ज्ञान के आधार पर किया गया यह अध्ययन अपनी सीमाओं में भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को अवश्य उद्‌घाटित करता है।

आधार ग्रंथ-सूची

लेखक	कृति/संपादक(संपा०)	प्रकाशन
इब्न निशाती	फूलबन संपा०-डॉ.नूरजहाँ बेगम	मिलिन्द प्रकाशन,हैदराबाद-९८ प्रथम संस्करण(प्र.सं.)- २००३
ग़वासी	सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल संपा०- राजकिशोर पाण्डेय, अकबरुद्दीन सिद्दीकी	दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबाद, प्रथम संस्करण-जनवरी,१९५५
वजही,मुल्ला	कुतुब मुशतरी संपा०- विमला वाघ्रे नसीरुद्दीन हाशमी	दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबाद, प्रथम संस्करण- दिसम्बर,१९५४
	सबरस संपा०- श्रीराम शर्मा	दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति, हैदराबाद, प्र.सं.- अक्टूबर,१९५५
शाह,तुराब	मनसमझावन संपा०- डॉ.सय्यदा जाफ़र	अब्दुल कलाम आज़ाद- ऑरियन्टल इन्सटिट्यूट(५), संस्करण- दिसम्बर,१९६४
श्री पुरुषोत्तम कवि	श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी-नाटक, संपा०- श्रीमती के.शारदा	दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद-५००३८०, प्रथम संस्करण- जनवरी,१९७९

हिन्दी सहायक ग्रंथ-सूची

अवस्थी, ललित मोहन	खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक-इतिहास	१९७७ आरिएण्ट लॉन्गमैन लिमिटेड, नई दिल्ली-२

कपूर, डॉ.बदरीनाथ	परिष्कृत हिन्दी व्याकरण	मीनाक्षी प्रकाशन,मेरठ,१९७८
काचरू,यमुना	हिन्दी का समसामयिक व्याकरण	दि मैकमिलन कंपनी ऑफ़ इंडिया लिमिटेड, मद्रास, प्र.सं.- १९८०
कालरा,सुधा	हिन्दी वाक्य-विन्यास	लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद-१ प्रथम संस्करण- १९७१
कौशिक, जगदीश प्रसाद	भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास	अपोलो प्रकाशन, जयपुर- ३, संस्करण- १९६९
गुरु,पं०कामता प्रसाद	हिन्दी व्याकरण	नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, २५वाँ संस्करण- संवत् २०६४
ग्रियर्सन, सर जार्ज	भारत का भाषा सर्वेक्षण,भाग-१ अनुवादक- निर्मला सक्सेना	हिन्दी समिति,सूचना विभाग, लखनऊ,(उ.प्र.), प्र.सं.-
	भारत का भाषा सर्वेक्षण,भाग-९ अनुवादक- निर्मला सक्सेना, सुरेन्द्र वर्मा	हिन्दी समिति,सूचना विभाग, लखनऊ(उ.प्र.), प्र.सं.- १९६७
चटर्जी, डॉ.सुनीतिकुमार	भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-२, संस्करण-१९८९
चतुर्वेदी, डॉ.भगवतशरण	हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास	अपोलो प्रकाशन, जयपुर-३, संस्करण- १९७५
जायसवाल, डॉ.माताबदल	मानक हिन्दी का ऐतिहासिक-व्याकरण	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,संस्करण- १९९२
जैन,प्रो.दीपचंद्र और तिवारी,	हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ	मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी (भोपाल),प्रथम संस्करण-१९७२

डॉ.नगेन्द्र	हिन्दी साहित्य का इतिहास	मयूर पेपरबैक्स,नोएडा-२०१३०१ संस्करण- २००१
तिवारी, डॉ.उदयनारायण	हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण-सन् १९७५ ई.
तिवारी, डॉ.भोलानाथ	भाषाविज्ञान	किताब महल, इलाहाबाद-१, संस्करण- १९९९
	भाषाविज्ञान कोश	ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी- १, प्रथम संस्करण- माघ्, संवत् २०२०
	हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण	शब्दकार, दिल्ली-६, संस्करण- दिसम्बर,१९७३
	हिन्दी भाषा	किताब महल, इलाहाबाद-१, संस्करण- २००७
	हिन्दी भाषा का अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ	पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली-५१, संस्करण-१९८७
	हिन्दी भाषा का इतिहास	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-२, संस्करण- १९८७
दास, डॉ.श्यामसुंदर	कबीर ग्रंथावली	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १४वाँ संस्करण- संवत् २०३४ वि.
	भाषा विज्ञान	इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, षष्ठ संस्करण- १९८६

दिनकर, डॉ.रामधारी सिंह	संस्कृति के चार अध्याय	लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद-१ नवीन संस्करण- २००४
द्विवेदी,आचार्य डॉ.कपिलदेव	भाषाविज्ञान एवं भाषा-शास्त्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-१, पाँचवा संस्करण- १९९८
दीमशित्स, डॉ.जाल्मन	हिन्दी व्याकरण अनुवादक- योगेन्द्र नागपाल	रादुगा प्रकाशन, मास्को,१९८३
पांचाल, डॉ.परमानंद	दक्खिनी हिन्दी का विकास और इतिहास	अलंकार प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- १९७८
पाठक, डॉ.हरिश्चंद्र	हिन्दी भाषा: इतिहास और संरचना	तक्षशिला प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण- १९८२
पाण्डेय, डॉ.लक्ष्मीकांत	हिन्दी भाषा: संरचना एवं प्रयोग	साहित्य रत्नालय, कानपुर, संस्करण- सन् २०००
बाहरी, डॉ.हरदेव	हिन्दी: उद्‌भव, विकास और रूप	किताब महल, इलाहाबाद-१ संस्करण- २००७
ब्रजमोहन और श्रीमती शकुंतला	मानक हिन्दी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- ३२
भार्गव, रामेश्वरनाथ	हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास	कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- १९७२
भाटिया,कैलाशचंद्र और चतुर्वेदी,मोतीलाल	हिन्दी भाषा विकास और स्वरूप	ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली- २, संस्करण- २००१

मिश्र,भगीरथ और कपूर,शुभांकर	हिन्दी भाषादर्श	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-१,प्र.सं.-१९७८
मिश्र,नरेश	हिन्दी शब्द-समूह का विकास	नटराज पब्लिशिंग हाउस, कर्नाल,हरियाणा-१३२००१, संस्करण- १९८५
मिश्र,विन्दुमाधव	हिन्दी भाषा का परिचय	राजेश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- १९७२
रूवाली, डॉ.केशवदत्त	हिन्दी भाषा और व्याकरण	श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा- २६३६०१, संस्करण- १९९१-९३
	हिन्दी भाषा और नागरी लिपि	ग्रंथायन, अलीगढ़- २०२००१, संस्करण- १९८२
वर्मा,डॉ.धीरेन्द्र	हिन्दी भाषा का इतिहास	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, संस्करण- १९८२
	हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, भाग-२(प्रधान संपा०-डॉ.संपूर्णानंद)	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण- संवत् २०२२ वि.
वाजपेयी, पं०किशोरीदास	हिन्दी शब्दानुशासन	नागरीप्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण-पंचम,संवत् २०५५ वि
शर्मा,ओमप्रकाश	हिन्दी व्याकरण: नव मूल्यांकन	सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, १९७७
शर्मा,देवेन्द्रनाथ	भाषाविज्ञान की भूमिका	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,१९६६
शर्मा,डॉ.रामविलास	भाषा और समाज	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-२,संस्करण- १९७७

शर्मा,डॉ.श्रीराम	दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास	हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, इलाहाबाद, १९६४
	दक्खिनी हिन्दी का साहित्य	हैदराबाद दक्षिण प्रकाशन, हैदराबाद, संस्करण- १९७२
शास्त्री, डॉ.देवेन्द्रकुमार	भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण- १९७३
शास्त्री, डॉ.वेदप्रकाश	दक्खिनी का गद्य साहित्य	संजय बुक सेन्टर,वाराणसी-१ प्रथम संस्करण- १९८२
शुक्ल,रामचंद्र	हिन्दी साहित्य का इतिहास	नागरी प्रचारिणी सभा,काशी, संवत् २०३५ वि.
सक्सेना, डॉ.बाबूराम	दक्खिनी हिन्दी	१९५२ हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
	सामान्य भाषा विज्ञान	हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, दशम संस्करण- सन १९९ ई.
सांकृत्यायन, पं०राहुल	दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा	बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्,पटना-३ संस्करण- १९५९
श्रीवास्तव, गरिमा	भाषा और भाषाविज्ञान	संजय प्रकाशन,नई दिल्ली-२, प्रथम संस्करण- २००६
त्रिवेदी, आ०जयेन्द्र	हिन्दी रूप-रचना(भाग-१)	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-१, संस्करण-१९९३

संस्कृत सहायक ग्रंथ-सूची

वाल्मीकि	रामायण संपा०- अय्यर,आर.एन	मद्रास लॉ जर्नल् प्रेस, मद्रास. संस्करण- १९३३ ई
कविराज, श्री विश्वनाथ	साहित्यदर्पण	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७,नवम संस्करण-१९७७
पाण्डेय, श्री रमज्ना	व्याकरण दर्शन पीठिका मुख्य संपा०- सुरती नारायण मनि त्रिपाठी	Vol-xii,Saraswati Bhavana Studies, Varanaseya Sanskrit Vishvavidyala, Varanasi-1965.
भर्तृहरि	वाक्यपदीयम्,खण्ड-२ (the vakyapadiya of Bhartrhari) संपा०- के.ए.सुब्रामणिया अय्यर	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७ प्रथम संस्करण- दिल्ली,१९८३
महर्षि जैमिनी	पूर्व मीमांसा,खण्ड-१ (mimansa sutras of Jaimini) अनुवादक- मोहनलाल संदल	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-७, संस्करण- दिल्ली,१९८०
महर्षि पतंजलि	व्याकरण महाभाष्यम् संपा०- आ०मधुसुधन प्रसाद मिश्र	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१, तीसरा संस्करण- १९८४
महर्षि पाणिनि	अष्टाध्यायी सूत्रपाठ: वृत्तिकार- श्री नारायण मिश्र	चौखम्बा ऑरियन्टालिया वाराणसी-१, प्र.सं.- १९७७
	अष्टाध्यायी सूत्रपाठ संपा०- आ०पं०सत्यनारायण शास्त्री खण्डूड़ी	कृष्णदास अकादमी, वाराणसी-१९८५ संस्करण- प्रथम,संवत् २०४२वि.

मुनि,यास्क	निरुक्त,भाग-१ संपा०- पं०सीताराम शास्त्री	परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, तृतीय संस्करण- २००२
रुद्रट	काव्यालङ्कार अनुवादक- डॉ.सत्यदेव चौधरी	परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली-७ तृतीय संस्करण- १९९०
वेदव्यास	महाभारत (The Mahabharata,part-1,vol.3) संपा०- विष्णु एस.सुथांकर	Poona,Bhandarkar Oriental- Research Institute,1942

अंग्रज़ी सहायक ग्रंथ-सूची

C.L.Baker	English Syntax	The MIT Press,Cambridge, Massachusetts,London; second printing-1989
Katamba, Francis	English Words-2nd Edition	Routledge,Taylor and Francis group,270 madison avenue, NY-10016,Edition-2005.
Zor,Dr.S.G.Qadri	Hindustani Phonetics	Imprimerie L'union- Typographique, Villeneuve-Saint-Georges; October-1930

उर्दू सहायक ग्रंथ-सूची

क़ादरी,मीर मुर्तज़ा अलिशाह	तजविद-ए-लतीफ़	लाउबाली,प्रेस,कर्नूल,आंध्र-प्रदेश, संस्करण-२००७

हिन्दी शब्द-कोश

संपादक	शब्द-कोश	प्रकाशन
वर्मा,डॉ.धीरेन्द्र (प्रधान संपा०)	हिन्दी साहित्य कोश	ज्ञानमण्डल प्रकाशन, बनारस, प्रथम संस्करण- संवत् २०१५.
वर्मा,रामचन्द्र (प्रधान संपा०)	मानक हिन्दी कोश - खण्ड ५	हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग, प्रथम संस्करण- सन् १९६६
श्री नवल	नालन्दा विशाल शब्द-सागर	आदीश बुक डिपो,नई दिल्ली-५ संस्करण- २००६

अंग्रेज़ी शब्द-कोश

	Gazzatteer of India,vol-1	Publication division,Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India; Reprinted- September 1973
Crooke William ,B.A	Hobson-Jobson -2nd edition	Munshilal Manoharlal, Oriental publishers & booksellers, Delhi-6;1968
J.A.Simrson & E.S.C.Weiner	The Oxford English Dictionary -2nd edition	Clarendon Press,Oxford-1989
Vasu, Nagendranath	The Encyclopaedia Indica; vol-xxii	B.R.Publishing Corporation, Deihi-35; Reprint-2008

संस्कृत शब्द-कोश

देव,राजा राधाकांत	शब्दकल्पद्रुम(खण्ड-५)	नाग पब्लिशर्स,नई दिल्ली-७,सं.- १९८७